आकाश की अवगाहना शक्ति

अर्थात

(केवलज्ञान की सूक्ष्मता)

लेखक

पं. श्री किशन चन्द जैन 'भाई सहाब'

मोहल्ला दारु कूटा, अलवर

सम्पादक

महावीर प्रसाद जैन

'स्वतंत्रता सेनानी'

अलवर

भूमिका

श्री अरुण कुमार जैन 'शास्त्री'

व्याख्याता

राजकीय शास्त्री सस्कृत महाविद्यालय, अलवर

प्रकाशक

श्री दिगम्बर जैन साहित्य प्रकाशन समिति

332 स्कीम न 10, अलवर (राज)

प्राप्ति स्थान :
महावीर प्रसाद जैन
'स्वतंत्रता सेनानी'
समिति संयोजक
332, स्कीम नं 10
अलवर-301001 (राज)
फोन : 331038

अष्टम पुष्प
प्रथम आवृत्ति : 2100
दिनांक 20-10-98

मूल्य : 10 = 00

लेजर एण्ड टाइप सेटिंग :
टैली वर्ल्ड एकाउन्टस
ओल्ड स्टेशन रोड,
पालावत मैन्सन, अलवर
फोन : 339139 पी पी

मुद्रक :
जयपुर प्रिन्टर्स प्रा लि.
एम आई रोड़, जयपुर

पृ. सं.	पंक्ति सं.	अशुद्धि	शुद्धि
iv	3	स्पर्सन-स्पर्स	स्पर्शन-स्पर्श
iv	4	स्पर्स	स्पर्श
ix	5	कृतित्व	कर्तृत्व
ix	14	अवलोकनीम	अवलोकनीय
ix	29	कृतित्व	कर्तृत्व
x	7	कृतित्व	कर्तृत्व
x	17	परिक्षण	परीक्षण
x	20	कृतित्व	कर्तृत्व
x	21	कृतित्व	कर्तृत्व
x	25	कृतित्व	कर्तृत्व
xi	18	द्रव्य	द्रव्य (Money)
xi	20	जर्प	जर्ये
xi	23	कोषध्यक्ष	कोषाध्यक्ष
xii	24	वगहरा	वगैरहा
xiii	7	श्री रतनलाल जैन	श्री रतनलाल जैन अशोका रेडीमेड
xiii	12	श्री कैलाश चन्द जैन	श्री कैलाश चन्द जैन S/o श्री चन्द जैन
xiv	12	श्री मन्नूलाल	श्री मन्नूलाल वकील
xv	18	श्रीमती भागवान्ति	श्रीमती भागवन्ति
xv	23	फ्राइट ओफीसर	फ्लाइट ओफिसर
2	23	क्षयोयकाम	क्षयोपशम
2	24	किए	लिए
2	26	किय	किया
2	29	विनित	विनीत
3	17	कहते है	कहते हैं
3	27	जघन्य भोग	जघन्य भोग
4	12	पृथ्वी कायिक	पृथ्वीकायिक
5	25	जीवमात्र	जीव मात्र
6	12	नपुसक	नपुसक
7	4	जीब	जीव
10	9	एकेन्द्रिय	एकेन्द्रिय जीव
10	21	पृथ्वी कायिक	पृथ्वीकायिक
24	8	"बठे न सिद्ध घरे न	"बढै न सिद्ध घटै न
24	9	करगा?	करेगा
24	13	तीन	भविष्य
25	17	अत: तीनकाल	अत. भविष्य काल
25	23	बैठते	बढतै
25	26	घैट न	घटै न
26	13	रहेगे।	रहेगे।
26	22	दृव्वप्यमाणोदा	दव्वप्पमाणदो
26	23	विदीय	वितीद
26	23	कलेण	कालेण
27	22	मे	मे

37	26	प्रथम वँर्ग	प्रथम वर्ग
48	4	योगसार	योगसार " २४ "
49	6	बिसपम्यिाम	बिसर्पाभ्याम्
49	12	अनगाहना	अवगाहना
50	2	चेता	चेदा
52	14	(4) मारणोत्तिक	(4) मारणान्तिक
54	12	अनन्तगुणी	अनन्तगुणी तैजस शरीर की
56	17	के समूह कोकार्माण सरीश सज्ञा	के समूह को कार्माण शरीर सज्ञा,
56	25	एकेन्द्रियो का	एकेन्द्रियो का शरीर
62	13	गर्मज तिर्यच	गर्भज तिर्यंच,
64	3	अभव्यसिद्धो	अभव्यसिद्धों
64	21	अनन्त भेद हैं	भेद हैं
65	अतिम पक्ति	विदीप	वितीद
65	अतिम पक्ति	सव्वैण	सव्वेण
65	24	दव्वप्पम्मणेदा	दव्वप्पमाणदो
66	25	द्विरुप	द्विरूप
69	2	द्विरुप	द्विरूप
71	12	द्विरुप	द्विरूप
71	23	द्विरुप	द्विरूप
74	8	अग्ररुलघु के	अगुरुलघुगुणके
76	17	अधिक हैं।	अधिक है। भेद के दूध से घी मे चिकनाई के अश अधिक है
77	10	द्विरुप	द्विरूप
83	11	अन्डर	अण्डर
83	18	अश	अश
87	6	अनन्तानत्र गुणेकर्म	अनन्तानत्त, गुणे कर्म एव नोकर्म
87	6	प्रत्येक कर्म	प्रत्येक कर्म व नोकर्म
94	8	(11) मध्यम असख्यात सख्यात्	(11) मध्यम असख्यातसख्यात
94	8	(12) उत्कृष्ट असख्याता सख्यात	(12) उत्कृष्ट असख्यातमख्यात
121	4	अरूची	अरूचि
122	5	कारण भूत	कारणभूत
126	2	प्ररुपक	प्ररूपक
126	12	विदि	बिदि
127	06	कायोन्द्रिय	कायेन्द्रिय
127	7	णउण	णाउण
127	7	विवज्जष	विवज्जण
127	7	ढाणादिसु	ठाणादिसु
128	अतिम पक्ति	कौन्डेय	कौन्देय
129	15	निमीपित	निर्मापित
131	17	शस्त्राभ्यास	शास्त्राभ्यास

सम्पादकीय

तत्वार्थ सूत्र के 5/18 सूत्र में कहा है "आकाशस्यावगाह।" अर्थ– अवकाश में सहायक होना यह आकाश द्रव्य का उपकार है। संसार में दो तरह के पदार्थ हैं (1) जड़ पदार्थ (2) चेतन पदार्थ। दो प्रकार के पदार्थों में जीव और पुद्गल ठहरे हुए भी हैं और गतिशील भी हैं। आकाश में पक्षी ऊपर और नीचे आता जाता है तो उसी प्रकार अपनी पँखों की सहायता से उसके अनुसार वातावरण बनाता है। जिस जगह में 5 व्यक्ति बैठ सकते हैं उसी जगह में 50 नहीं बैठ सकते। इससे यह अर्थ निकलता है कि संसार में ऐसा कोई पदार्थ है जो सबको स्थान देता है। स्थान के होने पर ही (अवकाश के होने पर ही) गति व स्थिति हो सकती है। इसका मुख्य कार्य सबको अवकाश देना है। अगर किसी की इसमें रुकावट होती है तो वह आकाश का कार्य नहीं है किन्तु मूर्त पदार्थ का दोष है, जो अपनी स्थूलता के कारण अन्य स्थूल पदार्थ को वहाँ रुकावट डालता है। आकाश का तो कार्य मात्र सभी को अपनी अपनी योग्यता के अनुसार स्थान देना है इसलिए आकाश का कार्य अवकाश देना ही माना गया है। स्थूल होने पर पदार्थ आपस में टकराते हैं यह उनकी अपनी विशेषता है। परमार्थ से तो सभी पदार्थ अपने अपने स्वरूप में स्थित हैं। यह जो रुकने और रोकने वाला पदार्थ है मात्र पुद्गल है। वह भी पुद्गल जो स्थूल रूप में है। सूक्ष्म अणु रूप में तो वह भी नहीं है। एक परमाणु मे सारे परमाणु समा जाने की शक्ति है। पुद्गल के अलावा पाँचों द्रव्य भी इसी आकाश में स्थित हैं। ये सभी द्रव्य आकाश में समाने के अलावा स्वयम् अपने में ही स्थित रहते हैं। एक-दूसरे द्रव्य पर बोझा नहीं बनते।

संसारी जीव की देखने की शक्ति बड़ी सीमित है। सिवाय पुद्गल द्रव्य के स्थूल स्कन्ध रूप के अलावा हमें अन्य द्रव्य दीखते ही नहीं हैं। जीव द्रव्य का ज्ञान संसार अवस्था में बहुत ही सीमित है क्योंकि वह पुद्गल द्रव्य रूप आवरण से आवर्णित है। ज्ञान के दो भेद हैं। प्रत्यक्ष और परोक्ष। परोक्ष में मति ज्ञान व श्रुत ज्ञान है। प्रत्यक्ष में भी दो भेद हैं। पहला एक देश प्रत्यक्ष दूसरा सकल प्रत्यक्ष। एक देश प्रत्यक्ष में अवधि ज्ञान व मनः पर्यय ज्ञान है और सकल प्रत्यक्ष में केवल ज्ञान है जो निश्चय से जीव द्रव्य का ज्ञान है। इस ज्ञान के आधार से ही केवल ज्ञानी सूक्ष्म से सूक्ष्म वस्तु को देख सकते हैं। यह एक जीव की अपनी शक्ति है। इसी का इस ग्रन्थ में वर्णन किया गया है। जीव द्रव्य आज संसार

अवस्था में पाँचों इन्द्रियो के माध्यम से कुछ थोड़ा बहुत देख कर ज्ञान कर सकता है। उसमें भी पाँचों इन्द्रियां अपने एक-एक विषय को ही एक एक इन्द्रीय के द्वारा जान सकती हैं। नेत्र-वर्ण को, कर्ण शब्द को, स्पर्सन-स्पर्स को, घ्राण-गन्ध को और रसना-स्वाद को। पुद्गल द्रव्य में, रस, गन्ध, वर्ण और स्पर्स ये विशेष गुण होते हैं। उन्हें भी हम बहुत ही सूक्ष्म रूप में देख सकते हैं। नेत्र से हम एक खून की बूंद में सिवाय लाल तरल पदार्थ के कुछ नहीं देख सकते। किन्तु आधुनिक विज्ञान की सहायता से 1 1000 पावर के सूक्ष्मदर्शी यंत्र से देखेंगे तो उसमें सैकड़ो कीड़े तिलमिलाते नजर आवेंगे। अगर हम केवल ज्ञान की दृष्टि से देखेंगे तो भोग भूमि में 7 दिन के जन्मे मेमने के बाल के अग्रभाग जितने छोटे हिस्से में छः द्रव्यों के साथ-साथ उसमें अनन्त जीव दीखेंगे। यही भाई सहाब श्री किशनचन्द जी जैन ने अपनी पुस्तक 'आकाश की अवगाहना शक्ति' अर्थात् केवलज्ञान की सूक्ष्मता में जैन धर्म के दर्शन सिद्धान्त के आधार पर बताने का प्रयत्न किया है। किन्तु लोग कहते हैं कि वे तो वगैर देखे विश्वास नहीं करते। वैसे श्रद्धा गुण विश्वास पर ही आधारित हैं। अगर गलत श्रद्धा हो जाती है तो वही सही दीखती है किन्तु आज के भौतिक विज्ञान ने जैन धर्म के सिद्धान्तों को हाथ पर आँवला रखे अनुसार सिद्ध करके दिखा दिया है। भाई साहब (श्री किशनचन्द जैन) ने अपने इस ग्रन्थ में, नव जात मेमने के बाल के अग्रभाग से भी कम स्थान में केवली ने क्या-क्या देखा है यही इसका विषय है। इसी बात को जन साधारण के सामने रखने के लिए इस समिति ने इस ग्रन्थ के प्रकाशित कराने का निर्णय किया था कि आज के विज्ञान ने जैन धर्म में विश्वास व श्रद्धा जमाने के लिए बहुत नजदीक लाकर खडा किया है।

आधुनिक विज्ञान ने प्राणी की कोशिकाओ (Cells) का ज्ञान जर्ये सूक्ष्म नापने के यन्त्रो के आधार से दिखाया है। माइक्रोन एक अत्यन्त छोटी दूरी नापने का मात्रक एक इकाई (Unit) है जो एक मीटर का दस लाखवाँ भाग निरुपित करता है। इसी प्रकार के साधनों पर एक कोशिका में क्या-क्या है जो सुई के अग्रभाग से भी छोटे स्थान में इस शरीर में होता है। ये कोशिकाये (cells) वनस्पति व दो इन्द्रीय से 5 इन्द्रीय जीव की बनावट में अन्दर होती हैं। वह आधुनिक विज्ञान ने दर्शाया है।

वनस्पति (पादप) कोशिका का इलैक्ट्रोन सूक्ष्म दर्शीय रेखा-चित्र दिखाया है जो निम्न प्रकार है-

कोशिका एक कारखाना–

एक कोशिका (cell) एक कारखाने के समान है। यहाँ कच्चा माल लेकर नये पदार्थों का निर्माण आवश्यकतानुसार किया जाता है। विभिन्न कोशिकांग कारखाने की इकाइयो की तरह कार्य करते हैं। कोशिका में होने वाली सभी रसायनिक क्रियायें (Meta bolısm) विभिन्न एनजाइम्स (Enzymes) की सहायता से होती है। इन क्रियाओं के दो पहलू हैं–

(1) रचनात्मक (2) खण्ड़ात्मक

एन्जाइम्स जटिल प्रोटीन्स हैं जो D N A निर्देशन में R N A के द्वारा बनाये जाते हैं। इस प्रकार सभी प्रतिक्रियाओं पर ठेकेदार के समान कार्य करने वाले RNA का नियन्त्रण रहता है। चूँकि RNA का निर्णय DNA अणु करते हैं अत: ये इंजिनीयर शिल्पी की तरह हैं। इनकी सलाह से कारखाने का प्रत्येक कार्य होता है। सभी क्रियाओं के लिये उर्जा (Energy) का लेनदेन ATP अणुओं से होता है। ये कोशिकीय स्वसन (Respiratıon) द्वारा निरन्तर कोशिकीय विद्युतग्रह (Mıtochondrıa) में बनते रहते हैं। ATP अणुओं को उर्जा बन्ध माना जाता है। जो आवश्यकता पड़ने पर उर्जा देते हैं। DNA अनुवन्सिक पदार्थ

हैं और इनके द्वीगुणन के द्वारा नये अणु बनते हैं। अत: इनके लक्षण परिवर्तित नहीं होते हैं और कोशिका की सतानों में (Daughter cells) में अर्थात् नवीन कोशिकाओं में भी समान रूप से कार्य चलता रहता है।

पदार्थ जीव द्रव्य (Protoplasm) भौतिक रूप में प्रोटीन, लिपिड़ इत्यादि पदार्थो का जल में कलिल विलीयन (Colloıdal Solutıon) है। यह कमी कणिका मय कभी रचना रहित कमी कोष्टिका मय दिखाई देता है। इसमें अतिसूक्ष्म कलायें (Membranes) होती हैं। कलाओं के बीच में तरल पदार्थ भरा रहता है। जीव द्रव्य अपनी इस विशेष जटिल संरचना के कारण गाढे (जैल अवस्था– Gel- Condition) तरल (Sol-condıtion)अर्थात् सोल अवस्था में बदल सकता है।

सोल अवस्था (Sol-Condıtıon) में जीव द्रव्य के कणों पर एक ही प्रकार का विद्युत आवेश (Electrıc Charge) रहता है। अर्थात् इन कणों पर ऋण या धन (Negatıve or posıtıve) केवल एक सा ही आवेश होता है अत: ये कण एक दूसरे में हटते रहते हैं और परस्पर टकरा टकरा कर तेजी से इधर उधर भागते रहते हैं। जेल अवस्था में ऐसी गति नहीं होती। इस अवस्था में कणों पर विपरीत (अर्थात् ऋण तथा धन दोनों प्रकार का) आवेश होने के कारण वे आपस में जड़ जाते हैं अत: जेल अवस्था में मुख्यत: निर्माण तथा मरम्मत का कार्य होता है। जबकि सोल अवस्था में लेनदेन तथा विभिन्न रसायनिक क्रियायें सरलता से होती हैं।

जीव द्रव्य (Protoplasm) सभी दैनिक लक्षणों से जैसे गति, पोषण, उपापचय, स्वसन, उत्सर्जन, वृद्धि, जनन, उत्तेजन, शीलता आदि प्रदर्शित करता हैं। इस कारण इसे जीवन का आधार कहा जाता है।

पादप व जन्तु की कोशिका का जो एक सुई की नोक से भी छोटे स्थान में होता है। उसका Enlarged मानचित्र दिया जाता है।

पादप कोशिका–

1. पादप कोशिका में सेलुलोज की बनी कोशिकाभित्ति (Cell wall) होती है।

2 प्राय: सभी पादप कोशिकाओं में लवक (Plostıds) पाये जाते हैं।

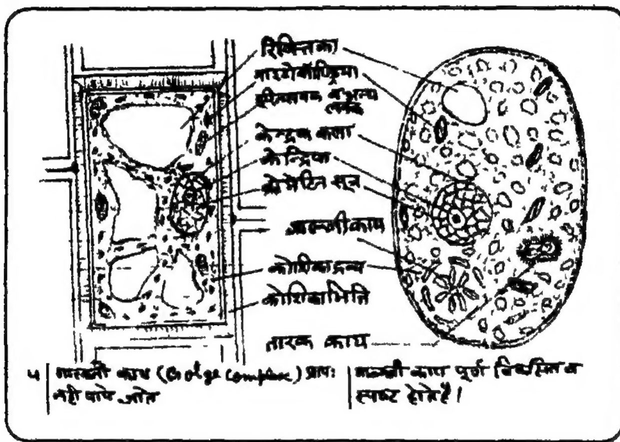
3 पादप कोशिका में तारक काय (Centro Some) प्राय: नहीं पाये जाते हैं।

4. गालजी काय (Golge complese) प्राय: नहीं पाये जाते।

5. रिक्तकाएँ (Vacuoles) प्राय: बड़े आकार की पाई जाती है।

6. पादप कोशिका में प्राय: संचित भोज्य पदार्थ माण्ड (Starch) के रूप में पाया जाता है।

7. कोशिका विभाजन के समय पादप कोशिका के मध्य में एक पट्टिका (Plate) बनती है जो अन्दर से बाहर की ओर बढ़ती है।



जन्तु कोशिका–

1 किन्तु जन्तु कोशिका में कोशिका मित्ति नहीं पाई जाती।

2 जन्तु कोशिकाओं में लवक प्राय: नहीं पाये जाते हैं।

3 जन्तु कोशिका में तारक काय पाये जाते हैं।

4 गालजी काय पूर्ण विकसित व स्पष्ट होते हैं।

5 रिक्तकायें प्राय: नहीं होती या बहुत छोटी होती हैं।

6. प्राय: संचित भोज्य पदार्थ ग्लाकोजन तथा वाल्यूटिन के कणों के रूप में पाया जाता है।

7 विभाजन के समय जन्तु कोशिका में एक खांच (Furrow) बाहर से अन्दर की ओर बढ़ती है और कोशिका दो भाग में बट जाती है।

विशेष– केन्द्रक द्रव्य में धागे की तरह जाल जैसी रचना होती है जिसे क्रोमेटिन सूत्र (Chromatin threads) कहते हैं। कोशिका विभाजन के समय ये धागे सिकुड़ कर मोटे व छोटे रूप में दिखाई देते हैं। इन छोटे व मोटे सूत्रों को गुण सूत्र (Chromosomes) कहते हैं। प्रत्येक जाति की कोशिकाओं में गुण सूत्रों की संख्या एवं आकृति निश्चित होती हैं। मनुष्यों की कोशिकाओं में चाहे वे किसी भी देश के रहने वाले हों उनकी संख्या सदैव 46 होती हैं गेहूँ व आलू के गुण सूत्रों की संख्या 42 तथा मटर में 24 होती है।

इस दृष्टि से गुण सूत्र न केवल राष्ट्रीय बल्कि अन्तर्राष्ट्रीय एकता के द्योतक हैं। गुण सूत्र पर जीन्स (Genes) होते हैं जो कि DNA के बने होते हैं। जीन्स अनुवंशिक लक्षणों के वाहक होते हैं क्योंकि आनुवंशिक गुण माता-पिता से पीढ़ी दर पीढ़ी सन्तान में पहुँचते हैं। जैन दर्शन में जो केवलज्ञान में देखा वह इस प्रकार हैं–

सुई के अग्रभाग जितने आकाश क्षेत्र में असख्यात लोकप्रमाण तो स्कन्ध हैं, प्रत्येक स्कन्ध में असंख्यात लोक प्रमाण अण्डर हैं, प्रत्येक अण्डर में असंख्यात लोकप्रमाण आवास हैं प्रत्येक आवास में असंख्यात लोक प्रमाण पुलवी हैं और प्रत्येक पुलवी में असंख्यात लोक प्रमाण निगोदिया शरीर हैं अर्थात पाँच जगह असंख्यात लोक प्रमाण, असंख्यात लोक प्रमाण राशि रख कर उनको आपस में गुणा करने पर जो महा असंख्यात लोक प्रमाण राशि आवे उतने तो सुई के अग्रभाग जितने आकाश क्षेत्र में निगोदिया शरीर हैं तथा प्रत्येक निगोद शरीर में अनन्त निगोदिया जीव हैं। उसी क्षेत्र में प्रत्येक जीव के प्रत्येक प्रदेश पर वर्गणा और वर्ग पाये जाते हैं, तेजस तथा कार्माण शरीर की वर्ग वर्गणायें भी पाई जाती हैं। इनके अतिरिक्त प्रत्येक कर्म, नो कर्म परमाणु पर जीवों से अनन्तगुणे विस्र सोपचय तथा सूक्ष्म अग्निकायिक, पृथ्वीकायिक, जलकायिक वायु कायिक जीव भी पाये जाते हैं तथा इसी क्षेत्र में पुद्गल परमाणु, पुद्गल स्कन्ध तथा धर्म, अधर्म द्रव्य, काल द्रव्य, लोकाकाश भी पाया जाता है। इस ग्रन्थ में इन सब का ही विस्तार से वर्णन किया गया है। इस प्रकार केवल ज्ञानी ने एक सुई के अग्रभाग जितने छोटे स्थान में क्या -क्या देखा है। उसका वर्णन किया ।

वास्तव में अब देखने की बात यह है कि जब केवल ज्ञानी इतनी सूक्ष्मता से देख व जान सकते हैं तो आज विज्ञान ने इलेक्ट्रान सूक्ष्मदर्शी के द्वारा जो देखा है वह आगम में क्यों नहीं कहा गया है। उसका समाधान इस प्रकार किया जा सकता है कि जैन दर्शन में आत्मा को ज्ञाता दृष्टा कहा गया है और आधुनिक विज्ञान का दृष्टिकोण कृतित्व बुद्धि का है। जैन दर्शन में प्रत्येक शुद्ध आत्मा को ईश्वर माना गया है। संसारी आत्मा जब रागद्वेष मोह शरीर आदि से रहित हो जाता है तो वह शुद्ध आत्मा अर्थात् ईश्वर कहलाता है। ऐसा ईश्वरपना सभी संसारी जीवों में भी शक्ति रूप से पाया जाता है जिसके अवलम्बन से वह संसारी जीव व्यक्त रूप से परमात्मा बनता है।

उपरोक्त सबको जैन दर्शन के परिपेक्ष में समझने के लिए ईश्वर के सम्बन्ध में क्या मान्यता है यह बताने की अत्यन्त आवश्यकता है। विश्व के अन्य धर्म ईश्वर को पर का कर्ता मानते हैं जबकि जैन दर्शन ईश्वर को कर्ता नहीं मात्र ज्ञाता दृष्टा मानता है। इस सम्बन्ध में प्रस्तुत ग्रन्थ के लेखक श्री किशनचन्द जी द्वारा रचित एक पुस्तक,''क्या ईश्वर सृष्टि का कर्ता है।'' अवलोकनीम है। ईश्वर अर्थात् शुद्ध आत्मा के सम्बन्ध में जैन दर्शन में आचार्य कुन्द कुन्द के समयसार, प्रवचनसार, नियमसार, अष्टपाहुड व पञ्चास्तिकाय आदि व अन्य आचार्यो के भी बहुत से ग्रन्थ पठनीय हैं। उदाहरण के लिए श्री समयसार परमागम की 49 वीं गाथा को यहाँ प्रस्तुत किया जाता है–

''अरसमरुवमगंधम् अव्वत्तं चेदणा गुणमसद्दं।
जाण अलिंगग्गहणं जीव मणि द्दिट्ठ संठाणं॥''

अर्थ– हे भव्य तू जीव को रस रहित , रूप रहित, गन्ध रहित, अव्यक्त अर्थात् इन्द्रियगोचर नहीं ऐसा, चेतना जिसका गुण है, ऐसा शब्द रहित, किसी चिह्न से ग्रहण न होने वाला और जिसका कोई आकार नहीं कहा जाता, ऐसा जान।

इस गाथा से पूर्व छठी गाथा में कहा है कि शुद्ध आत्मा प्रमत्त भी व अप्रमत्त भी नहीं है वह तो एक ज्ञायक भाव अर्थात् ज्ञाता दृष्टा है। इसी प्रकार 14 वीं व 38 वीं गाथा में भी शुद्ध आत्मा का निरुपण किया है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि जैन दर्शन में ईश्वर का कार्य मात्र जानना और देखना है किसी का कुछ करने धरने का कार्य नहीं है। संसार के समस्त कार्य प्रकृति के द्वारा स्वतः ही संचालित होते हैं, उनमें किसी की कृतित्व बुद्धी का

हस्तक्षेप नही है। आधुनिक युग में वैज्ञानिकों ने कर्तृत्व बुद्धि की पराकाष्ठा से ही अणु का खण्डन विखण्डन करके अणु व हाइड्रोजन जैसे बम बनाये हैं तथा क्लोनिंग के द्वारा भेड, बन्दर आदि पशु भी उत्पन्न किये हैं तथा क्लोनिंग के द्वारा ही मनुष्यों की भी उत्पत्ति किये जाने का प्रयत्न किया जा रहा है जिससे संसार में प्रकृत्ति का संतुलन ही बिगड़ जायेगा। उसका फल जो आज संसार में प्रदूषण से त्राहि-त्राहि मच रही है वही होगा। इस विश्व में संज्ञी (मन सहित) पञ्चेन्द्रिय मनुष्य विवेकी होने के कारण यदि वह कृतित्व बुद्धि में चला जाये तो प्रकृति के संतुलन को बिगाड़ कर विनाशकारी कार्य कर सकता है और यदि ज्ञातृत्व बुद्धि में चला जाये तो मोह राग द्वेष को नष्ट करके ईश्वर बन सकता है। विनाशकारी कार्यों का ज्वलन्त उदाहरण यह है कि अमेरिका ने अणु बम बना कर जापान के हिरोशिमा व नागाशाकी नगरों को नष्टभ्रष्ट कर डाला। उसकी विभीषिका को देखकर दुनियों की आँखे खुली और जन साधारण में अणु बम्ब के विरुद्ध चेतना जागृत हुई किन्तु फिर भी कुछ स्वार्थी व महत्वाकाक्षी राष्ट्रों ने अणु बम से भी आगे जाने में अपनी कुबुद्धि दिखाई व हाइड्रोजन व उससे भी शक्तिशाली बम बना डाले। इस होड़ में आखिर पाकिस्तान और अपने आपको विवेकी कहने वाला भारत भी पीछे नहीं रहा। अर्थात् इन दोनों ने भी ऐसे विनाशकारी बम्बों के परिक्षण कर डाले।

क्लोनिंग के द्वारा जब जन्तुओं की उत्पत्ति की जाने लगेगी तो अविवेकी राष्ट्र खास तौर से महत्वाकाक्षी छोटे राष्ट्र क्लोनिग द्वारा फौज भी तैयार कर सकेंगे जिससे विनाशकारी मनोवृत्ति और भी बढ़ जायेगी। यह सब कृतित्व बुद्धि का दुष-परिणाम है। यदि जैन धर्म के अनुसार प्राणी कृतित्व बुद्धी को छोड़ दे और ज्ञाता दृष्टा बन जाये तो समस्त विश्व में शान्ति स्थापित हो सकती है। इसी उद्देश्य को लेकर केवली भगवान ने केवलज्ञान के द्वारा क्या-क्या देखा है उसका विस्तार से निरुपण प्रस्तुत ग्रन्थ 'आकाश की अवगाहना शक्ति' में किया गया है। अत: पाठकों से अनुरोध है कि इसका गहनता से अध्ययन करके कृतित्व बुद्धी को छोड़कर ज्ञाता दृष्टा बनने की ओर अग्रसर होंवे। इसी प्रयोजन से इस ग्रन्थ को प्रकाशित करने की जुम्मेदारी "श्री दिगम्बर जैन साहित्य प्रकाशन समिति" ने ली। यह ग्रन्थ दुनियां की आँखे खोलने में सम्भव है काम आ सके और लोग ईश्वर बनने के मार्ग पर चल सके।

इस ग्रन्थ के प्रकाशन में जिन-जिन महानुभावों ने सहयोग दिया उनको भी नहीं भुलाया जा सकता। इस विषय में सर्वप्रथम श्री लक्ष्मीनारायण जी जैन M sc जो फिरोजाबाद (उ.प्र.) के रहने वाले हैं व विज्ञान के ही सेवा निवृत्त व्याख्याता थे उन्होंने कोशिका विज्ञान व कोक्लोनिंग को हमें समझाया ही नहीं अपितु उसके चित्र बना कर व लिखकर दिये व श्री डॉ. प्रमोद कुमार जैन जो बीबीरानी कॉलेज (राजस्थान सरकार) के प्रिन्सिपल हैं को भी नहीं भुलाया जा सकता जिन्होंने भी स्थिति को और स्पष्ट करने में सहयोग दिया अत: दोनों महानुभाव धन्यवाद के पात्र हैं।

इस ग्रन्थ का प्रुफ पढ़ना बड़ा कठिन था क्योंकि विषय नया और अपनी सीमाओं में समाया हुआ था। इसके प्रूफ को तीन तीन बार पढ़कर श्री अजित प्रसाद जैन व श्री महावीर प्रसाद जी जैन बडेरवाले ने मेहनत की उसके लिए वे दोनों ही धन्यवाद के पात्र हैं।

इस ग्रन्थ का कम्पोजिग ***M/s Tally World Accounts, Alwar*** श्री प्रवीण कुमार जैन द्वारा किया गया है। उन्होंने बड़ी कुशलता से कार्य किया है अत: वे धन्यवाद के पात्र है।

इसी प्रकार श्री सोहनलाल जी जयपुर प्रिन्टर्स प्रा. लि. ने इसके शीघ्रता से आपके कर कमलों में, सुन्दर ढंग से ग्रन्थ को छाप कर पहुँचाया धन्यवाद के पात्र हैं।

आधुनिक विश्व में द्रव्य का बड़ा महत्व है सब कुछ भी हो जायें और द्रव्य न हो तो कोई कार्य नहीं हो सकता। दान-दाताओं से एक बार ही द्रव्य के लिए अपील करने पर सूची में दिया हुआ महानुभावों ने जर्प ड्राफ्ट या नकद द्रव्य भेजकर अपने धर्म के प्रति अपनी श्रद्धा प्रदर्शित की अत: वे सभी धन्यवाद के पात्र हैं।

श्री महावीर प्रसाद जी बडेरवाले समिति के कोषध्यक्ष हैं अत: समिति के नियमानुसार पिछले प्रकाशनो वैराग्य प्रदीप व दैनिक पूजन का खर्चा व समिति का लेखा-जोखा ता. 1-11-97 से 20-7-98 तक तैयार कर दान दाताओं व समिति के सदस्यों के अवलोकनार्थ दिया जाता है जो निम्न प्रकार है-

आय व्यय विवरण 1-11-97 से 20-7-98 तक

आय		व्यय	
रुपये	विवरण	रुपये	विवरण
23671 = 00	पिछला शेष	28,000 = 00	जयपुर प्रिन्टर्स को छपवाई व कागज आदि के दिये
30,000 = 00	एफ डी		
10,000 = 00	एफ. डी की रकम	7663 = 00	भारत प्रिन्टर्स, अलवर को पूजन संग्रह के कागज छपाई वगरहा।
18671 = 00	साहित्य बिक्री	2900 = 00	पोस्टेज, बिल्टी छुडवाई, आदि।
36449 = 00	आकाश की अवगाहना के मूल्य कम करने हेतु प्राप्त	56 = 00	डी डी कमीशन
		30,000 = 00	एफ डी बैंक सेविंग में डाली।
3832 = 00	पूजन संग्रह के महावीर प्रसाद जी द्वारा	55668 = 00	बैंक में
1664 = 00	ब्याज बैंक से		
124287 = 00	योग	124287 = 00	योग

इस ग्रन्थ की भूमिका लिखने के लिए श्री अरुण कुमार जी शास्त्री से निवेदन किया तो उन्होंने सहर्ष स्वीकार कर अपने व्यस्त समय मे से समय निकाल कर इसकी भूमिका लिखी उसके लिए भी वे धन्यवाद के पात्र हैं।

इस ग्रन्थ में यह पूरा-पूरा प्रयत्न किया गया है कि भाषा सम्बन्धी व छपाई वगहरा सम्बन्धी त्रुटिया न रहे फिर भी सम्भव है गलतियां रह गई हों। आशा है पाठकगण उसके लिए मुझे क्षमा करेंगे और जो गलती उनके पकड़ में आ जावे उसके लिए मुझे सूचित करने की कृपा करेंगे। मैं उनका अति आभारी होऊँगा।

सम्पादक
महावीर प्रसाद जैन
स्वतन्त्रता सेनानी
332 स्कीम 10 अलवर
फोन- 331038

ग्रन्थ के प्रकाशन व मूल्य कम करने हेतु सहायता प्रदान करने वाले महानुभावों की सूची

अलवर

1	श्री महादेव प्रसाद अग्रवाल	1100 = 00	2	श्री गुप्तदान रसीद न 486	501 = 00
3	श्री नरेन्द्र कुमार जैन दीवान	501 = 00	4	श्री गुलाब चन्द्र पदम चन्द जैन	501 = 00
5	श्री कपूर चन्द्र जैन पोफ़ेसर	501 = 00	6	श्री नेमी चन्द्र जैन बजाज	500 = 00
7	श्री रतन लाल जैन	500 = 00	8	श्री मतीजैनो देवी जैन बडेरवली	500 = 00
9	श्री अजित प्रसाद जैन	500 = 00	10	श्री महावीर प्रसाद प्रमोद कुमार	500 = 00
11	श्री कमल चन्द जैन बजाज	500 = 00	12	श्री महावीर प्रसाद जैन वकील	301 = 00
13	श्री दयाचन्द जिनेन्द्र कुमार जैन	251 = 00	14	श्री दुर्गा प्रसाद जैन हसन खाँ मेवात	251 = 00
15	श्री अनन्त कुमार S/O हजारी लाल	250 = 00	16	श्री अरुण कुमार जैन शास्त्री	200 = 00
17	श्री मोहर चन्द जैन	101 = 00	18	श्री कैलाश चन्द जैन	101 = 00
19	श्री नौरतन लाल जैन गार्ड	101 = 00	20	श्री पूरण चन्द जैन सर्राफ	101 = 00
21	श्री गुलजारी लाल जैन अपनी धर्म पत्नी श्री पुण्य स्मृति	251 = 00			

अजमेर

1	श्री मती निर्मला जैन	700 = 00	2	श्रीमती दौलत रानी ध प श्री फूल चन्द	101 = 00
3	श्री छगनलाल जैन अध्यक्ष कु कु मू च ट्रस्ट	200 = 00			

जयपुर

1	श्री चिरजी लाल अशोक कुमार जैन, अलवर प्रकाशन	501 = 00	2	श्री हर्ष चन्द गोधा बी-116 सेठी कॉलोनी	201 = 00
3	श्री पदम चन्द रविन्द्र कुमार कठूमर वाले	200 = 00	4	श्री सन्मति महिला सघ सेठी कॉलेनी	200 = 00
5	श्री चिरजी लाल कासलीवाल सी-40 सेठी कॉलोनी	101 = 00			

विविध

1	युवा फडरेशन, ललितपुर (यू पी)	1500 =00	2	गुप्त दान रसीद न 311	500 = 00
3	श्री धर्म चन्द जैन इटावा	250 = 00	4	श्री जैन तेज कुमार गगवाल, इन्दौर	160 = 00
5	गुप्तदान रसीद न 329	111 = 00	6	श्री अक्षय कुमार जैन इन्जिनीयरिंग कॉलेज कोटा	101 = 00
7	श्री पदम चन्द जैन सर्राफ आगरा	251 = 00			

देहली

1	गुप्तदान रसीद न 392	1100 = 00	2	श्री राज बहादुर जैन अशोक विहार	251 = 00

कानपुर

1	श्री जे पी जैन	1000 = 00	2	श्री केशवदेव जैन स्व पिता	
3	श्री राज कुमार जैन	1100 = 00		श्री हीरालाल की पुण्य स्मृति	1102 = 00
4	श्री प्रफुल्ल किशोर जैन	1000 = 00	5	श्री कैलाश चन्द जैन	1101 = 00
6	श्री जैन बहादुर जैन	555 = 00	7	श्री अनिल कुमार जैन	501 = 00
8	श्री आलोक कुमार जैन	1001 = 00	9	श्री प्रहलाद राय जैन	501 = 00
10.	श्री शैशव चन्द जैन	201 = 00	11	श्री प्रेम कुमार जैन	101 = 00
12.	श्रीमती डा प्रतिभा रोहनी	555 = 00	13	श्री प्रसन्न कुमार जैन	501 = 00
14.	श्री मनिष जैन	201 = 00			

सागर एम. पी. द्वारा श्री निर्मल कुमार सिंघई

1	श्री मन्नुलाल	501 = 00	2	श्री गुलाब चन्द जैन	501 = 00
3	श्री गुप्तदान रसीद न 402	501 = 00	4	श्रीमती प्रभा जैन शिक्षिका	501 = 00
5	श्री कृष्णा चन्द जैन	201 = 00	6	श्री गरवि चन्द जैन	201 = 00
7	श्रीमती जयन्ति बाई	201 = 00	8	श्री अभय कुमार	151 = 00
9	श्री महेन्द्र कुमार जेन	101 = 00	10	श्री निर्मल कुमार सिहई	101 = 00
11	श्री महेन्द्र कुमार सर्राफ	101 = 00	12	श्री सुखलाल समैया	101 = 00
13	श्री प्रकाश चन्द राकेश कुमार	101 = 00	14	श्री भाग चन्द भडारी	101 = 00
15.	श्री गुलाब चन्द हिनौंद वाले	101 = 00	16	श्री हेमचन्द जैन ढानावाले	101 = 00
17	श्री मगन लाल बाबूजी	101 = 00	18	श्री नन्हे लाल गोकलपुर	101 = 00
19.	श्री रुपचन्द्र पिथौली वाले	101 = 00	20	श्री के एल जैन मन्दसौर	101 = 00
21.	श्रीमती शशि बाई	101 = 00	22	श्रीमती प्रभा बाई समैया	101 = 00
23	श्रीमती सुनिता हिन्नौद वाली	101 = 00	24	श्रीमती चैना बाई	101 = 00
25	श्रीमती सूरज बाई	101 = 00	26	श्रीमती शिमला	101 = 00
27.	श्रीमती सावित्री बाई समैया	101 = 00	28	श्रीमती उमा रानी समैया	101 = 00
29.	श्रीमती नन्हो बाई रामपुरा	101 = 00	30	श्रीमती कान्ता बाई	101 = 00
31.	श्रीमती शोभा जैन रामपुरा	101 = 00	32	श्रीमती कमलेश	101 = 00
33	श्रीमती सरला रामपुरा	101 = 00	34	श्रीमती कल्पना जैन नीम वाली	101 = 00
35.	श्रीमती पुष्पा चौधरी	101 = 00	36	श्रीमती कुशमरानी मान चौक वाली	101 = 00
37.	श्रीमती बसन्तरानी माणक चौक	101 = 00	38	श्रीमती शशि समैया	101 = 00
39	श्रीमती सुशीला बाई हिन्नौदवाली	101 = 00	40	श्रीमती विमला रानी मानक चौक	101 = 00
41	श्रीमती ममता नीम वाली	101 = 00	42	श्रीमती चन्दा खदैरीवाली	101 = 00
43.	श्रीमती चन्दा खदैरीवाली	101 = 00	44	श्रीमती क्रान्ति बाई	51 = 00
45.	श्रीमती उर्मिला रामपुरा	51 = 00	46	श्रीमती पुष्पा बाई	51 = 00
47	श्रीमती मणि बाई	51 = 00	48	श्रीमती ऊषा बाई समैया	51 = 00
49	श्रीमती शान्ति बाई रामपुरा	51 = 00	50	श्रीमती उषा अमर बाडा	51 = 00
51.	श्रीमती कुसुम बाई समैया	51 = 00	52	श्रीमती गजरा बाई रामपुरा	51 = 00
53.	श्रीमती चन्दा बाई मणि रहेल्ली	51 = 00	54	श्रीमती कुसुम बाई चकराधार	51 = 00
55.	श्री मनोज कुमार नक्स वाहा	51 = 00	56	श्री गुलझारी लाल	51 = 00

57	गुप्तदान रसीद न 456	30 = 00	58	श्रीमती सुशीला जैन रजवाह	21 = 00
59	श्रीमती नत्थी बाई रहेली	21 = 00	60	गुप्तदान रसीद नं 459	21 = 00
61	श्री महेन्द्र कुमार जैन	21 = 00	62	श्री नीम वाला परिवार	101 = 00
63	श्रीमती मातेश्वरी श्री आनन्द मोदी	101 = 00	64	श्रीमती सुगन्धी चौधरी	101 = 00
65	श्री राजेन्द्र कुमार सतभैया	201 = 00	66	श्रीमती शीला नायका	101 = 00

उज्जैन

1	ब्र पुष्पलता, ब्र ज्ञानधारा ब्र समता बहन	1000 = 00	2	श्री महावीर दि जि म ट्रस्ट	500 = 00
3	श्री फूल चन्द विमल चद झाझरी	400 = 00	4	श्रीमती मीना जैन	201 = 00
5	श्रीमती सज्जन बाई	251 = 00	6	श्री गुप्तदान रसीद न 374	151 = 00
7	श्री बेलजी लाल शाह	101 = 00	8	श्री सूरज मल गोधा	101 = 00
9	श्रीमती लता बाई सेठी	101 = 00	10	श्रीमती विमला बाई गोधा	101 = 00
11	श्रीमती चन्दप्रभा देवी भिन्डा	101 = 00	12	श्रीमती वीरबाला कासलीवाल	100 = 00
13	श्रीमती कलावती बाई पिपराई	100 = 00	14	श्री कोमल चन्द कासलीवाल	100 = 00
15	श्रीमती शान्ति देवी अभय	100 = 00	16	श्री दीपचन्द्र जी चौधरी	100 = 00
17	श्री रतन लाल कासलीवाल	100 = 00	18	श्री सुरेन्द्र कुमार जैन	100 = 00
19	श्री नेमी चन्द जी दलाल	100 = 00	20	श्री धूरा लाल जैन	51 = 00
21	श्रीमती भागवान्ति जैन	51 = 00	22	श्रीमती गेंद बाई	50 = 00
23	श्री भागचन्द पहाडिया	50 = 00			

झालरापाटन (झालावाड)

1	श्री विक्रान्त पाटनी	1100 = 00	2	श्री शान्तिकुमार कान्तावाई लुहाडिया	500 = 00
3	श्रीमती मुन्नी बाई W/O कमल बडजात्या	104 = 00			

श्रीमहावीर जी (करोली)

1	डा नेम चन्द जैन	339 = 00	2	श्री स्व सौवरण सिह हस्ते उषा जैन	201 = 00
3	कु बन्दना जैन	201 = 00	4	चौ श्री दुष्यन्त सिह (मेरठ)	101 = 00
5	श्री कोमल सिह गगापुर सिटी	101 = 00	6	श्रीमती मर्यादा जैन ध प श्री पवन कुमार फिरोजाबाद	101 = 00
7	श्रीमती क्षमा जैन ध प श्री महेश चन्द जैन	101 = 00	8	श्रीमती अरुण लता ध प श्री अजित कुमार	101 = 00
9	श्रीमती पूनम जैन महावीरजी	101 = 00	10	श्री नीलम जैन W/O अजय कुमार	51 = 00
11	श्री सुनिता जैन ध प सतीष कुमार	51 = 00	12	श्रीमती मीना जैन पुत्री श्री लाल चन्द जैन	251 = 00
13	फ्लाइट ओफीसर श्री राज कुमार जैन	251 = 00			

सूची सदस्य श्री दिगम्बर जैन साहित्य प्रकाशन समिति

1 श्री गुलजारी लाल जैन, सेवानिवृत प्राचार्य, अलवर
2 श्री अजित प्रसाद जैन, कृष्णा कॉलोनी, अलवर
3 श्री कपूर चन्द जैन, प्रो आर आर कॉलेज, अलवर
4. श्री महावीर प्रसाद जैन, बडेरवाले, अलवर (कोषाध्यक्ष)
5 श्री अभयकुमार बोहरा, हकीमजी की गली, अलवर
6 डॉ योगेश जैन अलीगंज (एटा) उ प्र
7 श्री पूनमचन्दजी लुहाड़िया, अजमेर
8. श्री छगनलाल जैन, पाल बीचला, अजमेर
9 श्री प्रेमचन्द जैन, केशरगज, अजमेर
10. श्री लाल चन्द जैन, अजमेर
11 श्री अशोककुमार जेन, डिप्टीमेयर, बेलनगंज, आगरा
12. श्री लक्ष्मीनारायण जैन, एम एससी , फिरोजाबाद
13 श्री अनिलकुमार जैन, एडवोकेट, फिरोजाबाद
14. श्री जैन बहादुर जैन, कानपुर
15 श्री बालचन्दजी पाटनी, कलकता
16 श्री हीराचन्दजी बोहरा, कलकत्ता
17 श्री मलूकचन्द जैन, कोटा
18 श्री मोतीलाल जैन, कोटा
19 श्री अजितकुमार शास्त्री, देवली टोंक
20 श्री प्रतापचन्द जैन, 2, कामा हाउस के पीछे, जयपुर
21. श्री अमरचन्द जैन, सी-12, सेठी कॉलोनी, जयपुर
22 डॉ ए के जैन, अहमदाबाद
23 श्री सुरेन्द्रकुमार जैन, फरीदाबाद (हरियाणा)
24. श्री रतनलाल जैन, अशोका रेडीमेड, अलवर
25 श्री तेज कुमार जैन गंगवाल, इन्दौर (म प्र.)
26 श्री महावीर प्रसाद जैन 'स्वतंत्रता सेनानी' (संयोजक)

भूमिका

किसी भी ग्रंथ की प्रारम्भिक झलक उस ग्रंथ की भूमिका में दिखाई देती है। कोई भी ग्रन्थकार प्रायः ग्रन्थ में अपने जीवन के सम्बन्ध में कुछ नहीं लिखता। यदि सम्भव हो तो भूमिका में पाठक को उनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व से परिचित कराया जाता है। इसलिए सबसे पहले ग्रंथकार का व्यक्तित्व एवं कृतित्व जानना चाहेंगे।

(1) ग्रन्थकार का व्यक्तित्व एवं कृतित्व

श्रीयुत् आदरणीय किशनचन्द जी जैन, जिन्हें अलवर के जैन समाज में "भाई साहब" के नाम से सम्बोधित किया जाता है। आप करणानुयोग के स्वयबुद्ध विशेषज्ञ विद्वान हैं। आपके सम्बन्ध में मुझ जैसे अल्पज्ञ के द्वारा कुछ लिखना सूर्य की दीपक से आरती उतारने जैसा है।

आपका ज्ञान-घट चारों अनुयोगों के ज्ञानामृत से भरा है। यह ग्रन्थ उस घट से छलक पड़ी एक बूंद मात्र है। महत्व प्यास का होता है। जिसे जितनी गहरी, तीव्र प्यास होगी, उसे यह बूंद उतनी प्रिय व मूल्यवान् भासेगी।

आपने 7-3-1938 को भारत-भूमि को अलंकृत किया। जन्मभूमि जलालपुर है, जो तहसील सीकरी जिला भरतपुर (राज.) के अन्तर्गत आती है। पिताजी श्री किरोडीलाल जी एवं माता श्री मोहरादेवी के आप लाडले हैं। आप छह भाई हैं। आप गोत्र से गर्ग, जाति से अग्रवाल व वैष्णव सम्प्रदाय को मानने वाले थे।

आप बचपन में 4 या 5 वर्ष की आयु में तिल्ली के रोग से पीडित हुए, जो एक प्रकार से वरदान साबित हुआ, क्योंकि उसी का इलाज कराने आप अपने मौंसा चौ भौंरेलाल जी जैन के घर (अलवर) सन् 1942 में आये। मौसाजी के घर इलाज कराते हुए लौकिक पढ़ाई प्रारम्भ की। लौकिक पढ़ाई के साथ-साथ जैन पाठशाला में पढ़ने जाने लगे। यहीं आपके कोमल मन पर धर्म के गहरे संस्कार पड़ने प्रारम्भ हुए। इस पाठशाला के प्रधानाध्यापक जैन सिद्धांतों के ज्ञाता पं सुवालालजी थे। वैष्णव सम्प्रदाय में जन्म लेने के कारण आपने वैष्णव ग्रंथो का भी अध्ययन किया। प्रारम्भ से ही आपकी रुचि अध्ययन में थी। कुछ समय पश्चात् आपके पिताजी ने यहीं अलवर में दुकान कर ली।

शैशवकाल से ही आपका मन धार्मिक था। धार्मिक ग्रंथों का अध्ययन आपकी पहली रुचि थी। जैन धर्म की ओर झुकाव सन् 1956 में हो गया। भादों सुदी पञ्चमी से जैन मंदिर मे जाना आरम्भ कर दिया था।

सन् 1957 में आपके जीवन में वह मोड़ आया, जो मोक्ष की ओर मुड़ता है। इसी सन् में सोनगढ़ (गुजरात) से प्रकाशित होने वाली, कहानजी के अमृत-उपदेशों से भरी, धार्मिक संजीवनी बूटी "आत्मधर्म" आपके हाथ लगी, मानो अन्धे को आँख मिली उसी से ज्ञान को सही गति व मति को सच्ची नीति मिली थी। उसकी रुचि आपको ऐसी लगी कि तब तक जितने आत्मधर्म प्रकाशित हुए थे, आपने वे सब मँगा लिये। उनमें आकण्ठ डूबकर उनका अध्ययन किया।

उन्हीं दिनों में अलवर में श्री मनोहरलाल जी वर्णी आये। आप उनके सम्पर्क में रहे। उनसे भी काफी प्रेरणा आपको मिली।

पश्चात् सोनगढ़ जाने का महासंयोग बना। आप वहाँ श्री कहान जी स्वामी से बहुत प्रभावित हुए।

आपकी रुचि करणानुयोग के प्रति विशेष रही है। इस विषय का जो भी शास्त्र उपलब्ध हुआ, उसे खरीद लिया। करणानुयोग के शास्त्र त्रिलोकसार, षट्खण्डागम, गोम्मटसार आदि का बारीकी से अध्ययन किया। करणानुयोग का अलौकिक गणित आपका प्रिय विषय है। वह सब आपको मुँह-जबानी याद है। पढ़ाते समय बिना किताब के प्रतिमा आदि के नाप बताते हैं, जो आपकी रुचि एवं क्षयोपशम-विशेष को दर्शाता है।

आपकी शैली की मिठास का ही परिणाम है कि एक बार आपके प्रवचन या कक्षा के शब्द कान में पड़े तो वे बार-बार आपके पास खींच लाते हैं।

करणानुयोग के अलावा आपका ज्ञान द्रव्यानुयोगादि अन्य तीन अनुयोगों से आलोकित है। आपके ज्ञान की किरणों से कितने ही साधक प्रकाश पा चुके हैं, अब भी पा रहे हैं।

आप करणानुयोग के निष्णात विशेषज्ञ, स्वभाव से सहज सरल हैं। शारीरिक असमर्थताओं के होते हुए भी ज्ञान-विशेष से समर्थ हैं। आपके पास जिज्ञासुओं के अनेक पत्र आते रहते हैं, जिनमें ज्ञानपिपासा की शान्ति हेतु आपको अपने नगर या ग्राम में पधारने का आग्रहभरा निमन्त्रण स्नेहिल शब्दों में होता है। आप भी यथाशक्य उनके आग्रह को टालते नहीं। पत्र इतनी संख्या में आते हैं कि सबको संतुष्ट कर पाना भी संभव नहीं है।

इससे जैन समाज में आपकी ख्याति व सम्मान का आभास मिलता है। प्रसिद्धि से कोसों दूर भागने वाले आप स्वभाव से नम्र, ज्ञान विशेष से भरे हुए होने से प्रसिद्धि आपके पीछे अपने आप ही भागती है। आपकी विद्वता से प्रभावित होकर आपके अनुज डॉ ओमप्रकाश जी गर्ग ने भी जैनधर्म ग्रहण कर लिया है। आपके पाँच पुत्र व एक पुत्री हैं।

आपने लौकिक पढ़ाई में राजर्षि महाविद्यालय अलवर से B. Com. सन् 1961 में किया। पश्चात् आजीविका के लिए जैन सीनियर सैकण्डरी स्कूल, अलवर में अध्यापक की नौकरी की। इस नौकरी में अध्ययन के लिए कम समय मिलने लगा, तब आपने इसी स्कूल के कार्यालय में स्थानान्तरण करवा लिया। वहीं से आप दि 31-3-1996 को सेवानिवृत्त हुए। सेवानिवृत्ति के बाद भारतवर्ष में दूर-दूर जाकर करणानुयोग का प्रचार-प्रसार कर रहे हैं।

आपको अपनी विद्वत्ता का किञ्चित् भी अहंकार नहीं है, आप अलवर की खड़ी बोली में पढ़ाते हैं। पढ़ाने का तरीक इतना सुन्दर है कि आपकी कक्षा में एक बार बैठने पर उठने का मन नहीं करता। आप घर से महीनों दूर रहकर जिनवाणी का निस्वार्थ प्रचार-प्रसार करते हैं। यह आपका जिनवाणी-प्रेम ही है। सच्चे देवगुरुशास्त्र का सदा यही संयोग बना रहे। और आप सिद्ध बनकर हमारे नमस्कार को प्राप्त करें। यही भावना है।

ग्रन्थकार का कृतित्व

प्रस्तुत ग्रंथ के अलावा किशनचन्द जी के नाम से चार ग्रंथ मिलते हैं-

(1) क्या ईश्वर सृष्टि का कर्ता है ? (प्रथम भाग), (2) अध्यात्मसार (प्रथम भाग) (3) देवदर्शन कैसे और क्यों ? (4) णमोकारमन्त्र शुद्धपाठ कौन सा और क्यो ?

(1) क्या ईश्वर सृष्टि का कर्ता हैं ? (प्रथम भाग)

यह श्री दिगम्बर जैन मुमुक्षु मण्डल, अलवर (राजस्थान) द्वारा सन् 1964 में प्रकाशित शोधपूर्ण निबन्ध है। यह 52 पृष्ठों में लिखा गया है। इसका दूसरा संस्करण सन् 1987 में प्रकाशित हुआ है। यह प्रथम भाग है। ग्रंथ के अन्त में ''तथा वे शास्त्रों में कथादिक का निरुपण करते हैं, वहाँ विचार करने पर विरुद्धाभासित होता है, क्रमशः ।'' इस प्रकार अपूर्ण वाक्य मिलता है। इससे स्पष्ट है कि लेखक दूसरा भाग भी लिखना चाहते थे, किन्तु अब तक लिखा नहीं गया है। हो सकता है, वे भविष्य में लिखेंगे।

ग्रन्थ में श्रीमद् राजचन्द्र, भैया भगवतीदास, पं जवाहरलाल नेहरू, बैरिस्टर चम्पतराय, लालालाजपतराय, तुलसीदास इत्यादि भारतीय विद्वानों के तथा एच.जी, वैल्स, विलियम जैम्स, प्रो हेल्म होल्टज, कामटे, लेग, हक्सले, प्लेटिनस, मैक्टैगर्ट, कैनन, राशडल, कान्ट, प्रो टिन्डल, प्रो. नाइट, जे एस मिल इत्यादि पाश्चात्य विद्वानों के मन्तव्यों का प्रयोग करते हुए सिद्ध किया है कि "ईश्वर सृष्टि का कर्त्ता-हर्त्ता नहीं (2) ईश्वर कर्मों का फल अथवा दण्ड व सुख व भोग नहीं देता (3) जीवों को पाप-पुण्य करने के लिए प्रेरक भी नहीं है।"[1]

(2) अध्यात्मसार (प्रथम भाग)

यह नेमीचन्द शान्तिदेवी जैन ग्रन्थमाला, अलवर (राजस्थान) से सन् 1989 में प्रकाशित है। यह 96 पृष्ठों में लिखा गया है। इसमें 152 प्रश्नोत्तर हैं। यह प्रथम भाग है। शायद लेखक और भी प्रश्नोत्तर लिखना चाहते थे। परन्तु अब तक प्रकाशित नहीं हुए हैं। हो सकता है, वे भविष्य में लिखेंगे।

इसका सम्पादन स्वयं ने ही किया है। ये प्रश्नोत्तर उनकी निजी डायरी मे लिखे हुए प्रश्नोत्तरो में से संकलित हैं। आप स्वाध्याय के समय हृदय को छू लेने वाली मार्मिक पक्तियों को डायरी में उतारते थे, उन पंक्तियो को प्रश्नोत्तर का रूप देकर संपादित किया है। ये प्रश्नोत्तर द्रव्यानुयोग से सम्बन्धित हैं, जिसका उल्लेख आपने सम्पादकीय मे किया है-

"द्रव्यानुयोग रूप अध्यात्मिक शास्त्रो का स्वाध्याय करते समय मुझे जो पक्तियाँ हृदय को छूने वाली लगी, उनको एक छोटी डायरी मे लिखता जाता था।"

(3) देवदर्शन कैसे और क्यों ?

यह नेमीचन्द शान्तिदेवी जैन ग्रंथमाला, अलवर (राजस्थान) से सन् 1990 में प्रकाशित लघु शोध-निबन्ध है। यह 58 पृष्ठो में है। इसमे देवदर्शन के लिए कैसे जाना चाहिए ? मदिर में प्रवेश कैसे करें ? आवर्त्त तथा शिरोनति किस प्रकार करें ? इत्यादि 34 बिन्दुओ का वर्णन है।

(4) णमोकार मन्त्र शुद्ध पाठ कौनसा और क्यों ?

यह नेमीचन्द शांतिदेवी जैन ग्रंथमाला, अलवर (राजस्थान) द्वारा सन् 1991 में प्रकाशित लघु शोध-निबन्ध है। यह 25 पृष्ठों में है। इसके शीर्षक से ही स्पष्ट है कि इसमें णमोकार मन्त्र का शुद्ध पाठ कौन सा है, कौन सा नहीं है- यह विषय शंका समाधान के माध्यम से तर्क देकर सिद्ध किया है।

---

[1] ग्रन्थ के प्रारम्भ में प सुवालाल जी द्वारा लिखित, "दो शब्द" से

इसके अलावा और भी प्रकाशन योग्य रचनाएँ आपके पास हो सकती है। क्योंकि आपका जीवन जिनवाणी की सेवा में समर्पित है। अध्ययन-अध्यापन व यथाशक्य लेखन ही आपके जीवन का लक्ष्य है।

प्रस्तुत ग्रन्थ करणानुयोग से सम्बन्धित है। अत: जैन आगम में करणानुयोग का स्थान, प्रयोजन आदि विचारणीय विषय है। इसलिए अब जैन आगम और करणानुयोग पर विचार करते हैं।

2. जैन आगम एवं करणानुयोग

जैनदर्शन में राग द्वेष रहित हितोपदेशी सर्वज्ञ अर्हन्त भगवान के द्वारा उपदेशित वाणी को "जिनवाणी" कहते हैं।[1] यही कारण है कि जैन दर्शन के प्रत्येक ग्रन्थ के मूलकर्त्ता अर्हन्त माने गए हैं।[2] अर्हन्त भगवान के द्वारा उपदिष्ट वह वाणी विषय की दृष्टि से चार भागों में विभाजित की गई है। उस विभाजन को "अनुयोग" नाम दिया है ग्रथकार किशनचन्द जी ने चारों अनुयोगों को खाट के चार पाये बताया और लिखा है- "खाट का एक भी पाया कमजोर हो तो उस पर सोने वाला सुख की नींद नहीं सो सकता है। उसी प्रकार चारों अनुयोगों का महत्त्व समझना चाहिए" वे अनुयोग चार हैं- (1) प्रथमानुयोग (2) करणानुयोग (3) चरणानुयोग (4) द्रव्यानुयोग।

---

1 "केवल ज्ञान के अनन्तवे भाग प्रमाण तो तत्वोपदेश का अर्थ दिव्यध्वनि मे खिरता है, जितना केवल ज्ञान मे वस्तु का स्वरूप झलके वह सब तत्व का स्वरूप दिव्यध्वनि द्वारा कहने मे नही आता क्योकि वचनवर्गणा की ऐसी सामर्थ्य नही है। अत· सर्वज्ञ के ज्ञान के अनन्तवे भाग मात्र जिनवाणी के अर्थ का प्रमाण जानना। उसके अनन्तवे भाग गणधर देव झेलते है और उसके भी सख्यातवे भाग परम्परागत आचार्य रचना करते है- ऐसा अर्थ जानना।"

रायमल्ल जी, "चर्चासग्रह" के चुने हुए प्रश्नोत्तर से, पृष्ठ-97

2 "अस्य मूलग्रथकर्त्तार: श्री सर्वज्ञदेवा:" किसी भी शास्त्र के वाचन के प्रारम्भ मे पढ़ा जाने वाला मगलाचरण।

प्रथमानुयोग

"तीर्थंकर चक्रवर्ती आदि महान् पुरुषों के चरित्र का जिसमें निरुपण किया हो, वह प्रथमानुयोग है।"[1]

"प्रथम अर्थात् अव्युत्पन्नमिथ्या दृष्टि, उनके अर्थ जो अनुयोग. सो प्रथमानुयोग है।"[2]

प्रथमानुयोग में धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चार पुरुषार्थो का कथन होता है।[3] उसे चरित्र, पुराण, पुण्य तथा निधान कहा जाता है।[4]

चरणानुयोग

"गृहस्थ-मुनि के धर्म आचरण करने का निरुपण जिसमें हो वह चरणानुयोग है।"[5]

"गृह में आसक्त है बुद्धि जिनकी ऐसे गृहस्थ, गृह से विरक्त होकर गृह के त्यागी ऐसे अनगार अर्थात् यति, उनका चारित्ररूप जो सम्यक् आचरण, उसकी उत्पत्ति, वृद्धि और रक्षा का अंग अर्थात् कारण ऐसे चरणानुयोग.. है।"[6]

द्रव्यानुयोग

"षटद्रव्य, सप्त तत्त्वादिक का व स्वपर भेद विज्ञानादिक का जिसमें निरुपण हो, वह द्रव्यानुयोग है।"[7]

"जो द्रव्यानुयोग रूप दीपक है, वह जीव और अजीव इन दोनो निर्बाध तत्वों को, पुण्य-पाप को तथा बन्ध-मोक्ष को भावश्रुतज्ञान रूप सम्यग्ज्ञान प्रकाश के द्वारा "जैसा इनका स्वरूप है, वैसा" प्रकाशित करता है।[8]

---

1 प्रस्तुत गथ, अध्याय अट्ठारहवॉं, पृष्ठ 121

2 प टोडरमल जी कृत मोक्षमार्ग प्रकाशक, अध्याय 8, पृष्ठ 268।

3 I प टोडरमल जी कृत मोक्ष मार्ग प्रकाशक, अध्याय 8 पृष्ठ 269 तथा

II प्रथम मिथ्यादृष्टिमव्रतिकमव्युत्पन्न वा प्रतिपाद्यमाश्रित्य प्रवृतोऽनुयोगो अधिकार प्रथमानुयोग । गोम्मटसार जीवकाड टीका गाथा 361-62

III "प्रथमानुयोगमर्थाख्यानम् "

प्रथमानुयोग मे चारो पुरुषार्थों का कथन होता है।

(रत्नकरण्ड श्रावकाचार अध्याय-2 गाथा स.2)

4 "उस प्रथमानुयोग को एक रूप के आचरण की कथा कहने से "चरित्र" त्रेसठ शलाका पुरुषों का वर्णन होने से" पुराण, वक्ता- श्रोताओ को पुण्य की उत्पत्ति का कारण होने से "पुण्य" तथा चार आराधना की प्राप्ति एव पूर्णता का वर्णन होने से "निधान" कहा जाता है। (रत्नकरण्ड श्रावकाचार अध्याय-2, गाथा-2 का भावार्थ)

5 मोक्ष मार्ग प्रकाशक. अध्याय आठवॉं, पृष्ठ 268।

6 गृहमेध्यनगाराणा चारित्रोत्पत्ति वृद्धि रक्षाड गम्।

चरणानुयोगसमयम् ॥

रत्नकरण्ड श्रावकाचार, अध्याय 2, गाथा-4

7 मोक्षमार्ग प्रकाशक, अध्याय आठवॉं, पृष्ठ 268

8 "जीवाजीवसुतत्वे पुण्य पापे च बन्धमोक्षौ च।"

द्रव्यानुयोग दीप श्रुतविद्या लोकमातनुते॥

रत्नकरण्ड श्रावकाचार, अध्याय-2, गाथा-5

करणानुयोग

"गुणस्थान-मार्गणादिरूप जीव का व कर्मो का व त्रिलोकादिक का जिसमें निरुपण हो वह करणानुयोग है।"[1]

"करण अर्थात् गणित कार्य के कारण रूप सूत्र उनका जिसमें अनुयोग-अधिकार हो, वह करणानुयोग है। इसमें गणित वर्णन की मुख्यता होती है-ऐसा जानना।"[2]

"करणानुयोग ..... लोक और अलोक के विभाग को, उत्सर्पिणी के छह काल व अपसर्पिणी के छह काल के परिवर्तन को तथा चार गतियों के परिभ्रमण को दर्पण के समान दिखाने वाला है।"[3]

"जिसमें छह द्रव्यों का समूह रूप लोक एवं केवल आकाश द्रव्य रूप अलोक अपने गुण एव पर्यायों सहित प्रतिबिम्बित हो रहे हैं, छहों कालों के निमित्त से जीव और पुद्गलों की जैसी पर्याये हैं, वे सब प्रतिबिम्बित होकर झलक रही हैं तथा चारों गतियों का स्वरूप जिसमें प्रकट झलकता है, वह दर्पण के समान करणानुयोग है।"[4]

इन चारो अनुयोगों को जिनवाणी कहते हैं। प्रत्येक अनुयोग का अपना-अपना प्रयोजन है एव व्याख्यान शैली है।[5]

प्रत्येक अनुयोग का अपना-अपना अलग-अलग दृष्टि से महत्त्व है। अपने परिणामों की अवस्था देखकर अनुकूल अनुयोग का अभ्यास करना चाहिए।[6]

---

1 मोक्षमार्ग प्रकाशक अध्याय आठ, पृष्ठ 268।

2 " " " पृष्ठ 270।

3 "लोकालोक विभक्तेर्युग परिवृत्तेश्चतुर्गतीना च ।
आदर्शमिव तथामतिवैति करणानुयोग च ॥
रत्नकरण्ड श्रावकाचार, अध्याय-2, गाथा-3

4 रत्नकरण्ड श्रावकाचार, अध्याय-2, गाथा-3 का भावार्थ ।

5 प्रत्येक अनुयोग का प्रयोजन एव व्याख्यान शैली जानने के लिए टोडरमल जी कृत मोक्ष मार्ग प्रकाशक का आठवाँ अध्याय आद्योपान्त पठनीय है।

6 "पहले इसका अभ्यास करना, फिर इसका करना- ऐसा नियम नहीं है। परन्तु अपने परिणामो की अवस्था देखकर जिसके अभ्यास से अपनी धर्म मे प्रवृत्ति हो, उसी का अभ्यास करना।" मोक्षमार्ग प्रकाशक अध्याय-आठ, पृष्ठ 304

"प्रथमानुयोग में अलंकार की मुख्यता है, करणानुयोग में गणित की, चरणानुयोग में नीति (सुभाषित) की तथा द्रव्यानुयोग में तर्क (न्याय) की मुख्यता है।"[1]

इन चारों अनुयोगो में प्रस्तुत ग्रंथ करणानुयोग से सम्बन्धित है। करणानुयोग का उद्देश्य निम्न प्रकार से है।

करणानुयोग का प्रयोजन

"करणानुयोग में जीवो के व कर्मो के विशेष तथा त्रिलोकादिक की रचना निरुपित करके जीवों को धर्म मे लगाया है। जो जीव धर्म में उपयोग लगाना चाहते हैं, वे जीवों के गुणस्थान-मार्गणा आदि विशेष तथा कर्मो के कारण-अवस्था-फल किस-किसके कैसे-कैसे पाये जाते हैं- इत्यादि विशेष तथा त्रिलोक में नरक-स्वर्गादि के ठिकाने पहिचान कर पाप से विमुख होकर धर्म मे लगते हैं। तथा ऐसे विचार मे उपयोग रम जाये तब पाप प्रवृत्ति छूटकर स्वयमेव तत्काल धर्म उत्पन्न होता है, उस अभ्यास से तत्त्वज्ञान की भी प्राप्ति शीघ्र होती है तथा ऐसा सूक्ष्म कथन जिनमत में ही है, अन्यत्र नहीं है, इस प्रकार महिमा जानकर जिनमत का श्रद्धानी होता है।

तथा जो जीव तत्त्वज्ञानी होकर इस करणानुयोग का अभ्यास करते हैं, उन्हें यह उसके विशेषणरूप भासित होता है। जो जीवादिक तत्त्वों को आप जानता है, उन्हीं के विशेष करणानुयोग मे किये हैं, वहाँ कितने ही विशेषण तो यथावत् निश्चय रूप हैं, कितने ही उपचार सहित व्यवहार रूप हैं, कितने ही द्रव्य क्षेत्र काल भावादिक के स्वरूप प्रमाणादि रूप हैं, कितने ही निमित्त आश्रयादि अपेक्षा सहित है- इत्यादि अनेक प्रकार के विशेषण निरुपित किए हैं, उन्हें ज्यों-का-त्यो मानता हुआ उस करणानुयोग का अभ्यास करता है। इस अभ्यास से तत्त्वज्ञान निर्मल होता है।

जैसे कोई यह तो जानता था कि यह रत्न है, परन्तु उस रत्न के बहुत से विशेष जानने पर निर्मल रत्न का पारखी होता है, उसी प्रकार तत्त्वों को जानता था कि यह जीवादिक हैं, परन्तु उन तत्त्वों के बहुत विशेष जाने तो निर्मल तत्त्वज्ञान होता है।

---

1 ब्र रायमलजी, चर्चा सग्रह (चुने हुए प्रश्नोत्तर पृष्ठ-2)

तत्त्वज्ञान निर्मल होने पर आप ही विशेष धर्मात्मा होता है। तथा अन्य ठिकाने उपयोग को लगाए तो रागादिक की वृद्धि होती है, और छद्मस्थ का उपयोग निरन्तर एकाग्र नहीं रहता, इसलिए ज्ञानी इस करणानुयोग के अभ्यास में उपयोग लगाता है, उससे केवलज्ञान द्वारा देखे गए पदार्थों का जानपना इसके होता है। प्रत्यक्ष- अप्रत्यक्ष ही का भेद है, भासित होने में विरुद्धता नहीं है। इस प्रकार करणानुयोग का प्रयोजन जानना।''

टोडरमलजी के इस व्याख्यान से करणानुयोग के अध्ययन के आठ प्रयोजन प्रतीत होते हैं- (1) करणानुयोग का अभ्यासी नरक-स्वर्गादिक के स्थानों को जानकर पाप से विमुख होकर धर्म मे लगता है। (2) यदि उपयोग वहाँ रम जाये तब उसकी पाप प्रवृत्ति छूटकर उसे स्वयमेव तत्काल धर्म उत्पन्न होता है। (3) इस अनुयोग के अभ्यास से तत्त्वज्ञान की प्राप्ति होती है (4) सूक्ष्म यथार्थ कथन जानकर जिनमत का श्रद्धानी होता है। (5) इस अभ्यास से तत्त्वज्ञान निर्मल होता है। (6) तत्त्वज्ञान निर्मल होने से विशेष धर्मात्मा होता है (7) उपयोग तत्त्वज्ञान मे ही बना रहता है (8) केवलज्ञानवत् पदार्थों का जानपना होता है।

(3) करणानुयोग और केवलज्ञान

''करणानुयोग में तो केवलज्ञान के जानपने की मुख्यता रूप तारतम्य को लिए हुए हैं।''

''जैसा केवलज्ञान द्वारा जाना वैसा करणानुयोग में व्याख्यान है।''[3]

इसलिए केवल ज्ञान के साथ करणानुयोग का अभिन्न सम्बन्ध है। टोडरमल जी तो यहाँ तक कहते हैं कि केवलज्ञान एव करणानुयोग के ज्ञान में केवल प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष ही का अन्तर है[4] अन्यथा केवलज्ञान और करणानुयोग के ज्ञान में अन्य कोई अन्तर नही। इससे सिद्ध है कि करणानुयोग में जैसा केवलज्ञान में जाना जाता है, वैसा ही ज्ञान है। केवलज्ञान द्वारा तो बहुत जाना, परन्तु जीवको कार्यकारी जीव कर्मादिक का व त्रिलोकादिक का ही निरुपण इसमें होता है तथा

---

1 मोक्षमार्ग प्रकाशक, आठवाँ अध्याय-पृष्ठ 269-270

2 ब्र रायमलजी, चर्चा संग्रह चुने हुए प्रश्नोत्तर पृष्ठ -2

3 मोक्ष मार्ग प्रकाशक, अध्याय 8 पृष्ठ 275

4 ''केवलज्ञान द्वारा देखे गए पदार्थों का जानपना इसके होता है, प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष ही का भेद है, भासित होने मे विरुद्धता नहीं है।''
मोक्ष मार्ग प्रकाशक अध्याय 8 पृष्ठ-270

उनका भी स्वरूप सर्व निरुपित नही हो सकता, इसलिए जिस प्रकार वचनगोचर होकर छद्मस्थ के ज्ञान में उनका कुछ भाव भासित हो, उस प्रकार संकुचित करके निरुपण करते हैं। यहाँ उदाहरण- जीव के भावों की अपेक्षा गुणस्थान कहे हैं, वे भाव अनन्तस्वरूप सहित वचनगोचर नहीं हैं, वहाँ बहुत भावों की एक जाति करके चौदह गुणस्थान कहे हैं। तथा जीवो को जानने के अनेक प्रकार हैं, वहाँ मुख्य चौदह मार्गणा का निरुपण किया है। तथा कर्मपरमाणु अनन्त प्रकार शक्तियुक्त हैं उनमे बहुतो की एक जाति करके आठ व एक सौ अड़तालीस प्रकृतियाँ कही हैं तथा त्रिलोक में अनेक रचनाएँ हैं, वहाँ कुछ मुख्य रचनाओं का निरुपण कहते हैं। तथा प्रमाण के अनन्त भेद हैं, वहाँ संख्यातादि तीन भेद व इनके इक्कीस भेद निरुपित किये हैं।

इस प्रकार केवलज्ञान में करणानुयोग के ज्ञान में जो अन्तर है, वह जानना चाहिए। प्रसंगानुसार करणानुयोग के व्याख्यान का विधान जानने योग्य है।

करणानुयोग के व्याख्यान का विधान

''करणानुयोग में यद्यपि वस्तु के क्षेत्र, काल, भावादिक अखंडित हैं, तथापि छद्मस्थ को हीनादिक ज्ञान होने के अर्थ प्रदेश, समय, अविभाग-प्रतिच्छेदादिक की कल्पना करके उनका प्रमाण निरुपित करते हैं तथा एक वस्तु में भिन्न-भिन्न गुणो का व पर्यायो का भेद करके निरुपण करते हैं तथा जीव पुद्गलादिक यद्यपि भिन्न-भिन्न हैं, तथापि सम्बन्धादिक द्वारा अनेक द्रव्य से उत्पन्न गति, जाति आदि भेदों को एक जीव के निरुपित करते हैं इत्यादि व्याख्यान व्यवहारनय की प्रधानता सहित जानना क्योंकि व्यवहार के बिना विशेष नहीं जान सकता। तथा कहीं निश्चय वर्णन भी पाया जाता है। जैसे जीवादिक द्रव्यो का प्रमाण निरुपण किया, वहाँ भिन्न-भिन्न इतने ही द्रव्य हैं। वह यथासम्भव जान लेना।

तथा करणानुयोग मे जो कथन है, वे कितने ही तो छद्मस्थ के प्रत्यक्ष अनुमानादि गोचर होते हैं तथा जो न हों, उन्हें आज्ञा प्रमाण द्वारा मानना । जिस प्रकार जीव-पुद्गल के स्थूल बहुत काल स्थायी मनुष्यादि पर्याये व घटादि पर्याये निरुपित कीं, उनके तो प्रत्यक्ष अनुमानादि हो, सकते हैं, परन्तु प्रति समय सूक्ष्म-परिणमन की अपेक्षा ज्ञानादिक के व स्निग्ध-रुक्षादिक के अश निरुपित किए हैं, वे आज्ञा से ही प्रमाण होते हैं। इसी प्रकार अन्यत्र जानना।

---

1 मोक्षमार्ग प्रकाशक 8 वाँ अध्याय पृष्ठ 275

तथा करणानुयोग में छद्मस्थों की प्रवृत्ति के अनुसार वर्णन नहीं किया है, केवलज्ञानगम्य पदार्थों का निरुपण है। जिस प्रकार कितने ही जीव तो द्रव्यादिक का विचार करते हैं व व्रतादिक पालते हैं, परन्तु उनके अंतरंग सम्यक्त्व चारित्र शक्ति नहीं है, इसलिए उनको मिथ्यादृष्टि अव्रती कहते हैं। तथा कितने ही जीव द्रव्यादिक के व व्रतादिक के विचार रहित हैं, अन्य कार्यो में प्रवर्तते हैं, व निद्रादि द्वारा निर्विचार हो रहे हैं, परन्तु उनके सम्यक्त्वादि शक्ति का सद्भाव है, इसलिए उनको सम्यक्त्वी व व्रती कहते हैं।

तथा किसी जीव के कषायों की प्रवृत्ति तो बहुत है और उसके अंतरंग कषाय शक्ति थोड़ी है, तो उसे मन्दकषायी कहते हैं। तथा किसी जीव के कषायों की प्रवृत्ति तो थोड़ी है और उनके अतरंग कषायशक्ति बहुत है, तो उसे तीव्रकषायी कहते हैं। जैसे-व्यंतरादिक देव कषायों से नगर नाशादि कार्य करते हैं, तथापि उनके थोडी कषायशक्ति से पीतलेश्या कही है और एकेन्द्रियादिक जीव कषाय कार्य करते दिखाई नहीं देते, तथापि उनके बहुत कषायशक्ति से कृष्णादिलेश्या कही है। तथा सर्वार्थसिद्धि के देव कषायरूप थोड़े प्रवर्तते हैं, उनके बहुत कषायशक्ति से असंयम कहा है और पचम गुणस्थानी व्यापार अब्रह्मादि कषायकार्य रूप बहुत प्रवर्तते हैं, उनके मन्दकषायशक्ति से देशसंयम कहा है। इसी प्रकार अन्यत्र जानना।

तथा किसी जीव के मन-वचन-काय की चेष्टा थोड़ी होती दिखाई दे, तथापि कर्माकर्षण शक्ति की अपेक्षा बहुत योग कहा है। किसी के चेष्टा बहुत दिखाई दे, तथापि शक्ति की हीनता से अल्पयोग कहा है। जैसे केवली गमनादि क्रिया रहित हुए, वहाँ भी उनके योग बहुत कहा है। द्विन्द्रियादिक जीव गमनादि करते हैं, तथापि उनके योग अल्प कहा है। इसी प्रकार अन्यत्र जानना।

तथा कहीं जिसकी व्यक्तता कुछ भासित नहीं होती, तथापि सूक्ष्मशक्ति के सद्भाव से उसका वहाँ अस्तित्व कहा है। जैसे मुनि के अब्रह्म कार्य कुछ नहीं है, तथापि नववें गुणस्थान पर्यत मैथुन संज्ञा कही है। अहमिन्द्रों के दुःख का कारण व्यक्त नहीं है, तथापि कदाचित असाता का उदय कहा है। इसी प्रकार अन्यत्र जानना।

तथा करणानुयोग सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रादिक धर्म का निरुपण कर्म प्रकृतियों के उपशमादिक की अपेक्षा सहित सूक्ष्म शक्ति जैसे पायी जाती है, वैसे गुणस्थानादि में निरुपण करता है व सम्यग्दर्शनादि के विषयभूत जीवादिको का भी निरुपण

सूक्ष्मभेदादि सहित करता है। यहाँ कोई करणानुयोग के अनुसार आप उद्यम करे तो हो नहीं सकता, करणानुयोग मे तो यथार्थ पदार्थ बतलाने का मुख्य प्रयोजन है, आचरण कराने की मुख्यता नहीं है। इसलिए यह तो चरणानुयोगादिक के अनुसार प्रवर्तन करे, उससे जो कार्य होना है, वह स्वयमेव ही होता है। जैसे आप कर्मों के उपशमादि करना चाहें तो कैसे होंगे ? आप तो तत्वादिक का निश्चय करने का उद्यम करें, उससे स्वयमेव ही उपशमादि सम्यक्त्व होते हैं। इसी प्रकार अन्यत्र जानना।

एक अन्तर्मुहूर्त में ग्यारहवें गुणस्थान से गिरकर क्रमशः मिथ्यादृष्टि होता है और चढ़कर केवलज्ञान उत्पन्न करता है। सो ऐसे सम्यक्त्वादि के सूक्ष्मभाव बुद्धिगोचर नहीं होते। इसलिए करणानुयोग के अनुसार जैसे के तैसा जान तो ले, परन्तु प्रवृत्ति बुद्धिगोचर जैसा भला हो वैसी करें।

तथा करणानुयोग में भी कहीं उपदेश की मुख्यता सहित व्याख्यान होता है, उसे सर्वथा उसी प्रकार नहीं मानना। जैसे- हिंसादिक के उपाय को कुमतिज्ञान कहा है, अन्य मतादिक के शास्त्राभ्यास को कुश्रुतज्ञान कहा है बुरा दिखे, भला न दिखे, उसे विभग ज्ञान कहा है, सो इनको छोडने के अर्थ उपदेश द्वारा ऐसा कहा है। तारतम्य से मिथ्यादृष्टि के सभी ज्ञान कुज्ञान हैं, सम्यग्दृष्टि के सभी ज्ञान सुज्ञान हैं। इसी प्रकार अन्यत्र जानना।

तथा कहीं स्थूल कथन किया हो, उसे तारतम्यरूप नहीं जानना। जिस प्रकार व्यास से तीन गुनी परिधि कही जाती है, परन्तु सूक्ष्मता से कुछ अधिक तीन गुनी होती है। इसी प्रकार अन्यत्र जानना।

तथा कही मुख्यता की अपेक्षा व्याख्यान हो, उसे सर्व प्रकार नहीं जानना । जैसे मिथ्यादृष्टि और सासादन गुणस्थान वालों को पापजीव कहा है, असयतादि गुणस्थानवालों को पुण्यजीव कहा है, सो मुख्यपने से ऐसा कहा है, तारतम्य से दोनो के पापपुण्य यथासम्भव पाये जाते हैं। इसी प्रकार अन्यत्र जानना।

ऐसे ही और भी नाना प्रकार पाये जाते हैं, उन्हें यथासंभव जानना।

इस प्रकार करणानुयोग में व्याख्यान का विधान बताया।[1]

करणानुयोग का अध्ययन अप्रयोजनभूत नहीं, अपितु प्रयोजन भूत, अनेक लाभदायक, उपयोग प्रशस्त रखने वाला है। यह ग्रन्थकार ने प्रस्तुत ग्रंथ के अट्ठारहवें अध्याय में सिद्ध किया है। करणानुयोग गणितादि के कारण कठिन नहीं है, अपितु उसका अभ्यास न होने से कठिनता प्रतीत होती है। टोडरमल जी के अनुसार इसका ज्ञान मन्दबुद्धि, विशेषबुद्धि दोनों को हो सकता है- मन्दबुद्धि को बार-बार अभ्यास से एवं विशेष बुद्धिवान् को किञ्चित् प्रयास से हो सकता है। वे प्रेरणा देते हुए लिखते हैं-

---

1 मोक्षमार्ग प्रकाशक, अध्याय 8, पृष्ठ 275-277

''अब भी सभी जीव तो एक से नही हुए हैं। हीनाधिक बुद्धि दिख रही है, इसलिए जैसा जीव हो, वैसा उपदेश देना। अथवा मंदबुद्धि भी सिखाए जाने पर अभ्यास से बुद्धिमान होते देखे जाते हैं। इसलिए जो बुद्धिमान हैं, उनको यह ग्रंथ कार्यकारी है ही और जो मंदबुद्धि है, वे विशेषबुद्धि वालों से सामान्य विशेषरूप गुणस्थानादिक का स्वरूप सीखकर इस शास्त्र के अभ्यास में प्रवर्तन करो।''

करणानुयोग का अध्ययन कठिनता से होता है, इसके बजाय भक्ति करें या व्रतदानादि करें या आत्मानुभव करें- इससे अपना भला है। इस प्रकार की मान्यतावालों से टोडरमलजी कहते हैं-

''परमेश्वर तो वीतराग हैं, भक्ति करने से प्रसन्न होकर कुछ करते नहीं हैं। भक्ति करने से कषाय मन्द होती है, उसका स्वयमेव उत्तम फल होता है। सो करणानुयोग के अभ्यास में उससे अधिक मन्दकषाय हो सकती है, इसलिए इसका फल अति उत्तम होता है। तथा व्रतदानादिक तो कषाय घटाने के बाह्यनिमित्त के साधन हैं।

और करणानुयोग का अभ्यास करने पर वहाँ उपयोग लग जाये तब रागादिक दूर होते हैं, सो यह अंतरग निमित्त का साधन है, इसलिए यह विशेष कार्यकारी है। व्रतादिक धारण करके अध्ययनादि करते हैं। तथा आत्मानुभव सर्वोत्तम कार्य है, परन्तु सामान्य अनुभव में उपयोग टिकता नहीं है और नहीं टिकता तब अन्य विकल्प होते हैं, वहाँ करणानुयोग का अभ्यास हो तो उस विचार में उपयोग को लगाता है। यह विचार वर्तमान भी रागादिक घटाता है और आगामी रागादि घटाने का कारण है, इसलिए यहाँ उपयोग लगाना।

जीव-कर्मादिक के नाना प्रकार से भेद जाने उनमें रागादिक करने का प्रयोजन नहीं है, इसलिए रागादिक बढ़ते नहीं हैं, वीतराग होने का प्रयोजन जहाँ-तहाँ प्रगट होता है, इसलिए रागादि मिटाने का कारण है।[2]

ग्रंथकार के अट्ठारहवें अध्याय एवं टोडरमलजी के उक्त कथनों से यह सिद्ध है कि करणानुयोग का अध्ययन अन्य अनुयोगों के समान उपयोगी है।

---

1 सम्यग्ज्ञान चन्द्रिका पीठिका पृष्ठ 5 का हिन्दी अनुवाद

2 मोक्ष मार्ग प्रकाशक, अध्याय 8 पृष्ठ 290

(4) जीव और केवलज्ञान

ग्रंथ में करणानुयोग के द्वारा आकाश की अवगाहना-शक्ति की विशालता या केवलज्ञान की सूक्ष्मता सिद्ध की है।

आकाश छह द्रव्यों में एक द्रव्य है। वह अन्य जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, काल इन पाँच द्रव्यों को अवकाश (रहने के लिए स्थान) देता है। अवकाश देना यह आकाश द्रव्य का विशेष गुण है।[1]

विश्व में छह[2] जाति के द्रव्य हैं। उनमें जीव प्रधान है[3] उपयोग[4] जीव का लक्षण है। उपयोग के दो भेद हैं- ज्ञानोपयोग और दर्शनोपयोग।[5]

"दर्शन और ज्ञान में साकार और निराकार का भेद है। पदार्थ का आकार न लेकर जो सामान्य ग्रहण होता है, वह दर्शन है। पदार्थ के आकार वगैरह के जानने को ज्ञान कहते हैं। छद्मस्थ[6] के तो दर्शन के पश्चात् ज्ञान होता है, क्योंकि छद्मस्थ पदार्थों को क्रम से जानता है, किन्तु केवली भगवान् के दर्शन और ज्ञान एक साथ होते हैं।"[7]

इन्द्रिया जब किसी पदार्थ को जानने के लिए प्रवृत्त होती है, तब प्रथम समय में पदार्थ का सामान्य आकार मात्र ही जाना जाता है, उसे दर्शनोपयोग कहते हैं। पश्चात् पदार्थों के आकार वगैरह का ज्ञान होता है, उसे ज्ञानोपयोग कहते हैं। छद्मस्थ को पहले दर्शन और पश्चात् ज्ञान होता है। दर्शनोपयोग के चार एवं ज्ञानोपयोग के आठ भेद हैं।[8]

मति, श्रुत, अवधि और केवल ये दर्शनोपयोग के चार भेद हैं। मति, श्रुत, अवधि, मनः पर्यय, केवल- ये पाँच ज्ञान व कुमति, कुश्रुत, कुअवधि- ये तीन अज्ञान इन सबको मिलाकर ये आठ ज्ञानोपयोग के भेद हैं। इनका स्वरूप तत्वार्थ सूत्र, द्रव्यसंग्रह आदि ग्रंथों से जानना।

केवलज्ञान ज्ञानोपयोग का एक भेद है। प्रस्तुत ग्रथ का प्रतिपाद्य विषय इसी केवलज्ञान से सम्बन्धित है। इसलिए केवलज्ञान का स्वरूप जानना चाहिए।

---

1 "आकाशस्यावगाह" तत्वार्थ सूत्र, अध्याय 5, सूत्र स 18

2 त्रैकाल्य द्रव्य षट्क, नवपद सहित, जीव षटकाय लेश्या:।

3 ज्ञानवान होने से तथा स्वय के आश्रय से मुक्त हो सकने से।

4 "उपयोगो लक्षण" तत्वार्थ सूत्र 2/8 तथा द्रव्य सग्रह गाथा 4

5 "स: द्विविधो" तत्वार्थ सूत्र 2/9

6 छद्म अर्थात् रागद्वेष, उसमे जो स्थित है।

7 तत्वार्थ सूत्र 2/9

8 "स द्विविधो अष्ट चतुर्भेद :" तत्वार्थसूत्र 2/9

(5) केवलज्ञान का स्वरूप

जो ज्ञान विश्व के सभी पदार्थ एवं उन पदार्थों की तीनों काल की पर्यायों (अवस्थाओं) को एक साथ एक समय में प्रत्यक्ष जानता है, उस ज्ञान को केवल ज्ञान कहते हैं। यही उमास्वामी ने लिखा है

''सर्वद्रव्य पर्यायेषु केवलस्य।''[1]

[अर्थ:-] केवलज्ञान का विषय सभी द्रव्य और उनकी तीन काल की पर्याये हैं। तथा तदेकसमये समस्त द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावग्राहकं सर्वप्रकारोपादेयभूतं केवल ज्ञानमिति।[2]

अर्थ:- वह एक समय में समस्त द्रव्य, क्षेत्र, काल तथा भाव को ग्रहण करने वाला सब प्रकार से उपादेय केवलज्ञान है।

और भी कहा है-

''जय सरवग्य अलोक लोक इक उडुवत देखैं।
हस्तामल ज्यौं हाथलीक ज्यौं सरल विसेखैं॥
छहौं दरव गुन परज, काल त्रय वर्तमान सम।
दर्पण जेम प्रकास नास मल कर्म महातम॥''[3]

अर्थ- वे सर्वज्ञ भगवान जयवन्त हों, जो लोक एवं अलोक को आकाश के तारे के समान हथेली पर विद्यमान आंवले के समान व हाथ की रेखाओं के समान जानते हैं। जीवादि छह और उनके गुण व उनकी वर्तमान-भूत भविष्य की पर्यायो को वर्तमान की तरह प्रत्यक्ष जानते हैं, जैसे दर्पण में पदार्थ झलकते हैं।

केवलज्ञान युक्त भगवान को केवली भगवान् कहते हैं। विश्व के सम्पूर्ण पदार्थो को जानने वाले होने से उन्हीं को सर्वज्ञ कहते हैं।

ज्ञानावरण कर्म के क्षय से उत्पन्न होने से केवलज्ञान को क्षायिकज्ञान[4] कहते हैं। सभी पदार्थों को गुण एवं त्रिकालवर्ती पर्यायों के साथ प्रत्यक्ष जानता है, अत: केवलज्ञान को (सकल) प्रत्यक्ष प्रमाण भी कहते हैं। प्रवचनसार में आचार्य कुन्दकुन्द केवलज्ञान को दिव्यज्ञान कहते हैं-

---

1 तत्त्वार्थसूत्र 1-29

2 द्रव्य संग्रह 1/5 आचार्य ब्रह्मदेव कृत सस्कृत टीका

3 कविवर द्यानतराय कृत चर्चा समूह श्लोक सख्या 9

4 तत्त्वार्थसूत्र 2/4

"जदि पच्चक्खमजाद पज्जाय पलयिदं च णाणस्य।
ण हवदिवातं णाणं दिव्वंति हि के परुवेंति॥"[1]

यदि अनुत्पन्न पर्याय तथा नष्ट पर्याय, ज्ञान (केवलज्ञान) के प्रत्यक्ष न हों तो उस ज्ञानको दिव्य कौन कहेगा।

इन उद्धरणों से स्पष्ट होता है कि केवलज्ञान विश्व के समस्त पदार्थो को उनके गुण व त्रिकालवर्ती पर्यायों को एक साथ एक समय में प्रत्यक्ष जानता है। ऐसा होने में कोई विरोध नहीं है, क्योंकि–

"ज्ञाता शक्ति तो तीनकाल की एककाल में होती है।"[2]

केवलज्ञान शब्द में केवल शब्द असहायवाची है। असहायज्ञान को केवल ज्ञान कहते हैं। केवलज्ञान को पदार्थों को जानने के लिए इन्द्रियाँ, मन या प्रकाश आदि बाह्य साधनों की अपेक्षा नहीं है। वह इन्द्रियाँ आदि के बिना ही पदार्थों को जानता है, इसलिए उसे असहाय कहा है।[3]

केवलज्ञान को जानने के लिए इन्द्रियादि की अपेक्षा नहीं है– यही श्री विद्यानंदि स्वामी तत्वार्थश्लोकवार्तिक में कहते हैं–

"ततः समन्ततश्चक्षुरिन्द्रि याद्यनपेक्षिणः।
निःशेष द्रव्य पर्याय विषयं केवलं स्थितम्॥"[4]

चक्षु इन्द्रियादि की किसी भी प्रकार से अपेक्षा न रखने वाला, सर्वद्रव्य-पर्यायों को जानने वाला केवलज्ञान है– यह निश्चित होता है।

केवलज्ञानी अपनी आत्मा और विश्व के समस्त पदार्थो को जानते हैं ।[5]

(6) केवलज्ञान की उत्पत्ति

अपने शुद्ध आत्मद्रव्य के यथार्थ श्रद्धान, ज्ञान, आचरण रूप एकाग्र ध्यान द्वारा केवल ज्ञानावरणादि चार[6] घातिया कर्मो के नष्ट होने पर केवल ज्ञान उत्पन्न होता है। यही आचार्य ब्रह्मदेव कहते हैं–

"निजशुद्धात्मतत्वसम्यक्श्रद्धान ज्ञानानुचरण लक्षणैका ग्रध्यानेन
केवल ज्ञानावरणादिघातिचतुष्टयक्षये सति यत्समुत्पद्यते।"[7]

आत्मा के ध्यान से केवलज्ञान की प्राप्ति होती है। यह ब्रह्मविलास में कहा है-

ककका कहे करणवश कीजे, कनक कामनी दृष्टि न दीजे।
करिके ध्यान निरंजन गहिए, "केवल पद" इह विधिसों लहिए।

---

1 प्रवचनसार, ज्ञानतत्व प्रज्ञापन, गाथा-39

2 चर्चा सग्रह-चुने हुए प्रश्नोत्तर-शका- 237, पृष्ठ 92

3 धवल (जैन ज्ञानकोश, मराठी, भाग-2 पृष्ठ 94)

4 तत्वार्थश्लोकवार्तिक अध्याय-1, वार्तिक-39

5 सकल ज्ञेय ज्ञायक तदपि निजानद रसलीन।
सो जिनेन्द्र जयवत नित अरि-रज-रहस विहीन॥
दौलतरमजी कृत दर्शनस्तुति का प्रथम पद्य।

6 ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय, अन्तराय-ये चार घातिया कर्म कहलाते हैं।

7 द्रव्य सग्रह अध्याय प्रथम- गाथा-5 की सस्कृत टीका

(7) केवलज्ञान की महिमा

केवलज्ञान पर्वत, वज्रपटल आदि किन्हीं पदार्थों के आड़े आने पर भी रुकता नहीं है।[1] वह विश्व के समस्त पदार्थो एवं उनकी अतीत, अनागत, वर्तमान सभी पर्यायों को एक समय में जानता है। केवलज्ञान की जानने की शक्ति इतनी है कि इसी प्रकार अनन्त विश्व होते तो भी केवलज्ञान, उन्हें जान सकता है। जैसा कि आचार्य अकलकदेव ने लिखा है–

''यावांल्लोकालोकस्वभावो अनन्तः तावन्तो अनन्तानन्ता यद्यपि स्युः, तानपि ज्ञातुमस्य सामर्थ्यमस्तीत्यपरिमित माहात्म्यं तत् केवलज्ञानं वेदितव्यम्।''[2]

अर्थ– जितना लोक- अलोक का स्वभाव अनन्त है। उससे भी अनन्तानन्त स्वभाव होता तो उसे भी जानने की साथ्र्य वाला केवलज्ञान है। इस प्रकार केवल ज्ञान अपरिमित महात्म्यवाला जानना चाहिए।

पञ्च परमेष्ठियों मे अरहत और सिद्ध भगवान् केवलज्ञान से युक्त होते हैं।

महावीर स्वामी के निर्वाण के बाद 63 वर्ष में तीन केवलज्ञानी हुए हैं। गौतम गणधर, सुधर्मा स्वामी व जम्बुस्वामी। अतिम केवली जम्बुस्वामी हुए हैं, जो मथुरा (चौरासी) से मुक्ति को प्राप्त हुए हैं।

प्रस्तुत ग्रंथ के विषय का सम्बन्ध केवलज्ञान से सम्बन्धित होने से केवल ज्ञान का किञ्चित् वर्णन किया है।

(8) प्रस्तुत ग्रन्थ और केवलज्ञान

प्रस्तुत ग्रथ का सम्बन्ध केवलज्ञान से है, क्योंकि केवलज्ञान की सूक्ष्मता को नौ बिन्दुओ से लेखक ने स्पष्ट किया है। लेखक ने प्रारम्भ में स्वयं लिखा है–

'केवलज्ञान की सूक्षमता का निरुपण करते हैं। इसके नौ बिन्दु हैं।'

एक शका जो प्राय: जैनदर्शन का अध्ययन प्रारम्भ करने वाले जिज्ञासुओ के मन मे उठती है। यही शका मेरे दो रिश्तेदारों ने कुछ वर्ष पहले मुझसे पूछी थी कि–

---

1 ''यदि केवलज्ञान हो तो वज्रपटलादि आडे होने पर वस्तु को जानता है।''
मोक्षमार्ग प्रकाशक अध्याय सातवा, पृष्ठ 194

2 तत्वार्थवार्तिकः अध्याय प्रथम, सूत्र-29, पृष्ठ 90

"करणानुयोग में छह महीना आठ समय में छह सौ आठ जीव मोक्ष जाते हैं- ऐसा नियम कहा है।"[1]

"तथा छह महीने आठ समयमें 608 जीव मोक्ष जाते हैं। (ऐसा नियम है।) जब छह महीने का विराधक काल पड़ता है तब आठ समय में 608 जीव मोक्ष जाते हैं।"[2]

उक्त सिद्धान्त के आधार पर ऐसा प्रतीत होता है कि एक दिन यह संसार संसारी जीवों से शून्य हो जाना चाहिए ?

समाधान- किन्तु ऐसा मानना भ्रम है- यह इस ग्रन्थ में सिद्ध किया है- "सूई के अग्रभाग जितने आकाश के क्षेत्र में पाये जाने वाले सूक्ष्म निगोदिया जीवों के अनन्तवें भाग में इतने जीव हैं कि उनका अनन्तवाँ भाग जीव तीनों कालों में कुल मोक्ष जायेंगे।"

पूर्व नियम के आधार पर विचार करे कि अनादि से अब तक कितने सिद्ध हुए हैं और भविष्य में अनन्तकाल तक कितने सिद्ध होंगे- वे सब आकाश के सूई के नोंक जितने क्षेत्र के अनन्तवें भाग में पाये जाने वाले जीवो के अनन्तवा भाग मात्र ही होंगे।

सूई के नोंक जितने आकाश क्षेत्र में पायी जाने वाली जीवराशि को न इन्द्रियां, न बड़ी-बडी दूरबीने, न मतिश्रुत, न अवधि-मन:पर्यय ज्ञान जान सकते हैं, वह एकमात्र केवलज्ञानगम्य ही है।

चर्चा संग्रह में भी कहा है-

"**प्रश्न**- सूक्ष्म बादर- पर्याप्त, लब्धि अपर्याप्त निगोदिया जीवो के शरीर मे कितने निगोदिया जीव हैं ?

उत्तर- इन चारों ही निगोदिया जीवो के शरीर मे न्यारे-न्यारे निगादिया जीव सिद्ध जीवो से अनन्त गुने एक शरीर में तिष्ठते हैं।"[3]

करणानुयोग मे केवलज्ञान का तारतम्य लिए हुए ज्ञान होता है, यह ग्रन्थ करणानुयोग से सम्बन्धित है, अत: इसका आधार केवलज्ञान है।

---

1 मोक्षमार्ग प्रकाशक अध्याय- आठवा, पृष्ठ-301

2 चर्चा संग्रह, चुने हुए प्रश्नोत्तर, प्रश्न-147, पृष्ठ-64

3 ब्र रायमल्ल जी चर्चा सग्रह चुने हुए प्रश्नोत्तर प्रश्न 140 पृष्ठ 61

(9) नामकरण–

प्रस्तुत ग्रंथ का नाम "आकाश की अवगाहना शक्ति" (अर्थात् केवलज्ञान की सूक्ष्मता) है।

आकाश द्रव्य के जिस भाग में जीव, पुद्गल,धर्म, अधर्म, काल द्रव्य पाये जाते हैं, उसे लोकाकाश कहते हैं। अवगाहना का अर्थ है रहने को जगह देना।[1] आकाश द्रव्य का कार्य जीवादि द्रव्यों को रहने के लिए जगह देना है- यही अवगाहना है। अवगाहनाशक्ति आकाश द्रव्य का विशेष गुण है।

लोकाकाश के सूई के नोक जितने क्षेत्र में कितने सूक्ष्म निगोद शरीर, उन शरीरों में कितने जीव, उन जीवों के कितने कर्म नोकर्म परमाणु प्रत्येक कर्म व नोकर्म परमाणु के साथ कितने विस्रसोपचय ? एक जीव के सम्पूर्ण कर्म, नोकर्म परमाणुओ के साथ कितने-कितने विस्रसोपचय पाये जाते हैं कितने पुद्गल परमाणु तथा उसी क्षेत्र में और कितने सूक्ष्म अग्निकायिक, सूक्ष्म पृथ्वी कायिक सूक्ष्मजलकायिक, सूक्ष्मवायुकायिक जीव रहते हैं- यह बताते हुए आकाश द्रव्य की अवगाहना शक्ति की विशालता प्रकट की है, इसलिए 'आकाश की अवगाहना शक्ति' नाम सार्थक है।

उक्त अवगाहना में वर्णित वर्णन केवलज्ञान के बिना असम्भव है। केवलज्ञान की यह सूक्ष्मता सामर्थ्य ही समझनी चाहिए कि वह उन सबको स्पष्ट प्रत्यक्ष जानता है। अत: साथ मे 'केवलज्ञान की सूक्ष्मता' यह शीर्षक भी उचित है। क्योकि इस ग्रन्थ में केवलज्ञान की सूक्ष्मता को नौ बिन्दुओं से स्पष्ट किया है।

(10) भाषा

ग्रथ की भाषा बोलचाल की भाषा है। साहित्यिक अलंकारिक भाषा के भार से रहित बेहद सरल बोलचाल की भाषा में यह ग्रथ लिखा गया है। भाषा में परिवर्तन का निवेदन लेखक से किया गया था, परन्तु उनका कहना था कि "मैं इसी भाषा में पढ़ाता हूँ, लोग मेरी इसी भाषा से परिचित हैं- अत: इसे न बदला जाये।"

---

[1] प्रत्येक द्रव्य निश्चयनय से स्व-आधार से रहता है। व्यवहारनय से लोकाकाश के आधार से रहता है-

(11) रचना शैली–

करणानुयोग का विषय अन्य अनुयोगों की तुलना में कठिन माना जाता है। परन्तु किशनचन्द जी की रचना शैली की विशेषता के कारण् यह करणानुयोग का विषय आसानी से समझ में आ जाता है।

इनकी रचना शैली के चार आयाम दिखाई देते हैं- (1) आगम प्रमाण (2) स्वयं शंका उठाकर समाधान (3) यथाशक्य किञ्चित् उदाहरण (4) प्रकरण के अन्त में जिज्ञासुओ के अभ्यास के लिए प्रश्न।

(1) आगम प्रमाण– सम्यग्ज्ञान चन्द्रिका, गोम्मटसार जीवकाण्ड, बनारसी विलास, बृहद् द्रव्यसंग्रह, ज्ञानानन्द श्रावकाचार, द्रव्यदृष्टि जिनेश्वर पर्याय दृष्टि विनश्वर, तत्त्वार्थ सूत्र, चर्चाशतक, स्याद्वाद मंजरी, धवलग्रंथ, पूजा के ग्रथ, प्रवचनसार वृहद् हरिवंश पुराण, मूलाचार, तिलोयपण्णति, अनगार धर्मामृत, मोक्षमार्ग प्रकाशक- इत्यादि आगम ग्रंथो का विषय की पुष्टि एवं स्पष्टीकरण में सहारा लिया है।

(2) सर्वत्र स्वयं शंका करके स्वयं ही उसका समाधान किया है। जैसे– ''हमने तो ऐसा सुन पढ रखा है कि आठ स्थानो में निगोदिया जीव नही होते और आप कहते हैं सूक्ष्म निगोदिया जीव तीनो लोकों मे ठसाठस घड़े में घीवत् भरे हुए हैं ?

समाधान– आठ स्थान अर्थात् पृथ्वीकायिक जीवों के शरीरो मे, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक जीवों के शरीरो में देवो और नारकियों के शरीरो मे, आहारक शरीर मे तथा केवली के परम औदारिक शरीर मे निगोद जीव नही पाये जाते हैं। यह जो आगम में कहा है- वह तो बादर निगोदिया जीवो की बात है अर्थात् बादर निगोदिया जीव इन आठ स्थानो के आश्रित नहीं पाये जाते है। शेष अन्य आधारो के आश्रित बादर निगोदिया जीव पाये जाते हैं। सूक्ष्म निगोदिया जीव तो सर्वत्र तीनो लोको मे घडे मे घीवत् भरे हुए हैं। इसी प्रकार सूक्ष्म अग्निकायिक, सूक्ष्मवायुकायिक जीव, सूक्ष्म जलकायिक, सूक्ष्मपृथ्वीकायिक जीव भी सर्वत्र लोक में ठसाठस भरे हुए हैं।

विस्तार भय से यह एक ही उदाहरण मैंने यहाँ दिया है। ग्रंथ मे सर्वत्र इसी प्रकार के शका समाधान मिलेगे, जो शैली का एक हिस्सा है।

(3) यथाशक्य किञ्चित् उदाहरण-

विषय को स्पष्ट करने में दृष्टान्तों का योगदान होता है। क्षत्रचुडामणि मे लिखा है- ''दृष्टान्तो हि मतिस्फुटा' दृष्टान्तो से ज्ञान स्पष्ट होता है। ग्रथकार ने ग्रंथ

में यथा संभव उदाहरणों का प्रयोग किया है। जैसे- स्कन्ध, अण्डर इत्यादि को समझाने के लिए भारत अमेरिका आदि का उदाहरण। सूई के नोंक जितने आकाश क्षेत्र की जीव राशि को समझाने के लिए क्वाथ का उदाहरण । स्वयंभूरमण समूद्र का उदाहरण-ऐसे अनेकों उदाहरणो से विषय को स्पष्ट किया है।

(4) अभ्यासमाला–

प्रत्येक प्रकरण के अन्त में उसी प्रकरण से सम्बन्धित प्रश्न बनाए गए हैं, जिससे जिज्ञासु उस विषय को प्रश्नोत्तर के माध्यम से पक्का (धारणा में दृढ) कर सके।

ग्रंथ की विषय-वस्तु पर भूमिका मे विचार करना चाहिए था। ग्रंथ में 18 प्रकरण हैं। प्रत्येक प्रकरण के प्रारम्भ में मोटे अक्षरों से विषय की ओर संकेत किया है। यही कारण है कि भूमिका में विषय-वस्तु को यत्रतत्र आभास मात्र बताया है। पृथक् विचार नहीं किया है।

जैनदर्शन का प्रत्येक अध्येता करणानुयोग से प्रभावित हुए बिना नहीं रहता। यह पुस्तक करणानुयोग से सम्बन्धित है, अतः पाठक इससे प्रभावित हुए बिना नहीं रहेगा- ऐसी आशा है।

जैनवचन अंजनवटी[1] हैं। जिनेन्द्र भगवान् के वचनों से ही जीव का दुःख दूर हो सकता है। अन्य उपाय नहीं है, इसलिए ससार, शरीर, सम्बन्धियों का यथार्थ स्वरूप देखकर जिनवाणी के आश्रय से लोकलाज न करते हुए अपना कल्याण करे-

इसी भावना के साथ भूधरदास जी के प्रेरक शब्दों को स्मरण करते हुए विराम लेता हूँ।

"दशदिन विषय विनोद, फेर बहुविपति परंपर।
अशुचिगेह यह देह, नेह जानत न आप जर।।
मित्र बधु सम्बन्ध और परिजन जे अंगी।
अरे अंध, सब धन्ध जान स्वारथ के संगी॥
परहित अकाज अपनौ न कर मूढराज अब समझ उर।
तजि लोकलाज निजकाज कर आज दाव है कहत गुर॥"

---

1 जैन वचन अजनवटी, आँजैं सुगुरु प्रवीन।
रागतिमिर तोहु नमटैं, बडो रोग लख लीन॥ 136 ॥
कविवर भूधरदास विरचित जैन शतक।

अर्थ– विषयों का आनन्द दस दिन अर्थात् थोड़े ही दिनों का है, उसके पश्चात् विपत्तियों का अम्बार है, शरीर अपवित्र है, जीव के द्वारा किये जाने वाले उपकारों को नहीं जानता, क्योंकि स्वयं जड़ है। रे अन्ध जीव! जितने भी मित्र, बन्धु, सम्बन्धी या परिवारजन हैं, वे सबके सब स्वार्थ के साथी हैं। हे मुर्खाधिराज! पर की भलाई के लिए अपना अहित न कर, न कर। गुरुवर कहते हैं कि अपने हृदय में निश्चित कर आज सुअवसर हैं, तू लोकलाज छोडकर अपना हित कर, अपना हित कर।

दि० 28-6-98

आषाढ शुक्ल चतुर्थी

अरुण कुमार जैन

(व्याख्याता)

शास्त्री, आचार्य (व्याकरण)

एम. ए. (सस्कृत), एम. फिल (संस्कृत)

राजकीय शास्त्री सस्कृत महाविद्यालय

अलवर 301001

विषय-सूची

मंगलाचरण

देव स्तुति

मोक्ष न आतम ज्ञान बिन, क्रिया ज्ञान बिन नाहि।
ज्ञान विवेक बिना नहीं, गुन विवेक के मांहि॥
नहिं विवेक जिनमत बिना, जिनमत जिन बिन नाहि।
मोक्ष मूल निर्मलमहा, जिनवर त्रिभुवन मांहि॥
तातै जिनको वन्दना, हमरी बारम्बार।
जिनतैं आपा पाइये, तीन भुवन मे सार॥१॥
चौबीसी तीनो नमूं, नमो तीस चौबीस।
सीमधर आदि प्रभु नमन करो फुनि बीस॥२॥
तीन काल के जिनवरा, तीन काल के सिद्ध।
तीन काल के मुनिवरा, बन्दौ लोक प्रसिद्ध॥३॥

–क्रियाकोश . कविवर पण्डित दौलतरामजी कासलीवाल

अकृत्रिम प्रतिमाओं की स्तुति

बन्दौ आठ किरोर, लाख छप्पन सत्तानों।
सहस च्यारि सौ असी, एक जिन मदिर जानौ॥
नवसै पच्चीस कोरि लाख त्रैपन सत्ताईस।
वन्दौ प्रतिमा सर्व, नौ सौ अडतालीस॥
व्यतर जोतिष्क अगणित सकल, चैत्यालय प्रतिमा नमौं॥
आनदकार दुखहार सब, फेर नाहि भववन भ्रमौ॥४॥

– चरचाशतक : कविवर पण्डित द्यानतरायजी

सिद्धों की स्तुति

पन्द्रहसै भाग महान बसै, नवलाख के खड जघन्य लसै।
तनुवात के अन्त सहायक हैं, सब सिद्ध नमौ सुख दायक हैं॥५॥

– सिद्ध पूजा की जयमाला से

जिनवाणी स्तुति

जिनवाणी रस अमृता ता सम सुधा न और।
जा करि भव भ्रमण मिटै पावै निश्चल ठौर॥६॥

– प दौलतराम जी कासलीवाल

आचार्य उपाध्याय–साधुओं की स्तुति

आचारज उवझाय साधु तीनौ मन ध्याऊ।
गुन छतीस पच्चीस बीस, अरू आठ मनाऊं॥
तीनौ को पद साधु, मुक्ति कौ मारग साधै।
भवतन भोग विराग, राग सिव ध्यान अराधै॥
गुनसागर अविचल मेरू सम, धीरज सौ परिसह सहैं।
मैं नमों पाय जुगलाय मन, मेरो जिय वाछित लहै॥७॥

– चरचाशतक : कविवर प द्यानतरायजी

सर्वज्ञ के ज्ञान की महिमा

जीव है अनन्त एक जीव के अनन्त गुण,
एक गुण के असंख परदेश मानिए।
एक परदेश मे अनत कर्म वगर्णा है,
एक वर्गना में अनत परमाणु ठानिये।
अणु मे अनंत गुण एक गुण मे अनत,
परजाय एक के अनंत भेद जानिए।
तिन तै हुए अनत तातै हो हिगे अनत,
सब जानै समै माहि देव सो बखानिए॥८॥

– चरचाशतक . कविवर प द्यानतरायजी

दो शब्द

मंगलाचरण के बाद हम अब 'आकाश की अवगाहना' अर्थात् केवलज्ञान की सूक्ष्मता का वर्णन करने का प्रयत्न करेंगे। वैसे तो हम मे इतनी शक्ति कहाँ है कि हम केवलज्ञान की सूक्ष्मता का वर्णन कर सके यह ऐसा ही प्रयास है जैसे सूर्य की रोशनी मे दीपक दिखाना। किन्तु जिन महानुभावों का क्षपोयकाम हम से भी कम है उनके किए इस विषय मे सम्भव है कुछ प्रकाश यह ग्रन्थ दिखा सके। इन तीन लोक मे एक सुई की नौक के बराबर स्थान में केवली भगवान ने क्या क्या देखा है उसका वर्णन ही यहाँ किय गया है। आशा है पाठक गण जो मुझसे भी अपने क्षयोपशम मे अधिक है अगर इसमे कुछ गलती रह गई हो तो मुझे क्षमा करते हुए सूचित कर अनुग्रहित करेंगे ताकि मैं उसे सुधार सकूँ।

विनित
किशनचन्द जैन (भाई साहब)

पहला अध्याय

विश्व इतना विशाल है कि विवेकी पञ्चेन्द्रिय जीव विश्व के एक कौने को भी नग्न नेत्रों से तो क्या बड़ी-बड़ी दुर्बिनों की सहायता से भी नहीं देख सकता। जैन दर्शन में इसके लिए अतिन्द्रिय केवल ज्ञान को ही एक मात्र देखने का साधन माना है। इसलिए केवल ज्ञान की सूक्ष्मता का निरुपण करते हैं। इसके नो (Nine) बिन्दु हैं। सूई के अग्रभाग जितने आकाश क्षेत्र में पाये जाने वाले जीव-अजीव पदार्थों की संख्या केवल ज्ञानी ने कितनी देखी है उसका वर्णन करते हैं।

(1) प्रथम बिन्दु –

प्रथम बिन्दु में यह बताते हैं कि सूई के अग्रभाग, आकाश क्षेत्र में कितने सूक्ष्म निगोदियाँ जीव पाये जाते हैं। इसका उत्तर आचार्यों ने तीन तरह से दिया है। क्योंकि श्रोता या शिष्य तीन प्रकार की रुचि वाले होते हैं। (अ) संक्षेप रुचिवाले (ब) मध्यम रुचिवाले (स) विस्तार रुचिवाले। इसलिए आचार्यों ने भी करुणा करके तीन प्रकार से उत्तर दिया। वैसे जीवों में संक्षेप रुचिवालों से विस्तार रुचिवाले शिष्य अधिक होते हैं।

यहाँ कोई प्रश्न करे कि सूई तो छोटी-बड़ी अनेक प्रकार की होती है सो कौनसी लेनी। इसके उत्तर में आचार्य महाराज कहते है कि छोटी से छोटी सूई लेलो। उस छोटी से छोटी सूई के अग्रभाग आकाश क्षेत्र में कितने सूक्ष्म निगोदिया जीव केवल ज्ञानी ने देखे हैं सो कहते हैं। वैसे सूई के अग्रभाग के स्थान पर उत्तम भोगभूमि के मेमना के बाल का अग्रभाग जितना क्षेत्र भी लिया जा सकता है। बालों में सबसे पतला बाल उत्तम भोगभूमि जीवों का होता है। क्योंकि आठ बाल उत्तम भोगभूमि के मिलाने पर जितनी मोटाई होती है उतनी मोटाई मध्यम भोग भूमि जीवों के एक बाल की होती है। अर्थात् उत्तम भोगभूमि के जीवो के बाल की मोटाई से आठ गुनी ज्यादा मोटाई मध्यम भोगभूमि के जीवों की बाल की होती है और इसी प्रकार आठ बाल मध्यम भोग भूमि जीवों के मिलाने पर जो मोटाई होती है उतनी मोटाई जघन्य भोगभूमि जीवों के एक बाल की होती है। इसी प्रकार आठ बाल जघन्य भोग भूमि के जीवों के मिलाने पर जितनी मोटाई

होती है उतनी मोटाई कर्मभूमि जीवों के एक बाल की होती है। अतः आचार्य श्री कहते हैं, भाई तुझे यदि ज्यादा ही सूई के सम्बन्ध मे शंका हो तो उसके स्थान पर उत्तम भोगभूमि जीवों के बाल का अग्रभाग लिया जा सकता है।

विषय से सम्बन्धित प्राथमिक जानकारी जो होनी चाहिए-

(1) प्रथम तो यह जानना चाहिए कि सूई अथवा उत्तम भोगभूमि के बाल के अग्रभाग जितने हिस्से (क्षेत्र) मे सामान्यपने आकाश के असंख्यात प्रदेश हैं और विशेष पने उसके असख्यातवे भाग में भी आकाश के असख्यात प्रदेश होते हैं।

(1) शंका- इसका आगम प्रमाण क्या है ?

समाधान- सूई के अग्रभाग जितने पृथ्वी के टुकड़े मे, इतने ही जलके टुकडे मे, अग्नि के टुकडे मे, वायु के टुकडे में, वनस्पति के टुकडे में असंख्यात प्रत्येक जीव हैं और प्रत्येक जीव की अवगाहना असंख्यात प्रदेशों से कम नहीं होती है। कहने का अभिप्राय है कि पृथ्वी कायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक इन चारों के शरीर की जघन्य और उत्कृष्ट अवगाहना घनाङ्गुल के असख्यातवे भाग है। इसलिए आँखों के द्वारा दिखाई नहीं देते और जो दिखाई देते हैं वो असख्यात जीवों के शरीर का समूह है। यह बादर जीवों की बात है सूक्ष्म जीव तो दिखाई ही नहीं देते। प्रत्येक जीव की, कम से कम अवगाहना घनागुल के असख्यातवें भाग बताई है जिसमे आकाश के असख्यात प्रदेश होते हैं। इससे सिद्ध होता है कि सूई के अग्रभाग जितने आकाश क्षेत्र के असंख्यातवे भाग मे भी आकाश के असंख्यात प्रदेश हैं।

(2) शंका- आगम प्रमाण से तो जाना लेकिन यह बात जॅचती नहीं कि आकाश के इतने छोटे हिस्से मे असख्यात प्रदेश हैं।

समाधान- शरीर शास्त्र के अनुसार एकआलपिन की नोक बराबर शरीर के हिस्से मे दस लाख कोशिकाए हैं। तथा शरीर विज्ञान के अनुसार वृद्ध अवस्था में प्रत्येक व्यक्ति के प्रतिदिन मस्तिष्क के दस लाख शैल नष्ट होते हैं इस हिसाब से मस्तिष्क मे कितने शैल पाये जाते हैं ? इसका अनुमान लगा लेना चाहिए। एक मानव शरीर में छह सौ अरब कोशिकाएं पाई जाती हैं। अथवा करोड़ों औषधियों को मिलाकर एक क्राथ बनाना चाहिए और फिर उसमें एक सूई को डूबोने पर उस सुई के अग्रभाग मे उन एक करोड औषधियों का अंश आता है कि नहीं? जब स्थूल यत्रों द्वारा भी इतनी सूक्ष्म बात पकडी जा सकती है

तब दिव्य केवल ज्ञान की सूक्ष्मता का तो क्या कहना। जब आलपिन की नोक बराबर शरीर के हिस्से में दस लाख कोशिकाएं स्थित हैं और यह बात माननी पड़ती है तब दिव्य केवल ज्ञान द्वारा कही हुई सूई के अग्रभाग जितने आकाश क्षेत्र के असंख्यातवें भाग में भी आकाश के असख्यात प्रदेश आते हैं।' यह बात भी जँचती है। क्षेत्र की सबसे छोटी से छोटी इकाई को प्रदेश कहते हैं। इसी प्रकार केलीफोर्निया स्थित मेसाडिना इलेक्ट्रो आप्टीकल सिस्टल कम्पनी ने एक ऐसा कैमरा तैयार किया है जो एक सैकिण्ड के एक अरब भाग में एक चित्र उतार लेता है। इससे सिद्ध होता है कि एक सैकिण्ड में असख्यात समय होते हैं यह गलत नहीं है। "न्याय दैनिक पत्र दि० 21 4 91 रविवार" अलवर जयपुर अजमेर से प्रकाशित

चावल के दाने पर यीशू की जीवनी (राजस्थान पत्रिका दि. 25-12-97)

भीलवाड़ा, 24 दिसम्बर [निस०]। चावल के दाने पर अनेक देवी-देवताओ की आकृतियां व कृतियां अंकित कर ख्याति प्राप्त कर चुके राजेश सोनी ने इस बार प्रभु यीशू मसीह की जीवनी चावल के एक दाने पर अंकित कर अपनी कला का पुनः परिचय दिया है।

बनेडा कस्बे में रहने वाले राजेश सोनी ने चावल के एक दाने पर प्रभु यीशु की जीवनी लिखकर अपनी अनूठी कला की एक और छाप छोड दी। सोनी की इस कला का फादर ए०सी०एम० मैसी [उदयपुर] ने भी अवलोकन किया। उन्होने अनूठे चावल के दाने की नीलामी का फैसला किया है, जिसकी कीमत कम से कम सात हजार रुपए आंकी गई है।

(ii) दूसरी बात यहाँ पर यह भी समझनी चाहिए कि जो यहाँ जीवों की चर्चा की जा रही है उसमें अर्थात् प्रथम बिन्दु में मात्र सूक्ष्म निगोदिया ही जीव लेने। बादर निगोदियाँ तथा अन्य पृथ्वीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक प्रत्येक वनस्पतिकायिक (अप्रतिष्ठित सप्रतिष्ठित दोनों) एव त्रस जीव नहीं लेने। क्योंकि त्रस जीव मात्र त्रस नाली मे ही पाये जाते हैं तथा एकेन्द्रियो में बादर जीव अर्थात् बादर निगोदिया, बादर अग्निकायिक, बादर पृथ्वीकायिक, बादर जलकायिक, बादर वायुकायिक, अप्रतिष्ठित प्रत्येक व सप्रतिष्ठित प्रत्येक (ये दोनों अर्थात् प्रत्येक वनस्पति बादर ही होती है) भी तीनों लोक में सर्वत्र नहीं पाये जाते हैं। यद्यपि अग्निकायिक, पृथ्वीकायिक, जलकायिक एवं वायुकायिक ये सूक्ष्म भी होते है और बादर भी होते है फिर भी प्रथम बिन्दु में सूक्ष्म

अग्निकायिक, सूक्ष्म जलकायिक, सूक्ष्म पृथ्वीकायिक सूक्ष्म वायुकायिक भं नहीं लेने क्योंकि इनको नौ बिन्दुओं मे से छठवें बिन्दु में लिया गया है।

(3) **शंका**- सूक्ष्म और बादर जीवों में क्या अन्तर है ?

समाधान- जीव दो प्रकार के होते हैं। वैसे तो जीवों के अनेक प्रकार से भेद प्रभेद किए हैं। जैसे संसारी और मुक्त, भव्य और अभव्य आहारक और अनाहारक, पर्याप्त और अपर्याप्त, गति के हिसाब से पाँच प्रकारके [देवगति मनुष्यगति, तिर्यंचगति, नरकगति एवं सिद्धगति] जाति के हिसाब से पांच प्रकार के [एकेन्द्रिय, दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चौइन्द्रिय, पंचेन्द्रिय तथा जातिरहित सिद्ध जीव] कायके हिसाब से जीव छह प्रकार के [पाँच स्थावर- (पृथ्वीकायिक जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक इस प्रकार पाँच तो स्थावर कायिक) और छटा त्रसकायिक- (दोइन्द्रिय, तीनइन्द्रिय, चतुरेन्द्रिय पंचेन्द्रिय)] वेद के हिसाब से स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी नपुसंक वेदी, वेदरहित इस प्रकार चार प्रकार के होते हैं। कषाय के हिसाब से क्रोधकषायी, मानकषायी मायाकषायी, लोभकषायी और कषायरहित। ज्ञान की अपेक्षा मतिज्ञानी, श्रुतज्ञानी अवधिज्ञानी, मन:पर्यायज्ञानी, केवलज्ञानी, कुमतिज्ञानी, कुश्रुतज्ञानी, कुअवधिज्ञानी इसप्रकार आठ प्रकार के होते हैं। इसी प्रकार अन्य भी अनेक प्रकार जीवों के भेद किए हैं। लेकिन प्रकरण वश जीव सूक्ष्म और बादर दो प्रकार के होते हैं।

प्रथम सूक्ष्म जीवों की विशेषता कहते हैं। सूक्ष्म और बादर ये दोनों नामकर्म की प्रकृतियाँ होती हैं। उनमें सूक्ष्म नामकर्म के उदय से जो जीव उत्पन्न होते हैं उनको सूक्ष्म कहते हैं। ये सूक्ष्मजीव वज्र, अग्नि, जल, पर्वत, मेरु आदि से अटकते नहीं, किसी प्रकार अग्नि आदि से कदलीघातमरण (अकालमरण अर्थात इनकी हिंसा भी नहीं होती) नहीं, अपनी आयु के अन्त में ही मरे। आप किसी अन्य जीव को मारे नहीं तथा अन्य जीव द्वारा मारे जाय नहीं। निराधार आकाश में रहें। किसी आधार की जरुरत नहीं तथा अन्य जीवो का आधार नहीं होय। अर्थात मारने पर मरे नहीं, छेदने पर छिदे नहीं, अग्नि में जले नहीं, पवन द्वारा उडे नहीं समस्त पर्वत, भीत, वज्रादिक शरीरादिक में गमनागमन करें हैं। सूक्ष्म जीवों की हिंसा नहीं। सूक्ष्म जीव तो तीनों लोकों में (तीनों वात वलय सहित) सर्वत्र ठसाठस, घडे में घीवत भरे हुए हैं। लोकाकाश का ऐसा कोई क्षेत्र नहीं, जहाँ सूक्ष्म निगोदिया जीव, सूक्ष्म अग्निकायिक, सूक्ष्म पृथ्वीकायिक, सूक्ष्म जलकायिक सूक्ष्म वायुकायिक जीव ठसाठस घडे में घीवत नहीं हो।

अब बादर जीवो की विशेषता कहते हैं। बादर नामकर्म के उदय से जीव बादर होते हैं। जिनका शरीर प्रतिघात युक्त है वे बादर हैं और अन्य पुदगलों से प्रतिघात रहित जिनका शरीर वे सूक्ष्म जीव हैं। इतनी विशेषता है कि बादर जीब लोक में सर्वत्र नहीं है।.आठों पृथ्वियों तथा अन्य जीवों के आश्रित पाये जाते हैं। तथा जो सूक्ष्म जीव हैं वे तो तीनों लोकों में सब जगह ठसाठस मौजूद हैं।

यहाँ शरीर की स्तोक (छोटी) अवगाहना में विद्यमान जीव सूक्ष्म जीव होते हैं ऐसा अर्थ नहीं लेना चाहिए। क्योंकि सूक्ष्म एकेन्द्रियों की अवगाहना की अपेक्षा बादर एकेन्द्रिय जीवों की अवगाहना भी छोटी पायी जाती है अर्थात् सूक्ष्मजीवों से असंख्यात गुणी हीन अवगाहना वाले और बादर नामकर्म से उत्पन्न हुए बादर शरीरों की उपलब्धि होती है।

भावार्थ- सूक्ष्म जीवों की मध्यम अवगाहना, जघन्य बादर से भी अधिक पायी जाती है। चौसठ अवगाहना यन्त्र के देखने से यह भली-भाँति विदित होता है। इसलिए छोटी-बड़ी अवगाहना से स्थूलता और सूक्ष्मता न मानकर स्थूल और सूक्ष्म नाम कर्म के उदय से सप्रतिघातयुक्त और अप्रतिघात युक्त वाले शरीर को बादर और सूक्ष्म जीव कहते हैं। जीवों में त्रस जीव सभी बादर ही होते हैं। एकेन्द्रिय जीव सूक्ष्म और बादर दोनों प्रकार के होते हैं उनमें भी अप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति व सप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति दोनों बादर ही होती है। हाँ! पृथ्वीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक दोनों प्रकार के होते हैं।

(4) शंका- हमने तो ऐसा सुन तथा पढ रखा है कि आठ स्थानो मे निगोदिया जीव नहीं होते और आप कहते है सूक्ष्मनिगोदिया जीव तीनों लोकों में ठसाठस, घडे मे घीवत-भरे हुए हैं।

समाधान- आठ स्थान अर्थात् पृथ्वीकायिक जीवो के शरीरों में, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक जीवो के शरीरों मे, देवों और नारकियों के शरीरों मे, आहारक शरीर मे तथा केवली के परम औदारिक शरीर में निगोद जीव नहीं पाये जाते हैं। यह जो आगम में कहा है वह तो बादर निगोदिया जीवो की बात है अर्थात् बादर निगोदिया जीव इन आठ स्थानों के आश्रित नहीं पाये जाते हैं। अन्य आधारों के आश्रित बादर निगोदिया जीव पाये जाते हैं। सूक्ष्मनिगोदिया जीव तो सर्वत्र तीनों लोकों में घड़े में घीवत भरे हुए हैं। इसी प्रकार सूक्ष्म अग्निकायिक, सूक्ष्म पृथ्वीकायिक जीव, सूक्ष्म जलकायिक, सूक्ष्म वायुकायिक जीव भी सर्वत्र लोक में ठसाठस भरे हुए हैं।

(5) **शंका**- तथा हमने ऐसा भी पढा है कि निगोद जीव सातवीं नरक पृथ्वी के नीचे एक राजू ऊँचाई में पूर्व पश्चिम सात राजू व उत्तर दक्षिण में सात राजू क्षेत्र में पाये जाते हैं ?

समाधान- तीनों लोकों के नीचे जो एक राजू में निगोदिया जीव आगम में कहे हैं वे तो बादर नित्य निगोदियाँ जीवो का मुख्य स्थान है। अर्थात् वहाँ पर बादर नित्यनिगोदिया जीवों के असख्यात लोक प्रमाण स्कन्ध, अन्डर, आवास, पुलवि और निगोद शरीर पाये जाते हैं और एक निगोद शरीर में अक्षय अनन्त बादर नित्य निगोदिया जीव हैं। सूक्ष्म नित्य निगोदिया जीव तो तीनों लोकों मे सर्वत्र है। इसी प्रकार सूक्ष्म इतरनिगोद भी सर्वत्र लोक में पाये जाते हैं।

अब विषय से सम्बन्धित उक्त प्राथमिक जानकारी कराकर मूल विषय पर आते हैं अर्थात् प्रथम बिन्दु के प्रथम (अ) पर संक्षिप्त रुचि वाले शिष्यों एवम् श्रोताओं के लिए सूई के अग्रभाग आकाश क्षेत्र में कितने सूक्ष्म निगोदिया जीव पाये जाते हैं उसका कथन करते हैं।

कुछ श्रोता या शिष्य प्रश्न का समाधान सक्षिप्त में ही जानना चाहते हैं उसके लिए आचार्य श्री उत्तर देते हैं।

1. (अ) सूई के अग्रभाग आकाश क्षेत्र में पाये जाने वाले सूक्ष्म निगोदिया जीवों के अनन्तवें भाग में इतने जीव हैं कि उनका भी अनन्तवाँ भाग जीव तीनों कालों में कुल मोक्ष जायेंगे।

इसकी भाव भासना दो प्रकार से समझी जा सकती है। प्रथम-सूई के अग्रभाग आकाश क्षेत्र मे जितने सूक्ष्म निगोदियाँ जीव (अक्षय अनन्तानन्त) पाए जाते हैं उनमे अनन्त का भाग दीजिए। फिर जो एक अनन्तवा भाग आवे उसमे पुन: अनन्त का भाग दे उतने जीव तीनों कालो मे कुल मोक्ष जावेगे दूसरे-तीनो कालो मे जितने जीव मोक्ष जावेंगे उनको अनन्त से गुणा करे और फिर उस गुणनफल को पुन: अनन्त से गुणा करें उतने जीव सूई के अग्रभाग आकाश क्षेत्र में पाये जाते है। साराश-जब सूई के अग्रभाग आकाश क्षेत्र मे इतने अक्षय अनन्तानन्त सूक्ष्म निगोदिया जीव पाये जाते हैं तब तीनों लोकों मे उससे असख्यात गुणे जीव पाये जाते हैं। क्योंकि सूई जितने हिस्से तीनो लोको मे असख्यात (यथायोग्य असख्यात) ही बनेगे अत: सूई के अग्रभाग जितने आकाश क्षेत्र में जितने सूक्ष्म निगोदियाँ जीव पाये जाते हैं उनसे असंख्यात गुणे जीव तीनो लोको में पाये जाते हैं जो भी अक्षय अनन्तानन्त प्रमाण हैं। सूई के अग्रभाग क्षेत्र मे पाये

जाने वाले सूक्ष्म निगोदिया जीवों के अनन्तवें भाग के भी अनन्तवें भाग में अक्षय अनन्त जीव हैं तथा सूई के अग्रभाग आकाश क्षेत्र में भी अक्षय अनन्तानन्त सूक्ष्म निगोदिया जीव हैं तथा तीनों लोको में भी अक्षय अनन्तानन्त सूक्ष्म निगोदिया जीव हैं। क्योंकि अनन्त के भी अनन्त भेद हैं लेकिन छोटे बड़े अनेक प्रकार के हैं। यहाँ यह ध्यान देने योग्य बात है कि जीवों में अनन्त का भाग दिया है न कि आकाश क्षेत्र में क्योंकि आकाश क्षेत्र में तो असंख्यात प्रदेश ही पाये जाते हैं इसलिए सूई के अग्रभाग आकाश क्षेत्र में जितने असंख्यात प्रदेश पाये जाते हैं उनमें भाग न देकर उनमें पाये जाने वालों जीवों में दिया है।

अभ्यास-माला

(1) केवल ज्ञान की सूक्ष्मता के कुल कितने बिन्दु हैं ?

(2) प्रथम बिन्दु क्या है ?

(3) प्रथम बिन्दु का आचार्यों ने कितने प्रकार से उत्तर दिया? उसका कारण क्या है ?

(4) तीनों प्रकार के शिष्यों अथवा श्रोताओं में से सबसे अधिक किस प्रकार की रुचि वाले होते हैं ?

(5) किस क्षेत्र के जीवों के बालों की मोटाई सबसे पतली है और क्यों ? कारण सहित लिखिए ?

(6) सूई के अग्रभाग आकाश क्षेत्र में सामान्यपने और विशेषपने आकाश के कितने प्रदेश होते हैं ?

(7) प्रदेश की परिभाषा क्या है ?

(8) सूई के अग्रभाग आकाश क्षेत्र में आकाश के असंख्यात प्रदेश पाये जाते है। उसका आगम प्रमाण क्या है ?

(9) युक्ति द्वारा भी सिद्ध कीजिए कि सूई के अग्रभाग आकाश क्षेत्र के असंख्यातवे भाग में आकाश के असंख्यात प्रदेश पाए जाते हैं ?

(10) प्रथम बिन्दु में जिन जीवों की बात की है वो कौन से लेने ?

(11) सूक्ष्म और बादर जीवों की परिभाषा दीजिए।

(12) क्या सूक्ष्म जीवों की अवगाहना बादर जीवों से भी बड़ी पाई जा सकती है ?

(13) सूई के अग्रभाग आकाश क्षेत्र के प्रथम बिन्दु में सूक्ष्म निगोदिया जीव ही क्यों लिए ?

(14) त्रसजीव किन्हें कहते हैं ? कितने प्रकार के होते हैं तथा कहाँ पाये जाते हैं ?

(15) क्या त्रस जीव बादर और सूक्ष्म दोनों प्रकार के होते हैं ?

(16) त्रस जीव बादर ही होते है क्या यह बात सत्य है ?

(17) एकेन्द्रिय किन्हें कहते हैं ? कितने प्रकार के होते है ?

(18) क्या एकेन्द्रिय जीव सूक्ष्म और बादर दोनों प्रकार के होते हैं ?

(19) एकेन्द्रिय जीवों में कौन कौन से जीव सूक्ष्म और बादर दोनों प्रकार के होते हैं ?

(20) क्या एकेन्द्रिय जीवो में अप्रतिष्ठित प्रत्येक व सप्रतिष्ठित प्रत्येक जीव सूक्ष्म भी होते हैं ?

(21) जिन आठ स्थानों में बादर निगोदिया जीव नहीं पाये जाते है वे आठ स्थान कौन कौन से हैं ?

(22) सातवी नरक पृथ्वी महातम: प्रभा जिसका दूसरा रुढिनाम माघवी भी है उसके नीचे एक राजू ऊँचे सात राजू उत्तर दक्षिण और सात राजू पूर्व पश्चिम क्षेत्र में किस प्रकार के जीव खासतौर पर पाये जाते हैं ?

(23) क्या सूक्ष्म जीवो की हिंसा होती है ?

(24) जब सूक्ष्म पृथ्वी कायिक, सूक्ष्म जलकायिक, सूक्ष्म अग्निकायिक, सूक्ष्म वायुकायिक जीव भी तीनों लोकों में ठसाठस लबालब घड़े में घीवत भरे हुए हैं फिर भी सूक्ष्म निगोदिया जीव ही प्रथम बिन्दु में क्यों लिए है ?

(25) एक आलपिन की नोक जितने शरीर के हिस्से में शरीर विज्ञान के अनुसार कितनी कोशिकाएँ पाई जाती हैं ?

(26) एक मानव शरीर में कुल कितनी कोशिकाएँ हैं ?

(27) सूई के अग्रभाग आकाश क्षेत्र में कितने सूक्ष्म निगोदिया जीव पाये जाते हैं ?

(28) तीनों कालों में जितने जीव मोक्ष जावेंगे उनसे सूई के अग्रभाग क्षेत्र में पाये जाने वाले जीव कितने गुणे होते हैं ?

(29) जितने सूक्ष्म निगोदिया जीव तीनों लोकों में पाये जाते हैं वे सूई के अग्रभाग आकाश क्षेत्र में पाये जाने वाले जीवों से कितने गुणे ज्यादा हैं ?

(30) सम्पूर्ण लोकाकाश में सूई के अग्रभाग जितने हिस्से कितने बनेंगे ?

(31) सूई के अग्रभाग जितने क्षेत्र में जो अनन्त का भाग दिया है वो क्षेत्र में दिया है या जीवों में ?

(32) क्या सूई के अग्रभाग आकाश क्षेत्र में अनन्त का भाग दिया जा सकता है ? कारण सहित उत्तर दीजिए।

(33) क्या अक्षय अनन्त भी अनन्त प्रकार के होते हैं ?

दूसरा अध्याय

अब दूसरे अध्याय में केवल ज्ञान की सूक्ष्मता के नो बिन्दुओं में से प्रथम बिन्दु का उत्तर मध्यम् रुचि वाले शिष्यों के लिए देते हैं। अर्थात् सूई के अग्रभाग आकाश क्षेत्र में कितने सूक्ष्म निगोदिया जीव पाये जाते हैं उसका उत्तर मध्यम रुचि वाले शिष्यों के लिए आचार्य श्री देते हैं। पहले अध्याय में संक्षेप रुचिवाले शिष्यों के लिए वर्णन किया था।

1. (ब) मध्यम् रुचि वाले शिष्यों अथवा श्रोताओं के लिए:-

प्रथम बिन्दु के प्रथम भाग में संक्षेप रुचिवाले शिष्यों के लिए कहा था कि सूई के अग्रभाग आकाश में कुल जीव (सूक्ष्म निगोदिया) कितने हैं ? लेकिन यहाँ कहते है कि भाई तुम कुल जीवों की बात करते हो जबकि सूई के अग्रभाग आकाश क्षेत्र में असंख्यात लोक प्रमाण तो सूक्ष्म स्कन्ध हैं, प्रत्येक सूक्ष्म स्कन्ध मे असख्यात लोक प्रमाण अन्डर हैं, प्रत्येक अन्डर में असंख्यात लोक प्रमाण आवास हैं और प्रत्येक आवास में असंख्यात लोक प्रमाण पुलवी हैं। और प्रत्येक पुलवी मे असंख्यात लोक प्रमाण निगोद शरीर हैं अर्थात् पाँच जगह असंख्यात लोक प्रमाण, असंख्यात लोक प्रमाण राशि रखकर उनको आपस में गुणा करने पर जो महा असख्यातासंख्यात लोक प्रमाण राशि आवे उतने तो सूई के अग्रभाग आकाश क्षेत्र में सूक्ष्म निगोदिया शरीर हैं। अब एक निगोद शरीर में कितने सूक्ष्म निगोदिया जीव हैं सो समझाते हैं।

(6) शंका- सूई के अग्रभाग आकाश क्षेत्र मं असंख्यात लोक प्रमाण सूक्ष्म स्कन्ध, प्रत्येक स्कन्ध में असख्यात लोक प्रमाण अण्डर, प्रत्येक अन्डर में असंख्यात लोक प्रमाण आवास, प्रत्येक आवास में असख्यात लोक प्रमाण पुलवी, प्रत्येक पुलवी में असंख्यात लोक प्रमाण निगोद शरीर पाये जाते हैं। इसको कोई सरल दृष्टान्त से समझाने की कृपा करे।

समाधान- जिस प्रकार वर्तमान संसार में भारत, अमेरिका, चीन, रुस, जर्मनी, जापान, फ्रांस, इग्लैण्ड, इटली, ईरान, ईराक, मिस्र आदि अनेक राष्ट्र हैं और प्रत्येक राष्ट्र में अनेक प्रान्त हैं। जैसे भारत में राजस्थान, मध्यप्रदेश, उत्तरप्रदेश,

पंजाब, हरियाणा, गुजरात, केरल, महाराष्ट्र, कर्नाटक, तमिलनाडू आदि और प्रत्येक प्रान्त में अनेक जिले हैं। जैसे- अकेले राजस्थान में- अलवर, भरतपुर, जयपुर, धौलपुर, करौली, नागौर, श्री गंगानगर आदि और प्रत्येक जिले में अनेकों मोहल्ले हैं जैसे अलवर जिले में, हलवाई पाडा, धोबीपाडा, चमारपाडी, हिन्दुपाडा, दारुकूटा, बिच्छु की गली, हनुमानजी की गली आदि सैकड़ों मोहल्ले हैं और प्रत्येक मोहल्ले में सैंकडों घर हैं उसी प्रकार यहाँ पर राष्ट्रों के स्थान पर स्कन्ध, प्रान्त के स्थान पर अन्डर, जिले के स्थान पर आवास, मोहल्ले के स्थान पर पुलवी और घरों के स्थान पर निगोद शरीर समझने चाहिए।

(7) **शंका**- इसका आगम प्रमाण क्या है कि सुई के अग्रभाग जितने आकाश क्षेत्र में असंख्यात लोक प्रमाण स्कन्ध, अन्डर, आवास, पुलवी और निगोद शरीर उत्तरोत्तर असख्यांत लोक गुणे पाये जाते हैं।

समाधान- श्री ब्र० रायमल्ल विरचित ज्ञानानन्द श्रावकाचार पृ० सं० 188 पर निम्न प्रकार दिया है।

"एक सूई की अनी की डागला (अग्रभाग) ऊपरि असंख्यात लोक प्रमाण स्कंध पाइये हैं। एक एक स्कंध विषै असख्यात लोक प्रमाण अंडर पाइये हैं। एक एक अन्डर विषै असख्यात लोक प्रमाण आवास पाइये हैं। एक एक आवास में असख्यात लोक प्रमाण पुलवी पाइये हैं। एक एक पुलवी विषै असंख्यात लोकप्रमाण शरीर (निगोद शरीर) पाइये हैं।"

(8) **शंका**- असंख्यात लोक प्रमाण से क्या आशय है ?

समाधान- उपमा मान के आठ भेदों में (पल्य, सागरोपम, सूची अंगुल, प्रतरांगुल, घनांगुल, जगतश्रेणी, जगत् प्रतर और जगत घन) लोक भी आता है। जिस प्रकार किसी बर्तन द्वारा नाज वगैरहा को प्राचीन समय में नापते थे। बर्तन में भर भर कर नाज को नापते हैं। अथवा जिस प्रकार लीटर द्वारा दूध को नापते हैं उसी प्रकार जैन आगम में पदार्थों को नापने के लिए लोक भी काम में आता हैं। जो राशि एक लोक से असख्यात गुणी होती है उसको लोक द्वारा नापा जाता है। एक लोक प्रमाण का आशय एक लोक में जितने प्रदेश। असंख्यात लोक से आशय असंख्यात लोकों में जितने प्रदेश उतनी संख्या। जैसे अप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति कायिक जीव असंख्यात लोक प्रमाण है तो इसका आशय है कि

अप्रतिष्ठित वनस्पति कायिक जीवों को लोक में भर भर कर और खाली करने पर जितनी बार लोक भर कर खाली किया उतने लोकों में जितने प्रदेश उतनी वह राशि। इस प्रकार अप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति कायिक जीवों को लोक से मापने पर असंख्यात बार प्रक्रिया करनी पड़ेगी। अर्थात् जैसे अप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति जीवों को नापना है तो लोक को जीवों से भरा और एकतरफ लोक को खाली कर लिया फिर पुनः दोबारा अप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति कायिक जीवों को लोक में भरा और खाली किया इस प्रकार असंख्यात बार भर भर कर, खाली करने पर अप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति कायिक जीवों की संख्या आती है। (यहाँ पर यह भी ध्यान रखना चाहिए यद्यपि एक जीव लोकाकाश के असंख्यात प्रदेशों से कम जगह नहीं रोकता लेकिन यहाँ पर उपमामान में लोक से किसी भी संख्या को मापने पर एक प्रदेश पर एक जीव अथवा एक पदार्थ लेना है।)

एकेन्द्रिय जीवों में अप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति कायिक जीवों की संख्या सबसे कम है जो भी असंख्यात लोक प्रमाण है इनसे सप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति कायिक जीव असख्यात लोक गुणे ज्यादा हैं। अर्थात् अप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति कायिक जीवों को लोक से नापने पर जितनी बार प्रक्रिया (असख्यात बार) करनी पड़ेगी, सप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति कायिक जीवो को नापने के लिए उससे असख्यात गुणी ज्यादा बार प्रक्रिया करनी पड़ेगी। अतः सप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति कायिक जीवों की संख्या अप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति कायिक जीवों से असख्यात लोक गुणी ज्यादा है। चूकि ये दोनों बादर ही होते हैं, अतः एकेन्द्रिय जीवों में इनकी सख्या सबसे कम है जो भी असंख्यात लोक प्रमाण है यद्यपि दोनों ही अर्थात् अप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति व सप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति अलग-अलग असंख्यात लोक प्रमाण हैं फिर भी एक से दूसरी असंख्यात गुणी ज्यादा है प्रत्येक शरीर वर्गणाएं उत्कृष्ट रूप से असंख्यात लोक प्रमाण ही होती है। असंख्यात के भी असंख्यात भेद हैं। एक जीव के शरीर को प्रत्येक कहते हैं। नित्य खाने-पीने के काम में आने वाली वनस्पति प्रत्येक शरीरहै। वह दो प्रकार है- अप्रतिष्ठित और सप्रतिष्ठित। एक ही जीव के शरीर वाली वनस्पति अप्रतिष्ठित है, और असंख्यात साधारण शरीरों के समवाय से निष्पन्न वनस्पति सप्रतिष्ठित है और एक एक उक्त साधारण शरीर में अनन्तानन्त निगोद जीव वास

करते हैं। सन्तरा, आम, अनार, केला, जामफल, मौसमी, नीबू आदि अप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति हैं और आलु, गाजर, मूली, शकरकन्दी, अदरक, अरबी, रतालु जमीकन्द आदि सप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति है। अप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति पत्ते, फल, फूल आदि भी अत्यन्त कचिया अवस्था में सप्रतिष्ठित प्रत्येक जीव होते हैं जैसे कौंपल पीछे पक जाने पर अप्रतिष्ठित हो जाते हैं। जिनकी नसें नहीं दिखती, बन्धन व गाँठ नहीं दिखती, जिनके टुकड़े समान हो जाते हैं और दोनों भङ्गों में परस्पर तन्तु न लगा रहे उनको सप्रतिष्ठित प्रत्येक और इससे विपरीत को अप्रतिष्ठित प्रत्येक कहते हैं। जिन वनस्पति के कन्द, मूल, क्षुद्र या स्कन्ध की छाल मोटी हो उसको सप्रतिष्ठित प्रत्येक कहते हैं। जिस की छाल पतली हो उसको अप्रतिष्ठित प्रत्येक कहते है। करीर व सरसों के फूल, आक का दूध, ग्वाँरपाठा सप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति हैं। जल की काई, ईंट की काई, कूडे से उत्पन्न हरा नीला रूप जटाका (आहार कांजी आदि से उत्पन्न काई) ये सब सप्रतिष्ठित जानने। सभी पुष्प भी सप्रतिष्ठित प्रत्येक हैं। इन दोनों से अग्निकायिक जीव असंख्यात लोक गुणे ज्यादा हैं क्योंकि अग्निकायिक जीवों में सूक्ष्म जीव भी होते हैं। बादरों से सूक्ष्म जीव असंख्यात लोक गुणे ज्यादा हैं। अग्निकायिक जीवों से कुछ अधिक पृथ्वीकायिक जीव हैं जो भी असंख्यात लोक प्रमाण हैं। पृथ्वी कायिक जीवों से कुछ अधिक जलकायिक जीव हैं। जलकायिक जीवों से कुछ अधिक वायुकायिक जीव हैं। जो भी असंख्यात लोक प्रमाण हैं। एकेन्द्रीय जीवों में निगोदिया जीवों को छोड़कर वायुकायिक जीवों की संख्या सबसे अधिक है लेकिन अनन्त नहीं निगोदिया जीवों को छोड़कर सभी स्थावर मिलकर (अप्रतिष्ठित वनस्पति, प्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति, अग्नि, पृथ्वी, जल, वायु कायिक) भी अनन्त नहीं है। यथायोग्य मध्यम असंख्यात में ही आती है। जिनकी मिलकर भी व अलग-अलग भी संख्या असंख्यात लोक प्रमाण है। अनन्त तो केवल निगोद शरीर में ही पाये जाते हैं। अथवा लोकाकाश के एक एक प्रदेश पर एक एक जीव को निक्षिप्त कर के एक लोक हो गया। इस प्रकार मन से संकल्प करना चाहिए। इस प्रकार पुनः पुनः असंख्यात बार माप करने पर निगोद शरीरों की संख्या असंख्यात लोक प्रमाण होती है।

(9) शंका- निगोद का अर्थ क्या है ? निगोद शरीरों की कुल संख्या कितनी है ? तथा निगोद जीवों के जीव समास भी बताइये।

समाधान- निगोद शब्द की व्युत्पत्ति-

नि = नियंता

गो = भूमि, क्षेत्र, निवास

द = ददाति।

अनन्तानन्त जीवानां ददाती इति निगोद

अथवा

नि = अनन्तपना है निश्चित जिनका ऐसे जीवों को

गो = एक ही क्षेत्र

द = देता है उसे निगोद कहते है। अर्थात् जो अनन्त जीवों को एक निवास दे उसको निगोद कहते हैं। निगोद ही शरीर है जिनका उनको निगोद शरीर कहते हैं।

अथवा

नि = निरन्तर।

गो = भूमि अर्थात् अनन्त भव।

द = देने का स्थान।

उस योनि को निगोद कहते हैं। [गोम्मटसार जीव काण्ड गाथा 191, 415, 429]

निगोद का दूसरा पर्यायवाची नाम साधारण भी है।

जिस जीव ने एक शरीर में स्थित बहुत जीवों के साथ सुख दु:ख रूप कर्मफल के अनुभव करने योग्य कर्म उपार्जित किया है, वह जीव साधारण शरीर है।

अथवा साधारण नामकर्म के उदय से युक्त वनस्पति कायिक जीव साधारण शरीर है ऐसा कथन करना चाहिए।

साधारण जीवों का साधारण ही अहार होता है और साधारण ही श्वासोच्छ्वास ग्रहण होता है। इस प्रकार आगम में साधारण जीवों का लक्षण कहा है।

साधारण जीवो में जहाँ एक जीव मरण करता है वहाँ पर अनन्त जीवों का मरण होता है और जहाँ पर एक जीव उत्पन्न होता है वहाँ पर अनन्त जीवों का

उत्पाद होता है। संख्यात, असंख्यात या एक जीव नहीं मरते किन्तु निश्चय से एक शरीर में निगोद राशि के अनन्त जीव ही मरते हैं। और जिस निगोद शरीर में एक जीव उत्पन्न होता है उस शरीर में नियम से अनन्त निगोद जीवों की उत्पत्ति होती है। एक, संख्यात, असंख्यात जीव एक निगोद शरीर में एक समय में उत्पन्न नहीं होते किन्तु अनन्त जीव ही उत्पन्न होते हैं। वे एक बन्धन बद्ध होकर ही उत्पन्न होते हैं। जो साधारण शरीर जीव हैं वे नियम से वनस्पतिकायिक होते हैं। अवशेष जीव प्रत्येक शरीर हैं।

अब निगोद शरीरों की कुल संख्या कितनी है सो कहते हैं। सामान्यपनें समस्त निगोद शरीरों की संख्या असंख्यातासंख्यात लोक प्रमाण है। विशेषपने निगोद शरीर दो प्रकार के होते हैं- (1) **बादर निगोद शरीर** (2) **सूक्ष्म निगोद शरीर**। इनमें से बादर निगोद शरीर भी असंख्यातासंख्यात लोक प्रमाण है तथा सूक्ष्म निगोद शरीरों की संख्या भी असंख्यातासंख्यात लोक प्रमाण है। फिर भी बादर निगोद शरीरों से सूक्ष्म निगोद शरीरों की संख्या असंख्यात लोक गुणी ज्यादा है। दोनों मिलकर भी असंख्यात लोक प्रमाण है। विशेषपनें देखे तो निगोद जीवो को छोडकर समस्त स्थावर जीवों (अप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति, सप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति, अग्निकायिक, पृथ्वीकायिक, जलकायिक, वायुकायिक) से असंख्यात लोक गुणी ज्यादा संख्या स्थिति बन्ध के कारण भूत परिणामों की है। स्थिति बन्ध के कारण भूत परिणामों से असख्यात लोक गुणी ज्यादा अनुभाग बन्ध के कारण भूत परिणामों की है और अनुभाग बन्ध के कारण भूत परिणामो से भी असंख्यात लोक गुणी ज्यादा निगोद शरीरो की सख्या आती है। जोकि महा असंख्याता-संख्यात लोक प्रमाण है। एक छोटे से छोटे जमीकन्द आलु वगैरहा के टुकड़े में असंख्यात लोक प्रमाण बादर निगोद शरीरो के स्कन्ध हैं। प्रत्येक स्कन्ध मे असख्यात लोक प्रमाण अन्डर है। प्रत्येक अन्डर मे असख्यात लोक-प्रमाण आवास हैं और प्रत्येक आवास में असख्यात लोक-प्रमाण पुलवी हैं और प्रत्येक पुलवी मे असंख्यात लोक प्रमाण निगोद शरीर हैं। अर्थात् पाँच जगह असंख्यात लोक प्रमाण असंख्यात लोक प्रमाण, राशि रखकर उनको आपस में गुणा करने पर जो महा असंख्यातासंख्यात लोक प्रमाण संख्या आती है उतने तो बादर निगोद शरीर हैं।

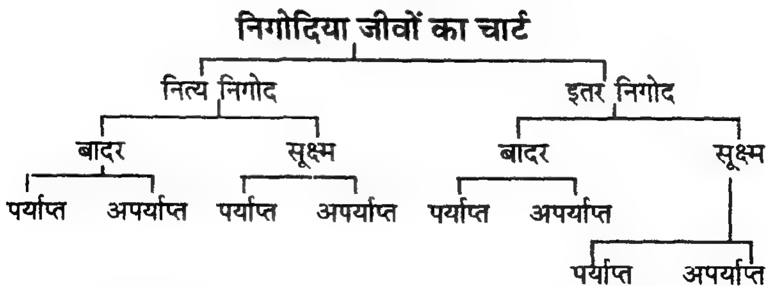
सातवीं नरक पृथ्वी के नीचे एक राजू उँचे क्षेत्र में जो निगोद जीवों के शरीर (स्कन्ध, अन्डर, आवास, पुलवी) है वे सब बादर निगोद जीवों के शरीर

है। इनसे अर्थात् बादर निगोद शरीरों से असंख्यात लोक गुणे सूक्ष्म निगोद शरीर हैं जो भी तीनों लोकों में ठसाठस, घड़े में घीवत्-भरे हुए हैं। और विशेषपने निगोद शरीरों की संख्या जाननी हो तो चौदह धाराओं में से द्विरूप घनाघन धारा का अध्ययन करना चाहिए। यहाँ विस्तार के भय से नहीं दे रहे हैं।

अब निगोद जीवों के जीव समास के बारे में बताते हैं। निगोद जीव दो प्रकार के होते हैं (1) **नित्य निगोद** (2) **इतर निगोद**। इनमें से प्रत्येक के बादर और सूक्ष्म की अपेक्षा पुनः दो दो भेद होते हैं अर्थात् (१) बादर नित्य निगोद (२) सूक्ष्म नित्यनिगोद (३) बादर इतर निगोद (४) सूक्ष्म इतर निगोद। इन चारों के भी पुनः प्रत्येक के दो दो भेद होते है। पर्याप्त और अपर्याप्त। इस प्रकार निगोद जीवों के कुल आठ जीव समास होते हैं।

(1) पर्याप्त बादर नित्य निगोद जीव।
(2) अपर्याप्त बादर नित्य निगोद जीव।
(3) पर्याप्त सूक्ष्म नित्य निगोद जीव।
(4) अपर्याप्त सूक्ष्म नित्य निगोद जीव।
(5) पर्याप्त बादर इतर निगोद जीव।
(6) अपर्याप्त बादर इतर निगोद जीव।
(7) पर्याप्त सूक्ष्म इतर निगोद जीव।
(8) अपर्याप्त सूक्ष्म इतर निगोद जीव।

निगोदिया जीवों का चार्ट



सम्पूर्ण निगोदिया जीवो में अथवा सम्पूर्ण निगोद शरीरों में असंख्यात लोक (यथायोग्य असख्यात लोक) का भाग देने पर एक भाग प्रमाण बादर और बहुभाग प्रमाण सूक्ष्म जीव अथवा सूक्ष्म शरीर होते हैं। अर्थात् बादरो से सूक्ष्म जीव व सूक्ष्म

शरीर असंख्यात लोकगुणे ज्यादा हैं। बादर निगोदिया जीव अक्षय अनन्त प्रमाण हैं। तथा बादर निगोद शरीरों की संख्या असख्यात लोक प्रमाण हैं। और सूक्ष्म निगोदिया जीव भी अक्षय अनन्त प्रमाण हैं। फिर भी बादर जीवों से असंख्यात लोक गुणे ज्यादा हैं। इसी प्रकार सूक्ष्म निगोद शरीरों की संख्या असंख्यात लोक प्रमाण हैं फिर भी बादर निगोद शरीरों से असंख्यात लोकगुणे ज्यादा हैं।

पुनः बादर निगोद जीवों में असंख्यात लोक का भाग देने पर एक भाग प्रमाण पर्याप्त बादर निगोदिया जीव हैं। और बहुभाग प्रमाण अपर्याप्त बादर निगोद जीव हैं। कहने का अभिप्राय यह है कि बादरों में पर्याप्त जीवों से अपर्याप्त जीव असंख्यात लोकगुणे ज्यादा हैं। बादरों में पर्याप्त अवस्था दुर्लभ है।

सूक्ष्म निगोदिया जीवों में संख्यात का भाग देने पर एक भाग प्रमाण अपर्याप्त है और बहुभाग प्रमाण पर्याप्त हैं। अर्थात् सूक्ष्म निगोदिया जीवों में अपर्याप्त जीवों की संख्या कम है उनसे संख्यातगुणे ज्यादा पर्याप्त सूक्ष्म निगोदिया जीव हैं।

सारांश यह है कि कुल निगोदिया जीवों में बादर निगोद जीवों से सूक्ष्म निगोदिया जीव असंख्यात लोकगुणे ज्यादा हैं। तथा सूक्ष्मों में पर्याप्त जीव अपर्याप्त जीवों से संख्यात गुणे ज्यादा हैं। बादरों मे पर्याप्तों से अपर्याप्त जीव असंख्यात लोकगुणे ज्यादा हैं।

(10) शंका- नित्य निगोद और इतर निगोद जीव किन्हें कहते हैं? स्पष्ट कीजिये।

समाधान- अनादि से लेकर प्रथम तो इस जीव के नित्य निगोद रूप शरीर का सम्बन्ध पाया जाता है वहाँ नित्य निगोद शरीर को धारण करके आयु पूर्ण होने पर मर कर फिर नित्य निगोद शरीर ही को धारण करता है इसी प्रकार अनन्तानन्त प्रमाण सहित जीव राशि है सो अनादि से वहाँ ही जन्म-मरण किया करती है। फिर वहाँ से निकलना ऐसा है जैसे भाड़ में भुंजते हुए चने का उचट जाना। वहाँ से छह महीना आठ समय में छह सौ आठ जीव निकलते हैं, वे निकलकर अन्य पर्यायों को धारण करते हैं। वे पृथ्वी, जल, अग्नि, पवन, प्रत्येक वनस्पति रूप एकेन्द्रीय पर्यायों के तथा दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय चार इन्द्रिय रूप पर्यायों में अथवा नारक, तिर्यंच, मनुष्य, देवरूप पंचेन्द्रिय पर्यायों में भ्रमण करते

हैं। वहाँ कितने ही काल भ्रमण कर फिर निगोद पर्याय को प्राप्त करे सो उसका नाम इतर निगोद है। इतर निगोद को चतुर्गति निगोद भी कहते हैं क्योंकि वह नित्य निगोद से निकलकर अन्य चारों गतियों में भ्रमण कर फिर निगोद में जाता है इसलिये उसको चतुर्गति निगोद कहते हैं। तथा इतर निगोद को अनित्य निगोद भी कहते हैं, क्योंकि वह नित्य निगोद से निकल आया है। नित्य निगोद में से तो जीवों के निकलने की कोई निश्चितता नहीं है लेकिन इतर निगोद से निकलने की निश्चितता है। इतर निगोद में अधिक से अधिक कोई जीव ढाई पुद्गल परावर्तन से ज्यादा नहीं रहता । वहाँ से निकलकर अन्य पर्यायों में (पृथ्वी, जल, अग्नि, पवन, प्रत्येक वनस्पतिरूप एकेन्द्रिय पर्यायों) भ्रमण करते हैं वहां परिभ्रमण करने का उत्कृष्ट काल पृथ्वी आदि स्थावरों में (इतर निगोद को छोड़कर) असंख्यात कल्पकालमात्र है। तथा इतर निगोद से निकलकर कोई स्थावर पर्याय प्राप्त करके फिर निगोद जाते हैं। इस प्रकार एकेन्द्रिय पर्यायों में उत्कृष्ट परिभ्रमण काल (इतर निगोद सहित) असख्यात पुद्गल परावर्तन मात्र है। पुद्गल परावर्तन काल ऐसा जिसके अनन्तवे भाग में भी अनन्त सागर होते हैं। जघन्य तो सर्वत्र एक अंतर्मुहूर्तकाल है। द्वीन्द्रियादि पचेन्द्रिय पर्यन्त त्रसों में साधिक दो हजार सागर है। इस प्रकार अधिकांश तो एकेन्द्रिय पर्यायों को धारण करता है। अन्य पर्यायों की प्राप्ति तो काक्तालीय न्यायवत् जानना। नित्य निगोदिया जीव भी दो प्रकार के होते हैं।

(1) अनादि अनन्त- जो आजतक निगोद से निकले नहीं और भविष्य मे भी कभी नहीं निकलेगे ऐसे नित्य निगोदिया भी अक्षय अनन्त हैं।

(2) अनादि सान्त- जो अनादि से तो निगोद मे थे लेकिन निगोद में से निकल आये हैं अथवा भविष्य में निकलेंगे।

अभ्यास–माला

(1) सूई के अग्रभाग आकाश क्षेत्र में कितने सूक्ष्म स्कन्ध, अण्डर, आवास, पुलवी और निगोद शरीर हैं।

(2) स्कन्ध, अण्डर, आवास, पुलवी, निगोद शरीर के समझने के लिये कोई सरल दृष्टान्त दीजिये।

(3) ब्र. रायमल्ल विरचित ज्ञानानन्द श्रावकाचार में पृष्ठ.स. 188 पर अपने विषय से सम्बन्धित क्या आया है ?

(4) असंख्यात लोक प्रमाण शब्द का आशय क्या है?

(5) एकेन्द्रियों में निगोदिया जीवों को छोड़कर सबसे कम संख्या किसकी है और कितनी है?

(6) अग्निकायिक जीवों की संख्या सप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पतिकायिक जीवों से कितनी ज्यादा है ?

(7) अप्रतिष्ठित से सप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पतिकायिक जीवों की संख्या कितनी गुणी ज्यादा है।

(8) अग्निकापिक जीवों से पृथ्वीकायिक जीव कितने ज्यादा हैं?

(9) पृथ्वीकायिक जीवों से जल कायिक जीव कितने ज्यादा हैं?

(10) जलकायिक जीवों से वायुकायिक जीव कितने ज्यादा हैं?

(11) एकेन्द्रिय जीवों में निगोदिया जीवों को छोड़कर सबसे अधिक संख्या किन जीवों की है?

(12) क्या अप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति व सप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति बादर ही होते हैं?

(13) निगोद शब्द का क्या अर्थ है?

(14) निगोद का दूसरा नाम क्या है?

(15) साधारण शब्द का अर्थ क्या है?

(16) निगोद शरीरों की कुल संख्या कितनी है?

(17) बादर निगोदिया जीवों से सूक्ष्म निगोदिया जीव कितने गुणे ज्यादा हैं?

(18) निगोद शरीर कुल कितने हैं? इसका विशेषपने ज्ञान करने के लिए किसका अध्ययन करना चाहिए?
(19) निगोदिया जीवों के कुल जीव समास कितने हैं?
(20) निगोदिया जीवो का चार्ट बनाइये?
(21) बादर जीवों में पर्याप्त और अपर्याप्त का अनुपात क्या है?
(22) सूक्ष्म जीवों में पर्याप्त और अपर्याप्त का अनुपात क्या है?
(23) बादर जीवों में किस अवस्था का प्राप्त होना दुर्लभ है?
(24) नित्य निगोद किसे कहते हैं ?
(25) इतर निगोद किसे कहते हैं?
(26) इतर निगोद के पर्यायवाची शब्द क्या हैं?
(27) नित्य निगोदिया जीव कितने प्रकार के हैं?
(28) अनादि से लेकर प्रथम तो इस जीव के किस शरीर का सम्बन्ध पाया जाता है?
(29) नित्य निगोद से कितने समय में कितने जीव निकलते हैं?
(30) इतर निगोद का अधिक से अधिक काल कितना है?
(31) एकेन्द्रिय पर्यायों में भ्रमण करने का उत्कृष्ट काल (नित्य निगोद को छोड़कर) कितना है?
(32) इतर निगोद को छोड़कर स्थावरों में भ्रमण करने का उत्कृष्ट काल कितना है?
(33) क्या सभी जीव नित्य निगोद से एक न एक दिन अवश्य निकलेंगे?
(34) नित्य निगोद से निकलकर फिर क्या जीव पुनः नित्य निगोद में जा सकते हैं?
(35) नित्य निगोद से निकलकर अन्य पर्यायों में भ्रमण कर जीव पुनः निगोद में जावे तो उसको क्या कहते हैं?
(36) त्रसों में अधिक से अधिक रहने का उत्कृष्ट काल कितना है ?
(37) तिर्यंच गति में जघन्य काल सर्वत्र कितना है?
(38) अनादि अनन्त नित्य निगोद किसे कहते हैं ?
(39) अनादि सान्त नित्य निगोद किसे कहते हैं ?

तीसरा अध्याय

अब इस तृतीय अध्याय में एक निगोद शरीर में कितने जीव हैं ? उसको कहते हैं-

आध्यात्मिक पंडित श्री बनारसीदास जी ने बनारसी विलास नामक ग्रन्थ में पृष्ठ 116 पर दोहा न० 97-98 में निगोद जीवों का वर्णन करते हुए कहा है:-

''एक निगोद शरीर में ऐते जीव बखान।
तीन काल के सिद्ध सब एक अंश परमान'' ॥97॥

अर्थ- एक निगोद शरीर में इतने जीव हैं कि तीन काल में मोक्ष जाने वाले जीव उस एक निगोद शरीर का एक अंश अर्थात् अनन्तवां भाग होगा अर्थात् तीन काल में जितने सिद्ध होंगे वे सब एक निगोद शरीर का अनन्तवां भाग होगा।

(11) शंका :- क्या तीनों काल में भी एक निगोद शरीर के जीवों की मुक्ति नहीं होगी?

समाधान- तीनों कालों में भी एक निगोद शरीर के जीवों की मुक्ति नहीं होगी। एक निगोद शरीर में अक्षय अनन्तानन्त जीव हैं। यदि एक निगोद शरीर के जीवों की मुक्ति हो जावे तो एक दिन ऐसा भी आ सकता है कि सभी निगोदिया जीवों की मुक्ति अवश्य हो जायेगी क्योंकि निगोद शरीरों की कुल संख्या असंख्यात लोक प्रमाण ही है। जबकि ऐसा सिद्धान्त है कि छह महीना और आठ समय में 608 जीव मोक्ष जाते रहेंगे। यह क्रम कभी बन्द नहीं होगा। अतः एक निगोद शरीर के जीवों की मुक्ति कभी नहीं होगी।

अब अगले दोहे में बताते हैं कि वह एक अंश अर्थात् अनन्तवाँ भाग भी कितना होगा-

''बढै न सिद्ध अनन्तता, घटै न राशि निगोद,।
जैसी की तैसी रहे, यह जिन वचन विनोद'' ॥98॥

अर्थ- छह महीना और आठ समय में 608 जीव अनादि काल से मोक्ष जा रहे हैं और भविष्य काल में हमेशा जाते रहेंगे फिर भी सिद्धों की संख्या बढेगी नहीं और एक निगोद शरीर के जीवों में से संख्या घटेगी नहीं। जितनी की जितनी रहेगी और सिद्ध महाराज भी जितने के जितने रहेंगे। ऐसा जिनवचन है। अर्थात् यह एक आश्चर्य है।

(12) **शंका:-** छह महीना और आठ समय में 608 जीव अनादिकाल से मोक्ष जा रहे हैं और भविष्य में जाते रहेगे। साथ ही जो जीव सिद्ध बन जावेंगे वो लौटकर फिर वापिस आते नहीं तथा निगोद में जीवों की आमद नहीं । फिर भी निगोद में जीवों की संख्या घटेगी नहीं और सिद्धों में जीवो की संख्या बढेगी नही। यह बात गले नहीं उतरती। जबकि गणित शास्त्र का यह एक अटल सिद्धान्त है कि जैसे मेरी जेब में से यदि पांच रुपया निकलकर आपकी जेब में जावेंगे तो मेरी जेब में घटेंगे अवश्य और आपकी जेब में बढेंगे अवश्य। फिर ऐसा कहना कि "बढे न सिद्ध घटे न राशि निगोद" इसको कौन समझदार व्यक्ति स्वीकार करेंगा?

समाधान- तुमने जो यह कहा कि गणित शास्त्र के अनुसार जितने जीव मोक्ष जावेंगे वे ससार राशि में से अवश्य घटेंगे और सिद्धालय में अवश्य बढेंगे सो तुम्हारा ऐसा मानना शत प्रतिशत सही है। लेकिन तुम उस दोहे को कहने का अभिप्राय नहीं समझे। अवश्य बढेंगे और संसार में अवश्य घटेंगे। लेकिन तीन काल में जितने जीव मोक्ष जावेंगे वे नाममात्र के सक्षय अनन्त ही होंगे। अत: अक्षय अनतानंत निगोदिया जीवों में से सक्षय अनन्त जीव निकालने पर ससार में अर्थात् निगोद शरीर में जीव अक्षय अनन्त ही बचे रहेंगे। सक्षय अनन्त राशि अक्षय अनन्तानन्त राशि में से निकालने पर कुछ फरक दिखाई नहीं पड़ता। सिद्ध राशि भी अक्षय अनन्तानन्त है। उनमें भविष्य काल मे सक्षय अनन्त जीव मोक्ष जाने पर उनमें (सिद्धों में) बढते दिखाई नहीं देते। इतने सिद्ध भी भविष्य काल मे नहीं होवेंगे। इसका तात्पर्य यह है कि इसका एक प्रतिशत भी नहीं बढ़ता है अर्थात् कोई प्रतिशत नहीं बढ़ता। इसलिये ऐसा कहा कि "बढै न सिद्ध अनन्तता, धटै न राशि निगोद। जैसी की तेसी रहे यह जिनवचन विनोद।"

(13) **शंका:-** यह बात जो आपने कही वह गले नहीं उतरती। कृपया किसी दृष्टान्त द्वारा समझाइये।

समाधान- जिस प्रकार किसी महासमुद्र में से अर्थात् स्वयंभूरमण समुद्र जोकि अकेला मध्य लोक मे आधा राजू में है उसमें से एक लौटा पानी निकालकर किसी छोटे समुद्र में अर्थात् लवण समुद्र में जो कि जम्बूद्वीप के बाद दो लाख प्रमाण योजन वलय व्यास वाला है। जिसका सूची व्यास पाँच लाख

योजन है तथा जिसमें एक लाख प्रमाण योजन व्यास वाले चौबीस जम्बूद्वीप बनजावें, उस लवण समुद्र में डाल दिया जावे तो अब आप ही बताइये कि उस स्वयंभूरमण समुद्र में क्या फर्क पड़ा अर्थात् उसका स्तर कितना सेन्टीमीटर घट गया और लवण समुद्र का पानी का स्तर कितना बढ गया अर्थात् कुछ फर्क दिखायी नहीं देता। यद्यपि सूक्ष्म दृष्टि से देखें तो एक लौटा पानी स्वयंभूरमण समुद्र में से घटा और एक लौटा पानी लवण समुद्र में बढ़ा लेकिन स्थूल दृष्टि से देखे तो कुछ फर्क नहीं पड़ा। उसी प्रकार संसार राशि में (स्वयंभूरमण समुद्र समान अक्षयानन्त जीव राशि) एक लौटा पानी (सक्षय अनन्त जीव राशि) सिद्धालय में (लवण समुद्र समान अक्षय अनन्त राशि) तीन काल में जावेंगे। अब आप ही बताइये कि स्थूल दृष्टि से देखे तो कुछ भी फर्क नहीं पड़ता। इसलिये कहा कि ''बढै न सिद्ध अनन्तता घटे न राशि निगोद''

यदि और भी आगे देखें तो एक लौटा पानी भी ज्यादा है, क्योंकि स्वयभूरमण समुद्र में कुल असंख्यात लौटा पानी ही है। तो क्या संसारी राशि के असंख्यात वे भाग जीव मोक्ष जावेंगे ? कदापि नहीं। संसार राशि का अनन्तवॉ भाग जीव ही मोक्ष जावेंगे। इसलिए एक लौटा पानी जीव मोक्ष जावेंगे सो ठीक नहीं है। यदि एक लौटे पानी के स्थान पर एक बूॅंद पानी कहें तो भी ठीक नहीं क्योंकि स्वयभूरमण समुद्र मे बूंद भी असंख्यात ही बनती है। अत: तीन काल में एक बूँद जीव भी मोक्ष नहीं जावेगे। अत: एक बूँद पानी स्वयंभूरमण समुद्र में से निकालकर लवण समुद्र में डालने पर कुछ भी फर्क नहीं पडता। इसी प्रकार सिद्धों मे व ससारी राशि में भी लगाना। वास्तव में देखें तो तीन काल में एक बूँद का अनन्तवॉ भाग ही जीव मोक्ष जावेंगे जो कोई मायने नहीं रखता। अत: अक्षयानन्त ससारी जीव राशि मे से एक बूँद का अनन्तवॉ भाग जितनी राशि सक्षय अनन्त प्रमाण सिद्धों में जो कि अक्षय अनन्त प्रमाण है उसमें मिलने पर कुछ जीव बैढते दिखाई नहीं देते। अत: उक्त कथन सर्वथा सत्य है कि ''बढै न सिद्ध अनन्ता, घटै न राशि निगोद''

(14) शंका:- ''बढै न सिद्ध अनन्ता, घैट न राशि निगोद'' इस सिद्धान्त को आगम के अन्य प्रमाणों से भी स्पष्ट कीजिये।

समाधान- (1) स्याद्वाद मजरी पृ सं 259 गाथा न० 29 की टीका प्रकाशक श्रीमद् राजचन्द्र ग्रन्थ माला-

"जितने जीव अब तक मोक्ष गये हैं और अभी आगे जाने वाले हैं वे निगोद जीवों के अनन्तवे भाग भी न है, न हुए है और न होगें।"

(2) आगम में कुल जीव राशि अंक संदृष्टि के हिसाब से 16 मानी गई है। उसमें 3 सिद्धराशि और 13 संसार राशि है। यह तीन तेरह का अनुपात संसार में हमेशा से है और हमेशा रहेगा। अर्थात् भूतकाल में कभी ऐसा समय नहीं था कि जब सिद्ध राशि दो और संसारी जीवराशि चौदह थी। भूतकाल में भी हमेशा 3 सिद्ध राशि और 13 संसार राशि थी। तथा अनंतकाल बाद आज भी सिद्धराशि 3 तथा संसारी 13 ही है। सिद्ध राशि बढ़ी नहीं और संसारी राशि घटी नहीं। वहीं अनुपात अब भी है। जबकि अनादि काल से छह महिना आठ समय में 608 जीव मोक्ष जा रहे हैं। तथा भविष्य में भी कभी ऐसा नहीं होगा कि सद्धि राशि चार हो जावेगी और ससार राशि बारह रह जावेगी। भविष्य काल में भी यही तीन तेरह का अनुपात रहेगा। जबकि छह महिना आठ समय में 608 जीव हमेशा मोक्ष जाते रहेंगें। यह क्रम कभी बन्द नहीं होगा। फिर भी सिद्ध राशि तीन ही रहेगी और संसारी राशि तेरह ही रहेगी। इससे भी सिद्ध होता है कि

"बढ़ै न सिद्ध अनंतता, घटै न राशि निगोद।
जैसी की तैसी रहै, यह जिनवचन विनोद॥"

आधुनिक भाषा में कहे तो अर्थात् जितनी सख्या जीवों की आज है उतनी ही भूतकाल में थी और उतनी ही भविष्यकाल में रहेगी।

(3) गोम्मटसार जीवकाण्ड गाथा न० 196 तथा उसकी टीका सम्यग्यान चन्द्रिका में निम्न प्रकार कहा है-

गाथा-

"एग णिगोद सरीरे, जीवा दृव्वप्पमाणदो दिट्ठा।
सिद्धेहिं अणंतगुणा, सव्वेण विदीय कलेण॥"

अर्थ- समस्त सिद्ध राशि का और सम्पूर्ण अतीत काल के समयों का जितना प्रमाण है द्रव्य प्रमाण की अपेक्षा उनसे अनन्तगुणे जीव एक निगोद शरीर में रहते हैं-

विशेषार्थ :- एक निगोद-शरीर में जघन्यपने सिद्ध राशि से अनन्तगुणे और उत्कृष्टपने भूतकाल के समयों से अनन्तगुणे जीव पाये जाते हैं। यहाँ

अनन्तगुणे से आशय अनन्त वर्ग स्थान गुणाकार लेना चाहिए अर्थात् एक निगोद शरीर में जघन्यपने सिद्धों से अनन्त वर्ग स्थान आगे जाने पर जो राशि आती है उतनी संख्या एक निगोद शरीर में जीवों की है और उत्कृष्टपने भूतकाल के समयों से अनन्त वर्गस्थान आगे जाने पर जो संख्या आती है उतनी संख्या जीवों की है।

इस गाथा की टीका में प्रश्नकार ने प्रश्न किया कि जो छः महिना आठ समय मे छहसो आठ जीव कर्मनाश कर सिद्ध होई सो ऐसे सिद्ध बधते जांहि संसारी घटते जांहि, तातै तुम सदाकाल सिद्धनितै अनंतगुणे एक निगोद शरीर विषै जीव कैसे कहो हो ? सर्वजीव राशि से अनतगुणा अनागत काल (भविष्यतकाल) का समय समूह है सो यथायोग्य अनंतवाभाग प्रमाण काल गए संसारी-राशि का नाश अर सिद्ध राशि का बहुत्व होई, तातै सर्वदा काल सिद्धनितै निगोद शरीर विषै जीवनिका प्रमाण अनंत गुणा संभवे नाही ?

ताका समाधान- रे तार्किक! भव्य संसारी जीवनि का परिमाण अक्षयानंत है। सो केवल ज्ञान करि और श्रुत केवली दृष्टि करि ऐसे ही देखा है सो यह सूक्ष्मता तर्क गोचर नाहीं।

शंका- जो तर्क करि विरोधी आगम कैसे प्रमाण होई ?

ताका समाधान- सर्व भव्य संसारी राशि अनंतकाल करि भी क्षय को प्राप्त न होई, कारण यह राशि अक्षयानंत है। जो-जो अक्षयानंत है सो सो अनंतकाल करि भी क्षय को प्राप्त नहीं है। जैसे तीन काल के समयनिका परिमाण कहा कि इतना है, परि कबहु अत नाहीं। बहुरि अक्षयानंतपना भी सर्व मतवाले माने हैं, कोई ईश्वर विषै मानै हैं कोई स्वभाव विषै माने तातै कहा हुआ कथन प्रमाण है अन्य मत मे भी कहा है-

''ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।
पूणस्य पूर्णमादाय पूर्ण मेवावशिष्यते॥''

(वृहदारण्यक उपनिषद)

अर्थ- ॐ= सच्चिदानन्द; अद = वह परब्रहम; पूर्णम् = सब प्रकार से पूर्ण है, इदम् = यह (जगत् भी), पूर्णम् = पूर्ण (ही) है; (क्योंकि) पूर्णात् = उस पूर्ण (परब्रह्म) से ही, पूर्णम् = यह पूर्ण, उदच्यते = उत्पन्न हुआ है, पूर्णस्य = पूर्ण के , पूर्णम् = पूर्ण को; आदाय=निकाल कर (भी), पूर्णम् = पूर्ण एव ही, अवशिष्यते = बचं रहता है।

अर्थ- वह सच्चिदानन्दघन परब्रह्म सब प्रकार से सदा सर्वदा परिपूर्ण है। यह जगत् भी उस परब्रह्म से ही पूर्ण हैं; क्योंकि यह पूर्ण उस पूर्ण पुरुषोत्तम से ही उत्पन्न हुआ है। इस प्रकार परब्रह्म की पूर्णता से जगत पूर्ण है, इसलिए वह परिपूर्ण है। उस पूर्ण ब्रह्म में से पूर्ण को निकाल देने पर भी वह पूर्ण ही बच रहता है।

विशेषार्थ- जबकि अन्य मत के पूर्ण का स्वरुप और जैन दर्शन के पूर्ण (अक्षय अनन्त) स्वरूप में अन्तर है। क्योंकि पूर्ण में से पूर्ण निकालने पर पूर्ण नहीं बच सकता। अन्य दर्शन में पूर्ण का जो स्वरूप कहा गया है वह युक्ति से बाधित है जैसे १०० में से १०० निकालने पर १०० नहीं बच सकते। जैन दर्शन मे जो पूर्ण (अक्षय अनन्त) का स्वरूप कहा वह युक्तिसंगत है। जैनदर्शन में तो अक्षय अनन्त मे से सक्षय अनन्त निकालने पर अक्षय अनन्त ही बचा रहता है। यहाँ तो बड़ा अनन्त में से छोटा अनन्त निकालने पर अनत बचा रहता है। वह कुछ कम होकर छोटा अनन्त बचता है न कि उतना का उतना ही। अत: अन्यमतके अनन्त का स्वरूप बाधित है। कथन युक्तिसगत नही है।

(4) वृहद् द्रव्य संग्रह गाथा 37 की संस्कृत टीका में कहा है-

शंका- ''अनादि काल से जीव मोक्ष जा रहे हैं अत: जगत् कभी जीवों से बिलकुल शून्य हो जायेगा ?

समाधान- जैसे भविष्य काल सम्बन्धी समयो के क्रम से भूतकाल मे जाने पर भी यद्यपि भविष्यतकाल के समयों की राशि में कमी होती है। फिर भी उसका अंत नहीं आता। इसी प्रकार जीवों के मुक्ति मे जाने से यद्यपि जगत् मे जीवराशि की न्यूनता होती है, तो भी उस जीव राशि का अन्त नहीं होता। यदि जीवो के मोक्ष जाने से शून्यता मानते हैं तो पूर्वकाल मे जीव मोक्ष गए है तब भी इस समय जगत् में जीवो की शून्यता क्यो नहीं दिखाई पड़ती ? अर्थात् शून्यता नहीं हुई। और भी अभव्य जीवों तथा अभव्य जीवों के समान दूरानुदूर भव्य जीवो का मोक्ष नहीं है। फिर जगत की शून्यता कैसे होगी?''

(5) ज्ञानानन्द श्रावकाचार पृष्ठ संख्या 168 पर भी आया है-

''पूर्वे अनादिकाल के जैते सिद्ध हुये वा नित्य निगोद में से निकाले बिना ते अनन्तगुणे एक एक समय विषै अनादि काल सु लगाय सासते नित्य निगोद में

सू निसरवो करे तो भी एक निगोद के शरीर माँही ताजीव राशि का अनन्तवें भाग एक अंश मात्र खाली होय नाहीं तो कहो राजमार्ग बटवॉरा माफिक निगोद में सू जीव का निकलना कैसे होय ?''

(6) अथवा जैसे पद्मद्रह आदि छहों द्रहों में से गंगा सिंधु आदि चौदह नदियाँ निकली हैं तथा अनादि काल से उन द्रहों में से पानी निकलता रहता है और लवण समुद्रादि में पड़ता रहता है तो भी द्रहों का पानी नहीं घटता। उन द्रहों में उतना का उतना पानी हमेशा बचा रहता है। उसी प्रकार अक्षय अनन्तानन्त जीवों में से जीव राशि घटते रहने पर भी जीवो की संख्या अक्षय अनन्त बनी रहती है।

(7) अब पूज्य कानजी स्वामी के शब्दों में भी कहते हैं कि यह संसार जीवों से कभी खाली नहीं होगा- द्रव्य दृष्टि जिनेश्वर पर्याय दृष्टि विनश्वर पुस्तक प्रथम संस्करण :-

बोल न० 373 - ''छह महिना और आठ समय में छह सो आठ जीव मोक्ष जाते हैं और उतने ही जीव नित्य निगोद से निकलते हैं। बाकी तो ज्यों के त्यो निगोद मे पड़े रहते हैं। जब देखों तब निगोद के एक शरीर में रहे हुए जीवों के अनन्तवें भाग ही जीव मोक्ष जाते हैं। अहाहा! उस निगोद से निकलकर ऐसा मनुष्य भव प्राप्त हुआ और भगवान् की वाणी मिली यह तो धन्य भाग महा पुण्य **का ढ़ेर हो**- मेरु समान पुण्य की राशि हो तब ऐसा योग मिलता है। अब कार्य कर लेना उसके हाथ की बात है भाई। ऐसे अपूर्व काल में तू अपना कार्य कर ले!''

बोल न० 485- ''अहो ! ज्ञान स्वभाव का माहात्म्य कितना है। सामर्थ्य कितना है उसकी जगत को खबर नहीं है। आकाश के अनन्त प्रदेश हैं उनमें यहाँ से (किसी स्थान से) उनकी गिनती करने पर आकाश का अन्तिम प्रदेश कौनसा है ? उसका अन्त है ही नहीं।

काल के अनंत समय हैं उनमें वर्तमान समय से गिनने पर काल का अन्तिम समय कौनसा है ? उसका अंत है ही नहीं।

इसी प्रकार द्रव्य अनंत है उनकी गिनती करने पर अन्तिम द्रव्य कौन सा ? उसका अन्त नहीं।

उसी प्रकार एक जीव के ज्ञान-दर्शनादि गुण भी आकाश के प्रदेशों की अपेक्षा अनंत गुणे हैं, उनमें अन्तिम गुण कौनसा ? उसका अंत है ही नहीं। अहाहा ! गजब बात है। ज्ञान की पर्याय ज्ञेय प्रमाण है और ज्ञेय लोकालोक है। जिसका पार नहीं है ऐसे अपार अनंतानंत द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव को ज्ञेय बनाने वाली एक समय के ज्ञान का सामर्थ्य कितना ? शक्ति कितनी ? उस एक समय की पर्याय में अनंतानंत ज्ञेय प्रमाण ज्ञान, ज्ञान की पर्याय के अविभाग प्रतिच्छेद कितने ? उसका अन्तिम अविभाग प्रतिच्छेद कौनसा ? अहाहा ! गजब बात है।

सिद्ध हुए उनके भव का अंत तो आया परन्तु उनका पहला भव कौनसा ? अनादि है उसका प्रारम्भ है ही कहाँ ? अंत रहित द्रव्य है उनका अंत कैसे आये ? अंत रहित क्षेत्र है उसका अंत आये कैसे ? अंतरहित काल है उसका अंत आये कैसे ? अंतरहित भाव है उनका अंत आये कैसे ? अहाहा ! इतने-इतने अनंत ज्ञेय हैं उन्हें जानने वाला ज्ञान ज्ञेय प्रमाण है। ऐसे अनन्त पदार्थों को श्रुतज्ञान में ज्ञेय बनाया। उसकी पर्याय में विषयों का रस नहीं रह सकता। अहाहा ! आत्मा वस्तु ही कोई ऐसी चमत्कारिक है उसका क्या कहना भाई !''

बोल नं: 592- ''वर्षा ऋतु में जो यह हरी काई का बिछौना देखते हैं। तब ऐसा लगता है कि अरे ! इस हरी काई के एक सूक्ष्म टुकड़े (छोटे से छोटे) में असंख्य (असंख्यात लोक प्रमाण) औदारिक निगोद शरीर हैं और उसके एक शरीर में अनंत जीव है; उनके अनंतवें भाग के जीव बाहर निकलकर मोक्ष जाते हैं। दोइन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय तथा पचेन्द्रिय मनुष्य, पशु, नारकी और देव-इन चारों गतियों के जीव तो असंख्यात (जगत प्रतर के असंख्यातवें भाग) ही हैं। उनकी अपेक्षा अनंत जीव निगोद के एक शरीर में हैं। अरेरे ! वे जीव कब निगोद से बाहर निकलेंगे ? कब मनुष्य होंगे ? और कब सत् का श्रवण करेगे ? भाई ! यह मनुष्य भव और दुर्लभ सत समागम प्राप्त हुआ है तो अपने आत्मा को चार गतियों के दु:ख से छुड़ा ले।''

बोल न० 995- ''अनन्तका अनन्त द्वारा अनन्त-अनन्त बार गुणा करो तथापि कभी उन गुणों (आत्मा में गुणों की संख्या आकाश के प्रदेशों से भी अनन्तगुणी है) की अनन्तता को नहीं पहुँचा जा सकता। अरे प्रभु ! आत्मा क्या वस्तु है ? आत्मा में ज्ञान, आनंदादि की अनन्त-अनन्त लक्ष्मी भरी पड़ी है उसकी तुझे खबर नहीं है।''

बोल न० 1026- "प्रत्येक आत्मा भगवान स्वरूप है। प्रज्ञा ब्रह्मस्वरूप है चैतन्य रसकन्द है। अहाहा! इस समय वर्षा ऋतु में तो हरी घास बहुत है, उस पर बिना कारण पाँव रखकर कुचलते हुए चलना वह नहीं होना चाहिए भाई । उस एक सूक्ष्म टुकड़े में असंख्यात प्रत्येक जीव हैं। वे सब भगवान स्वरूप हैं।"

पूज्य कानजी स्वामी द्वारा वीतराग विज्ञान मासिक पत्रिका मार्च 1995 में ज्ञान गोष्ठी प्रकरण के अन्तर्गत अनादि अनन्त से सम्बन्धित उपयोगी शंका समाधान भी दिए जाते हैं-

शंका- प्रथम पर्याय कौनसी और अन्तिम कौनसी ? क्या यह भगवान भी नहीं जानते ?

समाधान- वस्तु जैसी है, वैसी भगवान जानते हैं या उससे विपरीत ? जो अनादि है उसकी तो आदि है ही नहीं तो फिर भगवान् आदि कैसे जानेंगे ? और जो अनन्त है, उसका तो अन्त है ही नहीं, तो भगवान् उसका अन्त भी कैसे जानेंगे ? यदि भगवान् उसके आदि अन्त को जानते तो अनादि-अनन्तपनाही कहाँ रहा ? भाई । यह तो स्वभाव का अचिन्त्य विषय है। अहो । अनन्तता जिसके ज्ञान में समा गई, उस ज्ञान की दिव्य अनन्तता लक्ष्य में लेने पर ज्ञान उसमें ही (ज्ञान स्वभाव की अनन्त महिमा में ही) डूब जाता है, अर्थात् ज्ञान स्थिर हो जाता है, निर्विकल्प हो जाता है।

शंका- यदि अनन्त का अन्त भगवान नहीं जानते, तब तो उनका ज्ञान सामर्थ्य मर्यादित हो गया है ? केवल ज्ञान में अपरिमित सामर्थ्यता सिद्ध नहीं हुई ?

समाधान- नहीं, यदि भगवान् अनन्त को अनन्तरूप से न जानते हो, तो उनका ज्ञान सामर्थ्य मर्यादित कहा जाय, परन्तु भगवान् तो केवल ज्ञान की असीम सामर्थ्य से अनन्त को अनन्तरूप से प्रत्यक्ष जानते हैं। भगवान् ने अनन्त को अनन्त रूप से जाना है, इसलिए उसे अनन्त कहा है। अनन्त को भी सर्वज्ञ जानते हैं; यदि वे अनन्त को न जानें तो सर्वज्ञ कैसे कहे जायें ?

शंका- जब भगवान् ने अनन्त को जान लिया तो उनके ज्ञान में उसका अन्त आया या नहीं ?

समाधान- नहीं, भगवान् ने अनन्त को अनन्तपनें जाना है, अनन्त को अन्तरूप से नहीं जाना। भगवान् अनन्त को नहीं जानते-ऐसा भी नहीं और

भगवान् के जानने से उसका अन्त आ जाता है- ऐसा भी नहीं। अनन्त को अनन्तपनें रहकर ही सर्वज्ञ के ज्ञान में ज्ञात होता है। यदि अनन्त को अन्त रूप से जाने तो वह ज्ञान खोटा और अनन्त को जान ही न सके तो वह ज्ञान अपूर्ण है।

शंका- जो अनन्त है, वह भला ज्ञान में कैसे जाना जा सकता है ?

समाधान- भाई ! ज्ञान सामर्थ्य की अनन्तता अति महान है, इसलिए असीम ज्ञान सामर्थ्यता अनन्त के पार में पहुँच जाती है। ज्ञान का अचिन्त्य सामर्थ्य लक्ष्य में आवे तभी यह बात गले उतर सकती है। विकार में अटका हुआ ज्ञान मर्यादित है, वह अनन्त को प्रत्यक्ष रूप से नहीं जान सकता, किन्तु निर्विकार, ज्ञान में तो बेहद् अचिन्त्य शक्ति है। अतः वह अनादि-अनन्त काल व अनन्तानन्त आकाश प्रदेशों को साक्षात् प्रत्यक्ष जान लेता है। अरे! ज्ञान में तो अनन्तगुणी सामर्थ्य विकसित हुई।

शंका- विकार की परम्परा तो अनादि की है तो फिर उसका अन्त कैसे आवे ?

समाधान- अनादिकालीन परम्परा का अन्त आवे ही नहीं ऐसा तो नहीं है। जैसे वृक्ष और बीज की परम्परा अनादि होने पर भी किसी एक बीज के दग्ध हो जाने पर उसकी परम्परा का अन्त आ जाता हैं, तदनुसार विकार की परम्परा अनादि की होने पर भी सम्यक्दर्शन-ज्ञान चारित्र से धर्मी जीव के द्वारा उसका अन्त आ जाता है। जगत में सामान्य रूप से विकार और कर्म की परम्परा अनादि अनन्त है, उसका जगत में से कभी अभाव होने वाला नहीं, परन्तु ऐसा होने पर भी सभी जीवों में विकार की परम्परा चलती ही रहे-ऐसा भी नियम नहीं। बहुत से जीव पुरुषार्थ द्वारा विकार की परम्परा तोड़कर सिद्ध पद को प्राप्त करते हैं, उनके विकार की परम्परा का अन्त आ जाता है जिसने एक बार विकार के बीज को दग्ध कर दिया, उसको पुनः कभी विकार होता नहीं- इस प्रकार विकार की श्रृंखला टूट सकती है।

(15) शंका- अन्यदर्शन में जीवों की संख्या कितनी मानी है ?

समाधान- सदा शिववादी यह कहते है कि 100 कल्पकाल प्रमाण समय बीत जाने पर जब जगत शून्य हो जाता है तब फिर उन मुक्त जीवों का संसार में आगमन होता है अर्थात् नैयायिक मती हैं वे ऐसा कहते हैं कि "सौ कल्पकाल

चले जाने पर जगत् जीवों से शून्य हो जाता है और सब जीव उस समय मुक्त हो जाते हैं। तब सदाशिव को जगत के करने की चिंता होती है। इसके बाद जो मुक्त हुए थे उन सब के कर्मरूप अंजन का संयोग करके संसार में पुनः डाल देता है।''

टिप्पणी- जिन दर्शनों में जीवों की संख्या सीमित मानी है उनके अनुसार संसार जीवों से शून्य हो जाता है। सभी जीवों के मोक्ष जाने पर संसार का अंत आ जाता है। फिर उनको संसार चलाने के लिए संसार में पुनः ईश्वर कर्म अजन से मलीन कर ससार में डाल देता है। उनके मत में मोक्ष का स्वरूप यथार्थ नहीं है। ऐसी मोक्ष को कौन चाहेगा ? अपनी मनगढन्त कल्पना बना ली है। सर्वज्ञता नहीं होने के कारण अनन्तजीवों का ज्ञान नहीं हो सकने के कारण यह सब असत् मान्यतायें गढ़ ली हैं।

निष्कर्ष- इस बिन्दू का सार निम्न है- जब एक निगोद शरीर में इतने जीव (अक्षय अनन्त) पाये जाते हैं तब सूई के अग्रभाग आकाश क्षेत्र में कितने जीव पाये जाते हैं। निकालना चाहिए। चूँकि सूई के अग्रभाग आकाश क्षेत्र में असख्यातासख्यात लोक प्रमाण निगोद शरीर पाये जाते हैं अतः एक निगोद शरीर के जीवों को असंख्यातासंख्यात प्रमाण निगोद शरीरों की संख्या से गुणा करने पर सूई के अग्रभाग आकाश क्षेत्र में जीवों की संख्या (अक्षय अनन्त × असंख्यातासख्यात लोक) असंख्यातासंख्यात लोक गुणी अक्षय अनन्तानन्त आती है। एक निगोद शरीर मे जीवों की संख्या अक्षय अनन्त है और सूई के अग्रभाग आकाश क्षेत्र में कुल जीव भी अक्षय अनन्त हैं लेकिन एक निगोद शरीर के जीवों की अपेक्षा असंख्यात लोक गुणी ज्यादा होगी। और जब सूई के अग्रभाग आकाश क्षेत्र में इतने जीव (अक्षय अनन्त × असंख्यातासंख्यात लोक प्रमाण) पाये जाते हैं तब पूरे लोक में कितने गुणे जीव पाये जायेंगे। चूँकि पूरे लोक में सूई के अग्रभाग जितने टुकड़े असंख्यात बनेंगे अतः उनको असंख्यात से गुणा और करने पर लोक में कुल सूक्ष्म निगोदिया जीवों की संख्या (अक्षय अनन्त × असंख्यातासंख्यात लोक × असंख्यात) आवेगी जो भी अक्षय अनन्त ही होगी। यद्यपि एक निगोद शरीर में जीव अक्षय अनन्त हैं और सूई के अग्रभाग जितने आकाश क्षेत्र में भी अक्षय अनन्त जीव हैं फिर भी उनसे (सूई के अग्रभाग जितने क्षेत्र के जीवों से) असंख्यात गुणे अक्षय अनन्त जीव पूरे लोक में होंगे।

अभ्यास–माला

(1) एक निगोद शरीर में जीवों की संख्या कितनी है ? पं० बनारसी दास के अनुसार लिखिए।

(2) क्या तीनों काल में कभी एक निगोद शरीर के जीवों की मुक्ति हो जावेगी ? कारण सहित उत्तर दीजिए।

(3) "बढे न सिद्ध अनन्तता, घटै न राशि निगोद।
जैसी की तैसी रहै, यह जिन वचन विनोद।"
उक्त दोहे का अर्थ स्पष्ट कीजिए।

(4) कोई सरल दृष्टान्त द्वारा सिद्ध किजिए कि निगोद में जीवों की संख्या घटती नहीं हैं और सिद्धालयं में बढती नहीं है।

(5) स्वयंभूरमण समुद्र में पानी के कितने लोटे बनेगे ?

(6) स्वयंभूरमण समुद्र में पानी की कितनी बूँदें हैं ?

(7) मध्यलोक एक राजू में असंख्यातासंख्यात द्वीप समुद्रों में स्वयभूरमण ने कितना हिस्सा मध्यलोक का रोक रखा है।

(8) स्याद्वाद मंजरी गाथा नं० 29 की टीका में निगोदिया जीवों की सख्या के बारे में क्या बताया है ?

(9) तीन तेरहका सिद्धान्त क्या है ? स्पष्ट कीजिए।

(10) गोम्मटसार जीवकाण्ड गाथा 196 मे एक निगोद शरीर में जीवों की सख्या कितनी बताई है ?

(11) इसी गाथा की टीका में शंका कारने क्या शंका उठाई और आचार्य श्री ने उसका क्या समाधान किया ?

(12) अन्यदर्शन में अक्षय अनन्त का स्वरूप कैसा माना है ? क्या उनका मानना युक्ति से ठीक उतरता है ? कारण सहित उत्तर दीजिए।

(13) वृहद्द्रव्य संग्रह की 37 वीं गाथा की टीका में क्या बताया है ?

(14) पद्मद्रहों में गंगा सिन्धु आदि नदियाँ निकली हैं। फिर भी उनका पानी घटता नहीं सो क्या कारण है ?

(15) 'द्रव्य दृष्टि जिनेश्वर पर्याय दृष्टि विनश्वर' प्रथम संस्करण के बोल नं. 373 में क्या आया है ?

(16) उक्त उसी पुस्तक के बोल नं. 485 में भी क्या वर्णन है ?

(17) बोल नं 592 में भी जो विषय आया है उसका सार क्या है ?

(18) बोल नं. 995 का सार भी बताइये।

(19) बोल नं. 1026 में क्या आया है ?

(20) ससार में जीवों की सख्या सदाशिव मतवादी के अनुसार कितनी है ?

(21) सदाशिववादी के अनुसार मोक्ष का जो स्वरूप बताया है क्या वह आदरणीय है ?

(22) जब एक निगोद शरीर मे जीव अक्षय अनन्त पाये जाते हैं तब सूई के अग्रभाग जितने आकाश क्षेत्र में उससे कितने गुणे जीव पाये जावेंगे ?

(23) सूई के अग्रभाग आकाश क्षेत्र में जितने सूक्ष्म निगोदिया जीव हैं उनसे तीनों लोक में कितने गुणे जीव पाये जावेंगे ?

चौथा अध्याय

अब इस चतुर्थ अध्याय में केवल ज्ञान की सूक्ष्मता के नौ बिन्दुओं में से प्रथम बिन्दु का उत्तर विस्तार रुचि वाले शिष्यों के लिए आचार्य श्री महाराज देते हैं।

1. (स) विस्तार रुचि वाले शिष्यों अथवा श्रोताओं के लिए-

"एक निगोद शरीर में जघन्यपनें सिद्धों से अनन्त वर्ग स्थान और उत्कृष्टपने भूतकाल के समयों (अक्षयअंनत) से अनन्त वर्ग स्थान जीव पाए जाते हैं।"

(15) शंका- अनन्त वर्गस्थान से क्या आशय है ?

समाधान- किसी भी संख्या को उसी से एकबार गुणा करने पर जो संख्या प्राप्त होती है वह उस संख्या का एक वर्ग स्थान है। इसका दूसरा नाम कृति भी है। प्रतर भी कहते हैं।

जैसे 10 का वर्ग 100 अर्थात् 10 × 10 = 100 यह 10 का पहला वर्ग है। इस प्रथम वर्ग में जिस संख्या को आपस में (10 × 10) गुणा किया है वह सख्या उतनी बार आ जाती है। अर्थात् 100 में 10 दस बार हैं। इसको दूसरी तरह से भी समझा जा सकता है। अर्थात् 10 एक जगह दस दूसरी जगह, दस तीसरी जगह इस प्रकार दस-दस, दस जगह रखकर फिर उनको इकट्ठा करने पर जो संख्या आवे वह उस संख्या का एक (प्रथम) वर्ग है। फिर इस प्रथम वर्ग (100) को उसी से (100) से पुनः आपस में गुणा करने पर (100 × 100) दस हजार (10,000) संख्या आती है, यह दस सख्या का दूसरा वर्ग स्थान है। इसमे सौ, सौ, सौबार है अर्थात् सौ एक जगह, सौ दूसरी जगह सौ तीसरी जगह इस प्रकार सौ-सौ, सौ जगह रखने पर उनको इकट्ठा करने पर जो सख्या आती है वह सौ का वर्ग है इसमें 100, सौ बार है। यह दस संख्या का दूसरा वर्ग है अर्थात् 10 संख्या का प्रथम वर्ग सौ और दूसरा वर्ग दस हजार है। इस दस हजार में 10 का प्रथम वर्ग 100 बार है तथा 10 तो हजार बार है। फिर 10 का तीसरा वर्ग किया अर्थात् दूसरा वर्ग दस हजार का आपस में गुना किया तो (10,000 × 10,000 = 10,0000000) दस करोड़ सख्या आती है। इस तीसरे वर्ग में दस हजार संख्या

दस हजार बार है अर्थात् दस हजार एक जगह, फिर दस हजार दूसरी जगह, फिर दस हजार तीसरी जगह इस प्रकार दस-दस हजार दस हजार जगह रखें फिर उनकों इकट्ठा करे तो दस करोड़ संख्या आती है। यह दस करोड़ संख्या दस संख्या का तीसरा वर्ग है। इस तीसरे वर्ग में दूसरा वर्ग दस हजार बार है और प्रथम वर्ग (100) दस लाख बार है और दस तो एक करोड़ बार है। फिर दस का चतुर्थ वर्ग करे अर्थात् तीसरे वर्ग को आपस मे (दस करोड़ × दस करोड़) गुणा करे तो (100,0000000,0000000) दस पदम संख्या आती है। इस संख्या में दस करोड़ सख्या, दस करोड़ बार है अर्थात् दस करोड़ एक स्थान पर दस करोड़ दूसरे स्थान पर, दस करोड़ तीसरे स्थान पर इस प्रकार दस करोड़ जगह रखने पर फिर उनको इकट्ठा करने पर दस पदम संख्या आती है। इस चतुर्थ वर्ग में (दस पदम मे) तीसरा वर्ग (दस करोड़) दस करोड़ बार है। दूसरा वर्ग (10 हजार) दस खरब बार है तथा प्रथम वर्ग (100) दस नील बार है और जिस का वर्ग किया है अर्थात् दस संख्या तो एक पदम बार है। इस प्रकार एक छोटी संख्या दस का उत्तरोत्तर वर्ग करने पर राशि कितनी अधिक हो जाती है।

इसी प्रकार यहॉ जघन्य संख्या तो सिद्ध राशि है और उत्कृष्ट राशि भूतकाल के समय हैं। जो दोनो अक्षय अनन्त है। फिर भी सिद्धों से भूतकाल के समय असख्यात गुणे ज्यादा हैं क्योकि छह महिना आठ समय में सख्यात आवली होती हैं और प्रत्येक आवली में असख्यात समय (जघन्ययुक्तानन्त) होते हैं *जबकि छह महिना आठ समय के असख्यात समयों में 608, जीव संख्यात ही* मोक्ष जाते हैं उनसे छह महिना आठ समय के समय असंख्यातगुणे हैं अत: सिद्धों से भूतकाल के समय असख्यात गुणे ज्यादा अक्षय अनन्त हैं और भविष्यतकाल मे भी सिद्धराशि और भूतकाल का यही अनुपात रहेगा। अब यहाँ प्रथम ही सिद्धो का अनन्त वर्ग स्थान करते हैं-

सिद्धों का प्रथम वर्ग किया अर्थात् सिद्धों (अक्षयअनत) को सिद्धो (अक्षयअनंत) से गुणा किया तो इसमें सिद्धराशि अक्षय अनंतानंत हो गयी। इस प्रथम वर्ग में सिद्ध राशि-अक्षय अनंत बार (सिद्ध राशि बार) हो गई। इस प्रथम वर्ग की भाव भासना इस प्रकार समझनी चाहिए। सिद्ध राशि एक स्थान पर, सिद्ध राशि दूसरे स्थान पर, सिद्ध राशि तीसरे स्थान पर इस प्रकार सिद्ध राशि अक्षय

अनंत (सिद्ध प्रमाण राशि) स्थान पर रखकर फिर उन सबकों इकट्ठा करने पर सिद्ध राशि का प्रथम वर्ग स्थान संख्या आती है। इस प्रथम वर्ग में सिद्ध राशि सिद्ध राशि बार है। इस प्रथम वर्ग की संख्या में सिद्ध राशि अक्षय अनन्तवें भाग है। फिर इस प्रथम वर्ग का वर्ग किया। यह सिद्ध राशि का दूसरा वर्ग है। इस दूसरे वर्ग में प्रथम वर्ग प्रथम वर्ग बार है। इस दूसरे वर्ग का प्रथम वर्ग अक्षय अनंतवां भाग है और सिद्ध राशि तो अक्षय अनन्त का भी अनन्तवाँ भाग है। इस प्रकार इस दूसरे वर्ग का फिर वर्ग किया। इस तीसरे वर्ग में दूसरा वर्ग अक्षय अनन्तवाँ भाग है और प्रथम वर्ग तो अनन्तवाँ भाग का भी अनंतवाँ भाग है और सिद्ध राशि तो दिखाई नहीं देती। इस तीसरे वर्ग में दूसरा वर्ग एक कोने में पड़ा है और प्रथम वर्ग का तो कहना ही क्या ? और सिद्ध राशि तो नजर ही नहीं आती। इस प्रकार चौथा वर्ग फिर चौथा वर्ग का पाचवाँ वर्ग करते जाइये और इस प्रकार अनन्त वर्ग करने पर जघन्यपनें एक निगोद शरीर में जीव पाये जाते हैं। और सिद्धों के स्थान पर यदि भूतकाल के समयों का अनन्त वर्ग किया जाए तो उतनी जीव राशि एक निगोद शरीर में उत्कृष्टपनें है।

इस तीसरे विस्ताररुचि के उत्तर का सार यह है कि तीन काल के सिद्धो के अनन्तगुणें से एक निगोद शरीर के जीवों का अनन्तवाँ भाग अनन्तगुणा है अर्थात् एक तरफ तो ज्ञान में तीन काल में जितने भी सिद्ध होंगे उनको अनन्त से गुणा करके रख लो और दूसरी तरफ एक निगोद शरीर के जीवों में अनन्त का भाग दो अब यह अनन्तवाँ भाग भी तीन काल के सिद्धों के अनन्तगुणे से भी अनन्तगुणा है। इस प्रकार एक निगोद शरीर में जीवों का परिमाण का अन्दाजा लगाया जा सकता है। और जब एक निगोदे शरीर में इतने (अक्षय अनन्त) जीव पाये जाते हैं तो सूई के अग्रभाग आकाशक्षेत्र में उससे असंख्यात लोक गुणे जीव पाये जाते हैं क्योंकि सूई के अग्रभाग आकाश क्षेत्र में असंख्यात लोक प्रमाण निगोद शरीर हैं। और इनसे असंख्यात गुणे जीव पूरे लोक मे पाये जायेगे, क्योंकि लोक में सूई के अग्रभाग जितने हिस्से असंख्यात बनेंगे।

(16) शंका- एक निगोद शरीर में जघन्यपनें सिद्धों के अनंत वर्ग स्थान और उत्कृष्टपनें भूतकाल के समयों के अनंत वर्गस्थान जीव पाये जाते हैं इसका आगम प्रमाण क्या है ?

समाधान- ज्ञानानन्द श्रावकाचार पृ०स० 188 पर निम्न प्रकार अंकित है।

"एक निगोद शरीर में भूतकाल के अनन्त काल के समयों से अनन्तानन्त वर्ग स्थान गुणे जीवनामा पदार्थ पाया जाता है।"

पृष्ठ 187 पर भी निम्न प्रकार आया है- "अतीतकाल के समय अनन्त, तासों अनन्त वर्ग स्थान गुणें जीव राशि का प्रमाण है।"

(17) शंका- अक्षय अनंत किसे कहते है ? तथा क्या सक्षय अनन्त भी होता है ? तथा अक्षय अनन्त राशियों के कुछ उदाहरण भी दीजिए।

समाधान- नवीन वृद्धि न होने पर भी खर्च करते करते जिस राशि का अन्त नहीं आवे उसको अक्षय अनन्त कहते हैं। अक्षय अनन्त में से सक्षय अनन्त राशि व्यय कर देने पर भी अक्षय अनन्त ही संख्या बची रहती है। वास्तव में व्यय के अनन्त काल तक भी होते रहने पर भी जो राशि क्षय को प्राप्त न हो उसे अनन्त कहते हैं । इसको निश्चय अनन्त भी कहते हैं। अथवा वास्तविक अनन्त भी कहते हैं इसके भी अक्षय अनन्त भेद हैं। अनन्त को अनन्त से गुणा करने पर गुणनफल भी अनन्त ही आता है। तथा अनन्त में से अनन्त घटाने पर भी बाकी राशि भी अनन्त ही बचती है। तथा अनन्त में अनन्त को जोड़ देने पर जोड़ भी अनन्त ही आता है और अनन्त में अनन्त का भाग देने पर भजनफल भी अनन्त ही आता है जो उपर्युक्त कहा है सो अक्षय अनन्त राशि के लिए कहा है। सक्षय अनन्त राशि के लिए नहीं।

दूसरी राशि सक्षय अनन्त है। जिसको औपचारिक अनन्त या व्यवहारिक अनन्त भी कहते हैं। जिस राशि का नवीन वृद्धि न होने पर खर्च करते करते अन्त आ जावे उसको सक्षय अनन्त राशि कहते हैं।

यहाँ कोई पूछे कि जिस राशि का अन्त आ जाता है फिर उसको अनन्त क्यों कहा ? वास्तव में तो सक्षय अनन्त राशि असख्यात सीमा के अर्न्तगत ही है लेकिन चूँकि वह राशि अवधि ज्ञान का विषय नही रही अब वह केवल ज्ञान की सीमा में आ गई इससे उसको उपचार से अनन्त कहा। क्योंकि सख्यात, असंख्यात, अनन्त की सीमा का कारण ज्ञान है। ज्ञान ही प्रमाण है। अतः जहाँ तक श्रुत केवली जान सके वहाँ तक संख्यात की सीमा है। इसके ऊपर अर्थात् उत्कृष्ट संख्यात में एक जोड़ने पर जघन्य असंख्यात को श्रुत केवली नहीं जान सकता

अतः उसे असंख्यात कह दिया क्योंकि अब वह अवधि ज्ञान का विषय हो गया। और जहाँ तक सर्वावधि ज्ञानी जान सके वहाँ तक असंख्यात है। अवधिज्ञानी उत्कृष्ट असख्यात तक ही जान सकता है यदि उत्कृष्ट असंख्यात में एक जोड़ दिया जावे तो उसको अर्थात् जघन्य अनन्त को सर्वावधि ज्ञानी नहीं जान सकता। अब उसको केवली जान सकता है। इसलिए उसको अनन्त कह दिया है। वास्तव में तो वह असख्यात ही है। अर्ध पुद्गल परावर्तन का काल यद्यपि अनन्त है तो भी वह सक्षय अनन्त की सीमा में ही आता है। क्योंकि उसका अन्त आ जाता है। इसलिए पाँचों परावर्तन (द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव और भाव) का काल सक्षय अनन्त ही हैं क्योंकि यदि पंच परावर्तन का काल अक्षय अनन्त होता तो जीव एक बार भी पच परावर्तन नहीं कर सकता। अभव्य जीवों की संख्या भी सक्षय अनन्त ही है। क्योंकि सक्षय अनन्त का अनन्तवाँ भाग जघन्य अनन्त है और जघन्य अनन्त का भी अनन्तवाँ भाग अभव्य जीवों की संख्या अर्थात् जघन्य युक्तानन्त प्रमाण है इसलिए अभव्यजीव सक्षय अनन्त हैं। जबकि भव्य जीव राशि अक्षय अनन्तानन्त प्रमाण है।

अब कहते है कि अक्षय अनन्त राशि कौन कौनसी है उनमें से मुख्य मुख्य राशि का ज्ञान कराते हैं-

(1) सिद्ध राशि।
(2) भूतकाल के समयों की संख्या।
(3) एक निगोद शरीर मे जीवों की सख्या।
(4) सम्पूर्ण जीवराशि।
(5) पुद्गल राशि ।
(6) भविष्य काल के समयों की संख्या।
(7) श्रेणी आकाश के प्रदेशों की संख्या।
(8) प्रतराकाश के प्रदेशों की संख्या।
(9) सर्व आकाश के प्रदेशों की संख्या।
(10) धर्म अधर्म द्रव्य के अगुरुलघुगुण के अविभाग प्रतिच्छेदों की संख्या।
(11) एक जीव के अगुरुलघुगुण के अविभाग प्रतिच्छेदों की संख्या।

(12) लब्ध्यपर्याप्तक सूक्ष्म निगोदिया जीव के पर्याय ज्ञान के अविभाग प्रतिच्छेदों की संख्या।

(13) जघन्य क्षायिकलब्धि अर्थात् क्षायिक सम्यक्त्व के अविभाग प्रतिच्छेदों की संख्या।

(14) केवल ज्ञान के अविभाग प्रतिच्छेदों की संख्या।

अल्पबहुत्व- अब उपर्युक्त राशियों में अल्पबहुत्व कहते हैं। सिद्ध राशि अक्षय अनन्त है। फिर भी अन्य राशियों की अपेक्षा सबसे कम है। इससे भूतकाल के समय असंख्यात गुणे ज्यादा अक्षय अनन्त हैं। यह ऊपर भी स्पष्ट किया जा चुका है। भूतकाल के समयों से अनन्त वर्ग स्थान जाने पर समस्त जीव राशि का प्रमाण आता है। और समस्त जीवों से अनन्त वर्ग स्थान जाने पर समस्त पुद्गलों की संख्या आती है। सम्पूर्ण पुद्गलों से भविष्यतकाल के समय अनन्त वर्ग स्थान जाने पर आते हैं। भविष्यतकाल के समयों से अनन्त वर्ग स्थान जाने पर श्रेणीरूप आकाश के प्रदेशों की संख्या आती है। श्रेणी आकाश का एक वर्ग करने पर प्रतराकाश आता है और प्रतराकाश से अनन्त गुणे सर्व आकाश के प्रदेशों की सख्या आती है अर्थात् प्रतराकाश को आकाश श्रेणी से गुणा करने पर सर्व आकाश के प्रदेशों की संख्या आती है। सर्व आकाश के प्रदेशों से अनन्त वर्ग स्थान जाने पर धर्म अधर्म द्रव्य के अगुरुलघुगुण के अविभाग प्रतिच्छेदों की संख्या आती है। इसी प्रकार क्रमशः अनन्त वर्गस्थान जाने पर एक जीव के अगुरुलघु गुण के अविभाग प्रतिच्छेदों की संख्या, सूक्ष्म निगोदिया लब्ध्यपर्याप्तक के जघन्य ज्ञान के उघाड़ ज्ञान के अविभाग प्रतिच्छेदों की संख्या, जघन्य क्षायिकलब्धि के अविभाग प्रतिच्छेद व केवल ज्ञान के अविभाग प्रतिच्छेदों की सख्या आती है। यह एक सामान्य कथन किया गया है। विशेष जानने के लिए द्विरूप वर्ग धारा का अध्ययन करना चाहिए।

अब इस प्रथम बिन्दु का सार बताते हैं-

(1) जितने सिद्ध आज तक हुए हैं उतने सिद्ध भविष्य काल में नहीं होगें। इसी प्रकार जितना भूतकाल जा चुका है उतना भूतकाल भविष्य काल में से पुनः भूतकाल में नहीं जा सकेगा। यद्यपि भूतकाल से भविष्य काल अनन्तगुना बड़ा है।

(2) भविष्य में जितने सिद्ध होंगे वे सक्षय अनन्त ही होंगे। अक्षय अनन्त नहीं होंगे। इसी प्रकार भविष्यकाल में भविष्यकाल में से भूतकाल सक्षय अनन्त ही जा सकेगा। अक्षय अनन्त काल भविष्य काल में से भूतकाल में नहीं जा सकेगा। क्योंकि यदि अक्षय अनन्त चला जाय तो फिर अक्षय अनन्त की परिभाषा गलत हो जाए।

(3) सभी सिद्ध पहले संसारी नहीं थे। एक जीव की अपेक्षा से कहे तो ऐसा कहा जायेगा कि संसार पूर्वक जीव सिद्ध होते हैं। लेकिन सभी जीव पहले संसारी थे यह नहीं कहा जा सकता। यदि ऐसा माना जाय कि सभी सिद्ध पहले संसारी थे तो इसमें दो बातों का आगम से विरोध आता है। (अ) पहली बात तो यह है कि यदि ऐसा माना जायेगा तो संसार की आदि हो जावेगी जोकि मान्य नही है। यह संसार अनादि काल से चला आ रहा है। (ब) दूसरी बात यह है कि सिद्ध अक्षय अनन्त हैं। अक्षय अनन्त जीव तो मोक्ष जा ही नहीं सकते। यदि अक्षय अनन्त जीव मोक्ष चले जावेंगे तो अक्षय अनन्त की आगम में जो परिभाषा दी है उससे विरोध आता है। भूतकाल में भी सक्षय अनन्त जीव ही मोक्ष गये हैं। जो सिद्ध अक्षय अनन्त हैं वे तो अनादि से ही अक्षय अनन्त हैं। भूत काल में ऐसा कोई समय नहीं था जिस समय अक्षय अनन्त सिद्ध नहीं थे।

(4) चक्रवर्ती का ऐसा नियोग है वह छह खण्डों के जीतने पर वृषभाचल पर्वत पर नाम लिखता है। तो आज तक कोई ऐसा चक्रवर्ती नहीं हुआ जिसको अपना नाम लिखने के लिए जगह मिली हो। प्रत्येक चक्रवर्ती ने अन्य चक्रवर्ती के नाम मिटाकर अपना नाम लिखा है बल्कि प्रत्येक चक्रवर्ती ने अक्षय अनन्त चक्रवर्ती के नाम मिटाकर अपना लिखा सक्षय अनन्त भी नहीं कह सकते। अनादि से वृषभाचल पर्वत पर अक्षय अनन्त चक्रवर्तीयों के नाम लिखे हुए हैं। फिर भी एक और आगम प्रमाण इस सम्बन्ध में प्रस्तुत है-

प्रश्न :- क्या सिद्धलोकका आदि व अन्त नहीं पाया जाता है।

समाधान :- नहीं, सिद्धलोक का आदि व अन्त नहीं पाया जाता है।

शंका :- सिद्धलोक के आदि व अन्त का अभाव कैसे है ?

समाधान:- क्योंकि उसकी प्रवाह स्वरुप से अनुवृति है तथा "सबसिद्ध जीव सिद्धिकी अपेक्षा सादि हैं और सन्तान की अपेक्षा अनादि हैं" ऐसा सूत्रवचन भी है। धवला पु 13 पृष्ठ स 350

अभ्यास-माला

(1) एक निगोद शरीर में जघन्यपनें और उत्कृष्टपनें कितने जीव पाए जाते हैं ?

(2) एक वर्ग स्थान की भाव भासना क्या है ?

(3) सिद्धों से भूतकाल कितना बड़ा है ?

(4) विस्तार रुचि शिष्य के लिए जो उत्तर दिया उसका सार क्या है ?

(5) अक्षय अनन्त और सक्षय अनन्त की परिभाषा क्या है ?

(6) संख्यात, असंख्यात, अनन्त की सीमा का कारण क्या है ?

(7) अभव्य जीवों की संख्या सक्षय अनन्त है कि अक्षय अनन्त कारण सहित उत्तर दीजिए।

(8) अक्षय अनन्त राशियों के कुछ उदाहरण दीजिये।

(9) क्या सभी सिद्ध पहले संसारी थे ? युक्ति सहित समझाइए।

(10) क्या आज तक ऐसा कोई चक्रवर्ती हुआ है, जिसको वृषभाचल पर्वत पर नाम लिखने को जगह मिली हो ?

(11) भविष्य काल में सक्षय अनन्त जीव सिद्ध होंगे कि अक्षय अनन्त कारण सहित उत्तर दीजिए ?

(12) क्या भूतकाल में अक्षय अनन्त जीव मोक्ष गये ? यदि नहीं तो उसकी युक्ति क्या है ?

(13) यदि भूतकाल में अक्षय अनन्त जीव मोक्ष नहीं गए तो फिर सिद्धो की संख्या अक्षय अनन्त क्यों है ?

पांचवाँ अध्याय

[अब इस अध्याय में केवल ज्ञान की सूक्ष्मता के नौ (9) बिन्दुओं में से दूसरे बिन्दु का कथन करते हैं-]

द्वितीय बिन्दु से सम्बन्धित प्राथमिक जानकारी-

प्रत्येक आत्मा निश्चय से लोक प्रमाण असंख्यात प्रदेशी बड़ी है। अर्थात् एक लोक 343 घन राजू के जितने प्रदेश हैं आत्मा के भी उतने ही प्रदेश हैं। जब यह जीव केवली समुद्घात करता है तब वह लोक प्रमाण बड़ा हो जाता है। उस समय इस जीव का प्रत्येक प्रदेश आकाश के प्रत्येक प्रदेश पर एक-एक ही रहता है।

(18) शंका- समुद्घात किसे कहते हैं ? कितने प्रकार के होते हैं ? तथा केवली समुद्घात किसे कहते हैं और जीव केवली समुद्घात कब करता है ?

समाधान- **''वेयण कसाय वेगुव्वियो मारणांतियो समुग्घादो।**
तेजाहारो छट्ठो सत्तमओ केवलीणं तु॥ 666॥
मूल सरीरमछंडिय में उत्तर देहस्स जीव पिंडस्स।
णिग्गमणं देहादो हवदि समुग्घाद णामं तू॥667॥''

गो० जीव काण्ड गाथा

अर्थ- (1) वेदना समुद्घात (2) वैक्रियिक समुद्घात (3) मारणांतिक समुद्घात (4) तेजस समुद्घात (5) आहारक समुद्घात (6) कषाय समुद्घात (7) केवली समुद्घात।

मूल शरीर को छोडे बिना उत्तर शरीर (तैजस और कार्माण) के साथ आत्मा के प्रदेशों का शरीर से बाहर निकलने को समुद्घात कहते हैं।

उनमें से नेत्र वेदना, सिरवेदना आदि के द्वारा जीवों के प्रदेशों का उत्कृष्टत: शरीर से तिगुणे प्रमाण निकलने (विसर्पण) का नाम वेदना समुद्घात है। इसमें पूर्व कर्मों का विनाश होता है नये कर्मो का ग्रहण नहीं होता है।

तीव्र क्रोधादि कषाय के उदय से अन्य जीव का घात करने के लिए आत्म प्रदेशों का शरीर से तिगुणे प्रमाण प्रसर्पण (निकलने) का नाम कषाय समुद्घात है। कषाय समुद्घात के समय नये कर्मों का ग्रहण विशेष होता है। पुराने कर्मों का अल्पमात्रा में विनाश होता है।

वैक्रियिक शरीर के उदय वाले देव और नारकी जीवों का अपने स्वाभाविक आकार को छोड़कर अन्य आकार से रहने का नाम वैक्रियिक समुद्धात है।

अपने वर्तमान शरीर को नहीं छोड़कर ऋजुगति के द्वारा अथवा विग्रह गति द्वारा आगे जिसमें उत्पन्न होना है ऐसे क्षेत्र तक जाकर शरीर से तिगुणे विस्तार से अथवा अन्य प्रकार से अन्तर्मुहूर्त तक रहने का नाम मारणान्तिक समुद्धात है। इसमें पूर्व कर्मों का विनाश होता है नये कर्मों का ग्रहण नहीं होता। यहाँ कर्मों की उदीरणा होती है निर्जरा नहीं।

जिन्होंने परभव की आयु बाँध ली है, ऐसे जीवों के ही मारणान्तिक समुद्धात होता है। किन्तु वेदना समुद्धात और कषाय समुद्धात बद्धायुष्क और अबद्धायुष्क दोनों प्रकार के जीवों के होता है। मारणान्तिक समुद्धात निश्चय से आगे जहाँ उत्पन्न होना है ऐसे क्षेत्र की दिशा के अभिमुख होता है। किन्तु अन्य समुद्धातों के इस प्रकार एक दिशा में गमन करने का नियम नहीं है। क्योंकि उनका दशों दिशाओ में भी गमन पाया जाता है। मारणान्तिक समुद्धात की लम्बाई उत्कृष्टतः अपने **उत्पद्यमान** क्षेत्र के अन्त तक है। किन्तु इतर समुद्धातों का नियम नहीं है।

(19) **शंका**- जिन्होंने परभव की आयु बाँध ली है, क्या ऐसे सभी जीव मारणान्तिक समुद्धात करते हैं ?

समाधान- अपने अपने गुणस्थान सम्बन्धी जीव राशि के असंख्यातवें भाग प्रमाण राशि ही मारणान्तिक समुद्धात करती है। सभी नहीं।

(20) **शंका**- क्या मारणान्तिक समुद्धात वाले जीव, आगे जिसमे उत्पन्न होना है ऐसे क्षेत्र तक जाकर उनके आत्मप्रदेश वापिस आते हैं ?

समाधान- जीवों की गति दो प्रकार की होती है। (1) इलिका गति (2) कन्दुक गति। इलिका एक लटका नाम है। जब वह एक पत्ते से दूसरे पत्ते पर जाती है तब अपने अगले दो पैर अगले पत्ते पर रखती है और जब उसके दोनों पैर अगले पत्ते पर जम जाते हैं तब वह अपने पिछले पैर भी पिछले पत्ते से छोड़ देती है। उसी प्रकार मारणान्तिक समुद्धात में होता है। जिस जीव को आगे जिस क्षेत्र में जन्म लेना है उस क्षेत्र तक उसके कुछ आत्म प्रदेश जाकर उस स्थान को छूते हैं और फिर बाकी के भी उसके आत्म प्रदेश चले जाते हैं। इस प्रकार उसके आत्म

प्रदेश वापिस नहीं आते है। ऐसा जानना चाहिए। अन्य समुद्घातों में जैसे आत्म प्रदेश वापिस आते हैं ऐसा इसमें नहीं होता है। कन्दुक गति में मरणें के अन्तिम काल में आत्मा के सभी प्रदेश एक साथ (गेंद के समान) जाते हैं।

तैजस समुद्घात- अपने मन को अनिष्ट उत्पन्न करने वाला कोई अन्य कारण देखकर जिसको क्रोध उत्पन्न हुआ है ऐसे संयम के निधान रूप भाव लिंगी महामुनि को मूल शरीर छोडे बिना, सिदूर के पिंड के समान प्रकाशमान, बारह योजन लम्बा, सूची अगुल के संख्यातवें भाग जितना मूल विस्तार वाला और नव योजन चौडा, बिलाव (बिल्ली) के आकार का एक पुतला, बाये कन्धे में से निकलकर बाँयी प्रदक्षिणा देकर हृदय मे रही हुई विरुद्ध वस्तु को भष्मीभूत करके, उसी सयमी मुनि के साथ स्वयं भी भष्मीभूत हो जाते है। द्वीपायन मुनि के समान, यह अशुभ तैजस समद्घात है।

लोक को व्याधि दुष्काल आदि से पीडित देखकर जिसको दया उत्पन्न हुई है, ऐसे परम संयम के निधान महर्षि के मूल शरीर को छोड़े बिना पूर्व कथित देह प्रमाण वाला (12 योजन लम्बा और 9 योजन चौडा) शुभ आकृति वाला पुतला दाये कधे से निकलकर दार्यी ओर प्रदक्षिणा देकर व्याधि, दुष्काल आदि मिटाकर पुनः अपने मूल स्थान मे प्रवेश करता है। वह शुभतैजस समुद्घात है।

आहारक समुद्घात- पद और पदार्थ में जिसको कोई सशय उत्पन्न हुआ है ऐसे परम ऋद्धिवाले महर्षि के मूल शरीर को छोडे बिना, शुद्ध स्फटिक जैसी आकृतिवाला, एक हाथ का पुरुषाकार पुतला मस्तक के मध्य में से निकलकर अतर्मुहूर्त में जहाँ कहीं केवली या श्रुत केवली को देखता है वहाँ उनके दर्शन से, अपने आश्रयभूत मुनि को पद और पदार्थ का निश्चय उत्पन्न करके फिर अपने स्थान मे प्रवेश करता है उसे आहारक समुद्घात कहते हैं।

केवली समुद्घात- चौदहवें गुणस्थान के पूर्ण होने में जब अन्तर्मूहर्त काल बाकी रह जाता है, तब गोत्र, वेदनीय और नामकर्म की स्थिति आयुकर्म की स्थिति के समान करने के लिए केवली भगवान के आत्मप्रदेश शरीर से बाहर निकलते हैं। और पहले समय में दंडे के आकार होते हैं अर्थात् यदि पद्मासन से विराजमान हैं तो देह के तिगुणे विस्तार प्रमाण और यदि खड्गासन हो तो आत्मा के प्रदेशो को शरीर के विस्तार प्रमाण चोडे ऊपर नीचे की तरफ वातवलयों को

छोड़कर चौदह राजू तक विस्तृत करता है। दूसरे समय में कपाट समुद्घात में किवाड़ सरीखे होते हैं अर्थात् आत्मा के प्रदेश दंड के बराबर चौड़ाई लिए हुए ही यदि पूर्व को मुँह हो तो दक्षिण उत्तर को 7-7 राजू प्रमाण और यदि उत्तर को मुख हो तो पूर्व पश्चिम की तरफ बातवलय के सिवा ऊपर तो एक राजू ब्रह्म क्षेत्र में 5 राजू मध्य में एकराजू नीचे 7 राजू प्रमाण लोक पर्यन्त फैल जाते हैं। तीसरे समय में प्रतररूप होते हैं अर्थात् जो प्रदेश दूसरे समय में उत्तर दक्षिण की तरफ शरीराकार बने रहे थे वे उत्तर-दक्षिण की तरफ भी वातवलय के सिवा लोक पर्यन्त फैल जाते हैं। अथवा जो पूर्व पश्चिम की तरफ शरीराकार बने रहे थे वे पूर्व पश्चिम भी वातवलय के सिवा लोकपर्यन्त फैल जाते हैं और चौथे समय में लोकपूर्ण हो जाते हैं अर्थात् सम्पूर्ण लोक में व्याप्त हो जाते हैं। उस समय आत्मा लोक प्रमाण बडी हो जाती है और आत्मा का प्रत्येक प्रदेश आकाश के प्रत्येक प्रदेश पर एक एक आ जाता है।

(21)- शंका- क्या सभी केवली, केवली समुद्घात करते हैं ?

समाधान- यतिवृषभाचार्य के अनुसार क्षीण कषाय गुणस्थान के चरम समय में (बारहवें गुणस्थान) सम्पूर्ण अघातियाँ कर्मों की स्थिति समान नहीं होने से सभी केवली समुद्घात करके ही मुक्ति को प्राप्त होते हैं। परन्तु जिन आचार्यों के मतानुसार लोकपूरण समुद्घात करने वाले केवलियों की बीस संख्या का नियम है उनके मतानुसार कितने ही केवली समुद्घात करते हैं और कितने ही नहीं करते। जिनकी संसारव्यक्ति अर्थात् संसार में रहने का काल वेदनीय आदि तीन कर्मों की स्थिति के समान है वे समुद्घात नहीं करते हैं। शेष केवली समुद्घात करते हैं। जिनके नाम, गोत्र और वेदनीय कर्म की स्थिति आयु कर्म के समान होती है वे चूँकि केवली समुद्घात नहीं किया करते अत: वे अकृत समुद्घात 'जिन' कहे जाते हैं।

केवली समुद्घात के अलावा ससार अवस्था में तनु (शरीर) प्रमाण छोटी बड़ी अवगाहना होती है। उस समय उसके लोक प्रमाण प्रदेश संकुचित होकर अर्थात् सुकड़कर शरीर प्रमाण होते हैं। इसलिए संसार अवस्था में (केवली समुद्घात को छोड़कर) जीव के प्रदेश आकाश के प्रत्येक प्रदेश पर एक एक न

आकर असंख्यात-असख्यात आते हैं क्योंकि आत्मा ने जितनी जगह संसार अवस्था में रोक रखी है आत्मा उससे असंख्यात गुणी बड़ी है।

कहा भी है-

''निश्चय लोक प्रमाण है तनुप्रमाण व्यवहार।

एवो आत्म अनुभवो, शीघ्रलहो भवपार॥'' योगसार

अर्थ- निश्चय से देखा जाय तो प्रत्येक आत्मा लोक प्रमाण असंख्यात प्रदेशों वाली है। जब यह केवली समुद्घात करती है तब यह आत्मा लोक प्रमाण बडी हो जाती है। और व्यवहार से देखा जाय तो संसार अवस्था में कर्मोदय के निमित्त से जैसा शरीर (तनु) मिलता है उस प्रमाण आत्मा होती है। ऐसी लोक प्रमाण वाली आत्मा को अनुभव करके शीघ्र संसार से मुक्त हो जाओ।

सूत्र भी है-

असंख्येय भागादिषु जीवानाम्॥ 15॥ अ० 5 (तत्वार्थ सूत्र)

अर्थ- [असख्येय भागादिषु] लोक के असंख्यातवें भागादि में (जीवाना) जीवो का अवगाह है। अर्थात् लोक के असख्यात भाग करने पर जो एक असख्यातवॉ भाग होता है कम से कम उस एक असख्यातवें भाग एक जीव रहता है। क्योंकि सबसे जघन्य अवगाहना सूक्ष्म निगोदिया लब्ध्यपर्याप्तक जीव की होती है जोकि घनागुल के असख्यातवें भाग प्रमाण है जिसमें भी आकाश के असंख्यात प्रदेश आते हैं और यदि जीव की अवगाहना ससार अवस्था में बडी से बडी होती है तो वह महामच्छ की (1000 योजन लम्बा 500 योजन चौडा 250 योजन मोटा 1000 × 500 × 250 = 1250, 00000) साढे बारह करोड घनयोजन प्रमाण सख्यात घनागुल प्रमाण, घनांगुल के असख्यातवें भाग जघन्य अवगाहना से असंख्यात गुणी बडी होती है। जो भी लोकाकाश के असख्यात भाग में ही होती है। महामच्छ की उत्कृष्ट अवगाहना (संख्यात घनागुल) से लोक असंख्यात गुणा बडा है। इसलिए ससार अवस्था में प्रत्येक जीव के प्रदेश आकाश के प्रत्येक प्रदेश पर असंख्यात रहते हैं क्योंकि आत्मा ने जितनी जगह रोक रखी है आत्मा उससे असंख्यात गुणी बडी है।

(22)- शंका- एक जीव को लोकाकाश के बराबर प्रदेशवाला बतलाया है। ऐसा जीव लोकाकाश के असंख्यातवें भाग में कैसे रह सकता है ? उसे तो समस्त लोक में व्याप्त होकर ही रहना चाहिए तथा जीवों की अवगाहना में इतना अन्तर क्यों पड़ता है ?

समाधान- सूत्र भी है-

प्रदेश संहार बिसर्पाभ्याम् प्रदीपवत् ॥ 16 ॥ 5 अध्याय (तत्वार्थ सूत्र)

अर्थ- एक जीव के प्रदेश लोकाकाश के बराबर हैं तो भी वे (प्रदीपवत्) दीपक की रोशनी के समान (प्रदेश संहार विसर्पाम्यां) प्रदेशों में संकोचता विस्तारता के होने से जैसा आधार-शरीर मिलता है, वैसे ही संकोच विस्ताररूप प्रदेश वाले हो जाते हैं। अर्थात् प्रत्येक संसारी जीव के कर्म लगे हुए हैं। जिनके कारण उसे जब जैसा शरीर मिलता है तब उसकी वैसी अनगाहना हो जाती है। क्योंकि जीव का स्वभाव ही ऐसा है कि निमित्तानुसार वह प्रदीप की तरह संकोच और विस्तार को प्राप्त होता है। जैसे दीपक को यदि खुले मैदान में रख दिया जावे तो उसका प्रकाश बहुत दूर तक फैल जाता है। और यदि किसी छोटे बड़े घड़े में रख दिया जावे तो उसका प्रकाश उस घड़े तक ही सीमित रहता है। वैसे ही जीव द्रव्य के प्रदेशो में भी सकुडने और फैलने की क्षमता है। उसे जब जैसा छोटा बडा शरीर मिलता है उसके अनुसार उसकी अवगाहना हो जाती है।

(23) शंका- यदि आत्मा के प्रदेशों मे सकोच विस्तार होता है तो वे सुकडते सुकड़ते इतने छोटे क्यों नहीं हो जाते कि आकाश के एक प्रदेश में एक जीव रह सके ?

समाधान- आत्मा के प्रदेशों का सकोच या विस्तार शरीर अनुसार होता है और सबसे छोटा शरीर सूक्ष्म निगोदिया लब्ध्यपर्याप्तक जीव के होता है। जिसकी अवगाहना भी घनांगुल के असंख्यातवे भाग है। जीव की अवगाहना इससे कम नहीं होती, कम से कम इतनी तो रहती है और वह लोक के असंख्यातवें भाग प्रमाण है और लोक उससे असंख्यात गुणा बडा है इसलिए आकाश के एक प्रदेश पर आत्मा के सभी प्रदेश नहीं आते हैं। कम से कम असंख्यात प्रदेश तो रोकते ही हैं।

जैसा कि वृहद् द्रव्यसंग्रह मे भी कहा है-

''अणुगुरु देह पमाणो उवसंहारप्प सप्पदो चेता।
असमुहदो व्यवहारा णिच्छय णयदो असंख्य दे सो वा''॥ 10॥

अर्थ- समुद्घात के अतिरिक्त, यह जीव व्यवहार नय की अपेक्षा से सकोच-विस्तार के कारण अपने छोटे-अथवा बडे शरीर प्रमाण रहता है और निश्चय नय की अपेक्षा से असंख्यात (लोक प्रमाण) प्रदेशी है।

जैन दर्शन मे आत्मा की व्यापकता और अणु परिमाणता दोनों का निषेध करके उसे मध्यम् परिमाण वाला बतलाया है जो युक्तिसंगत भी है। जो इसके विपरीत मानते हैं उनमे अनेको दोष उत्पन्न होते हैं।

(24) शंका- आत्मा के सम्बन्ध में जैनदर्शन की मान्यता ही ठीक है। इतर दर्शनो की नहीं। सो इसमें क्या दोष उत्पन्न होते है ?

समाधान- आत्मा सर्वव्यापी नहीं बल्कि शरीर प्रमाण होता है। छोटे शरीर मे छोटा और बडे शरीर में बडा हो जाता है। छोटी वय के बालक में आत्मा छोटा होता है और उत्तरोतर ज्यों-ज्यों बढता है त्यों त्यों आत्मा का भी विस्तार होता जाता है। आत्मा के सकोच विस्तार का गुण प्रकाश के समान है। यह सिद्धान्त अनुभव सिद्ध भी है कि शरीर मे जहाँ कही भी चोट लगती है तो सर्वत्र दु:ख का अनुभव होता है। शरीर से बाहर किसी भी चीज को तोड़ने मे तो कोई दु:ख नहीं। शरीर से बाहर आत्मा हो तभी तो दु:ख हो न ? वेदान्त के अनुसार आत्मा सर्वव्यापी है। यदि ऐसा हो तो मोहनलाल, छगनलाल, रतनलाल आदि सभी व्यक्तियो को एक समान ही सुख दु:ख होना चाहिए क्योकि जब आत्मा एक ही है और सर्व व्यापी है फिर प्रत्येक व्यक्ति अलग-अलग दु:ख का अनुभव क्यों करे ? कोई धर्मात्मा कोई पापी क्यो ? दूसरा दोष यह भी है कि सर्वव्यापी मानने से परलोक भी घटित नहीं होता। क्योंकि जब आत्मा आकाश के समान सर्वव्यापी है फलत: आता जाता ही नहीं तब फिर नरक, स्वर्ग आदि विभिन्न स्थानो में जाकर पुनर्जन्म कैसे लेगा तथा सर्वव्यापी को कोई कर्म बन्धन भी नहीं हो सकता। क्या कभी सर्वव्यापी आकाश भी किसी बन्धन मे आता है और जब बन्धन ही नहीं तो फिर मोक्ष कहाँ ? द्वितीय बिन्दु से सम्बन्धित प्राथमिक जानकारी कराकर अब मुख्य विषय पर आते हैं।

अब दूसरे बिन्दु का वर्णन करते हैं- प्रत्येक जीव के घनलोक मात्र (343 घन राजू प्रमाण लोक) आत्मा के प्रदेशों में से प्रत्येक प्रदेश पर जघन्यपनें अभव्य जीवों से अनन्त गुणे और उत्कृष्टपनें सिद्धों के (अक्षय अनंत) अनंतवें भागमात्र औदारिक शरीर की वर्णणाएँ हैं उनका भी वही क्षेत्र (सूई का अग्रभाग) अवगाहना को प्राप्त होता है और प्रत्येक वर्गणा में जघन्यपनें अभव्य जीवों (जघन्ययुक्तानन्त) से अनन्तगुणें और उत्कृष्टपनें सिद्धों के अनन्तवें भाग मात्र वर्ग (नोकर्म परमाणु) पाए जाते हैं। इस प्रकार प्रत्येक जीव के लोकाकाश प्रमाण प्रत्येक प्रदेश पर अनन्त वर्गणाएं हैं और प्रत्येक वर्गणा में अनन्त वर्ग हैं। अतः आत्मा के लोकप्रमाण असंख्यात प्रदेशों में प्रत्येक प्रदेश पर वर्गणाओं से भी अनन्तगुणे नो कर्म परमाणु हैं। अर्थात् प्रत्येक प्रदेश पर अनन्तानन्त औदारिक शरीर के नोकर्म परमाणु हैं और जब आत्मा के प्रत्येक प्रदेश पर अनन्तानन्त नोकर्म परमाणु हैं तो लोक प्रमाण असंख्यात प्रदेशी एक आत्मा के साथ असंख्यात गुणे अनन्तानन्त औदारिक शरीर के नोकर्म परमाणु हुए। अर्थात् (अनन्तानन्त × लोकप्रमाण असंख्यात) इतने हुए और जब एक आत्मा के साथ (अनन्तानन्त × असख्यात) इतने नोकर्म औदारिक शरीर के पाए जाते हैं तो एक निगोद शरीर में पाए जाने वाले अक्षय अनन्तानन्त जीवों के साथ पूर्वकथित राशि से अक्षय अनन्तगुणें (अनन्तानन्त × असख्यात × अक्षयअनन्त) औदारिक शरीर के नोकर्म परमाणु पाए जाते हैं। जब एक एक निगोद शरीर में इतने औदारिक शरीर के नोकर्म परमाणु पाए जाते हैं तो सूई के अग्रभाग आकाश क्षेत्र में पाए जाने वाले कुल जीवो के साथ पूर्व कथित राशि से असंख्यात लोक प्रमाण गुणे (अनंतानंत × असंख्यात × अक्षय अनंत × असंख्यात लोक प्रमाण) औदारिक शरीर के नो कर्म परमाणु अक्षयानन्त पाए जाते हैं। क्योंकि सूई के अग्रभाग आकाश क्षेत्र मे असंख्यात लोक प्रमाण सूक्ष्म निगोद शरीर हैं और जब सूई के अग्रभाग आकाश क्षेत्र में इतने औदारिक शरीर के नोकर्म परमाणु पाए जाते हैं तो सम्पूर्ण लोक में पाए जाने वाले कुल सूक्ष्म निगोदिया जीवों के साथ पूर्वकथित राशि से लोकप्रमाण असख्यात गुणे (अनंतानन्त × असंख्यात × अक्षय अनंत × असख्यात लोक प्रमाण × असख्यात) औदारिक शरीर के नोकर्म परमाणु पाए

जाते हैं। जो सामान्यपनें अक्षय अनन्तानंत प्रमाण हैं विशेषपनें उससे भी अक्षय अनन्तगुणे पाए जाते हैं। क्योंकि अनंतानंत तो आत्मा के एक प्रदेश पर ही पाए जाते हैं।

अभव्य राशि के अनंत गुणी राशि से सिद्धों का अनंतवां भाग भी अनंतगुणा ज्यादा है कारण कि अभव्य राशि जघन्य युक्तानंत प्रमाण (सक्षय अनंत) हैं। जोकि सक्षय अनंत का भी अनन्तवाँ भाग जघन्य अनन्त का भी अनंतवाँ भाग है। जबकि सिद्धराशि का अनन्तवाँ भाग भी अक्षय अनन्त प्रमाण आता है अतः अभव्य के अनतगुणें से सिद्धों का अनन्तवाँ भाग अनंतगुणा है। क्योंकि अभव्य राशि का अनन्तगुणा भी सक्षय अनन्त ही आता है।

अभ्यास-माला

(1) प्रत्येक आत्मा निश्चय से और व्यवहार से कितनी बडी है ?

(2) समुद्‌घात किसे कहते हैं ?

(3) समुद्‌घात कितने प्रकार के होते हैं ?

(4) मारणोंन्तिक समुद्‌घात का स्वरूप क्या है ?

(5) इलिका गति से क्या आशय है ?

(6) क्या सभी जीव मारणान्तिक समुद्‌घात करते हैं ?

(7) तैजस समुद्‌घात का क्या स्वरूप है ?

(8) आहारक समुद्‌घात किसे कहते हैं ? वह किन कारणों से किया जाता है ?

(9) केवली समुद्‌घात का स्वरूप क्या है ?

(10) केवली समुद्‌घात जीव क्यों करता है ?

(11) क्या सभी केवली, केवली समुद्‌घात करते है ?

(12) "असंख्येय भागदिषु जीवानाम्" सूत्र का अर्थ स्पष्ट कीजिए।

(13) "प्रदेश संहार विसर्पाभ्यां प्रदीपवत्" सूत्र का अर्थ बताइए ?

(14) आत्मा के सम्बन्ध मे जैनदर्शन की मान्यता ही क्यों ठीक है ?

(15) अन्यदर्शनों में आत्मा को सर्वव्यापी जो जाना है उसमें क्या क्या दोष आते हैं ?

(16) आत्मा के प्रत्येक प्रदेश पर औदारिक शरीर के कितने वर्ग और वर्गणायें हैं ?

(17) प्रत्येक वर्गणामें कितने वर्ग हैं ?

(18) आत्मा के प्रत्येक प्रदेश पर औदारिक शरीर की वर्गणायें एवं वर्ग कितनी पाई जाती हैं ?

(19) एक निगोद शरीर में पाए जाने वाले कुल जीवों के कितनी औदारिक शरीर की वर्ग एवं वर्गणायें पायी जाती हैं।

(20) सूई के अग्रभाग आकाश क्षेत्र में पाए जाने वाले जीवों के साथ कितनी औदारिक शरीर की वर्गणायें एवं वर्ग पाए जाते हैं।

(21) एक लोक में पाए जाने वाले कुल सूक्ष्म निगोदिया जीवों के साथ कुल कितनी और औदारिक शरीर की वर्गणायें एवं वर्ग हैं ?

(22) अभव्यराशि के अनन्त गुणे से सिद्धों का अनन्तवाँ भाग कितना ज्यादा है। कारण सहित बताइये।

छठा अध्याय

[अब केवल ज्ञान की सूक्ष्मता के नो बिन्दुओं में से तीसरे बिन्दु का वर्णन करते हैं-]

जिस प्रकार प्रत्येक ससारी आत्मा के प्रत्येक प्रदेश पर जघन्यपनें अभव्यों से अनन्त गुणे और उत्कृष्टपने सिद्धों के अनन्तवें भाग औदारिक शरीर की वर्गणायें पायी जाती हैं और प्रत्येक वर्गणामें जघन्यपने अभव्यों से अनन्तगुणें और उत्कृष्टपने सिद्धों के अनन्तवे भाग औदारिक शरीर के वर्ग (परमाणु) पाये जाते हैं। उसी प्रकार प्रत्येक आत्मा के प्रत्येक प्रदेश पर औदारिक शरीर से अनन्तगुणे तैजस शरीर की वर्गणाओ की भी उसी क्षेत्र में अवगाहना होती हैं तथा प्रत्येक वर्गणा मे अभव्यों से अनन्तगुणें और उत्कृष्टपनें सिद्धो के अनन्तवें भाग तैजस शरीर के वर्ग (परमाणु) पाये जाते हैं।

और जब प्रत्येक आत्मा के प्रत्येक प्रदेश पर औदारिक शरीर से अनन्तगुणी वर्गणायें और उनसे भी अनन्तगुणे तैजस शरीर के वर्ग पाये जाते हैं तो प्रत्येक आत्मा के पूरे घनलोक मात्र असख्यात प्रदेशों पर पूर्व कथित राशि से असख्यात गुणे तैजस शरीर की वर्गणाये एव वर्ग पाये जाते हैं। और जब एक जीव के घनलोक मात्र आत्म प्रदेशों पर (अनन्त औदारिक शरीर की वर्गणायें × अनन्त औदारिक शरीर के वर्ग × तैजस शरीर की अनन्त वर्गणायें × अनन्त तैजस शरीर के वर्ग × असख्यात) इतने तैजस शरीर की वर्गणाये एव वर्ग पाये जाते है तो एक निगोद शरीर में पाये जाने वाले अक्षय अनन्त जीवो के साथ पूर्व कथित राशि से अक्षय अनन्त गुणे तैजस शरीर की वर्गणा और वर्ग पाये जाते हैं। और जब एक निगोद शरीर मे पाये जाने वाले जीवों के साथ इतनी तैजस शरीर की वर्गणायें और वर्ग पाये जाते हैं तो सूई के अग्रभाग आकाश क्षेत्र में पाये जाने वाले कुल जीवो के साथ पूर्व कथित राशि से असंख्यात लोक गुणे तैजस शरीर की वर्गणायें एवं वर्ग पाये जाते हैं। और जब सूई के अग्रभाग आकाश क्षेत्र में पाये जाने वाले कुल सूक्ष्म निगोदिया जीवो के साथ इतनी तैजस शरीर की वर्गणायें एवं वर्ग पाये जाते हैं तो पूरे लोक में पूर्व कथित राशि से असंख्यात गुणे तैजस शरीर की वर्गणायें एवं वर्ग पाये जाते हैं।

(4) अब केवल ज्ञान की सूक्ष्मता के नो बिन्दुओं में से चतुर्थ बिन्दु का वर्णन करते हैं।

जिस प्रकार प्रत्येक आत्मा के प्रत्यके प्रदेश पर औदारिक शरीर से अनन्त गुणे तैजस शरीर की वर्गणायें और वर्ग पाये जाते हैं उसी प्रकार प्रत्येक प्रदेश पर तैजस शरीर से अनन्तगुणे कार्माण शरीर की वर्गणायें और वर्ग पाये जाते हैं और जब आत्मा के एक प्रदेश पर इतने कार्माण शरीर की वर्गणायें और वर्ग पाये जाते हैं तो एक आत्मा के लोक प्रमाण प्रदेशों पर पूर्व कथित राशि से असंख्यात गुणे कार्माण शरीर के वर्गणायें एवं वर्ग पाये जाते हैं और एक आत्मा के साथ इतने कार्माण शरीर की वर्गणायें एवं वर्ग पाये जाते हैं तो एक निगोद शरीर में पाये जाने वाले जीवो के साथ पूर्व कथित राशि से अक्षय अनन्त गुणे कार्माण शरीर की वर्गणाये एवं वर्ग पाये जाते हैं और जब एक निगोद शरीर में पाये जाने वाले जीवों के साथ इतने कार्माण शरीर की वर्गणायें और वर्ग पाये जाते हैं तब सूई के अग्रभाग आकाश क्षेत्र में कुल जीवों के साथ पूर्व कथित राशि से असंख्यात लोक गुणे कार्माण शरीर की वर्गणायें एवं वर्ग पाये जाते हैं और जब सूई के अग्रभाग आकाश क्षेत्र में इतने कार्माण शरीर की वर्गणायें एवं वर्ग पाये जाते हैं तब पूरे लोक मे सूक्ष्म निगोदिया जीवों के साथ पूर्व कथित राशि से लोक प्रमाण असंख्यात गुणे कार्माण शरीरी की वर्गणायें एवं वर्ग पाये जाते हैं।

(25) शंका- सूई के अग्रभाग आकाश क्षेत्र में औदारिक, तैजस शरीर और कार्माण शरीर की वर्गणायें एवं वर्ग बताये सो कुल शरीर कितने होते हैं ? और एक जीव के साथ कितने शरीर पाये जाते हैं ? एवं उनका स्वरूप क्या है ? इस सम्बन्ध में आगम प्रमाण सहित वर्णन कीजिए।

समाधान- "औदारिक - वैक्रियिकाहारक-तैजस-कार्मणानि शरीराणि॥" 36 ॥ तत्वार्थ सूत्र अ० 2

अर्थ- (शरीराणि) शरीर (औदारिक वैकियिकाहारक-तैजस-कार्मणानि) औदारिक, वैक्रियिक, आहारक, तैजस और कार्माण इस तरह पाँच प्रकार के होते हैं। स्थूल शरीर को औदारिक शरीर कहते हैं। उदार का अर्थ महान या बड़ा है। प्रकृत में इसका अर्थ स्थूल है। जो सब शरीरों में स्थूल है वह औदारिक शरीर है।

जो शरीर, कभी छोटा, कभी बड़ा, कभी एक, कभी अनेक, कभी हलका और कभी भारी आदि अनेक रूप हो सके वह वैक्रियिक शरीर है अर्थात् जिसमें अनेक प्रकार के स्थूल, सूक्ष्म, हलका, भारी इत्यादि करने की योग्यता हो उसे वैक्रियिक शरीर कहते हैं।

छठे गुणस्थानवर्ती मुनि के द्वारा सूक्ष्म पदार्थ को जानने के लिए अथवा सयम की रक्षा के लिए, अन्य क्षेत्र में वर्तमान केवली या श्रुतकेवली के पास भेजने को अथवा अन्य क्षेत्र के जिनालयों की वन्दना करने और वैराग्य आदि कल्याणको के उद्देश्य से जो शरीर जाता है उसे आहारक शरीर कहते हैं।

तेजोमय शुक्ल प्रभावाला तैजस शरीर है। इसके दो भेद हैं। नहीं निकलने वाला तैजस शरीर दूसरा निकलने वाला तैजस शरीर। नहीं निकलने वाला तैजस शरीर औदारिक, वैक्रियिक और आहारक शरीर के भीतर स्थित रहता है जिससे शरीर कान्तिमान रहता है तथा निकलने वाला तैजस शरीर उग्र चरित्र वाले मुनि के क्रोध होने पर होता है। यह शरीर से बाहर निकलकर बारह योजन तक के पदार्थो को भस्म कर देता है या दया के होने पर इतने ही क्षेत्र के भीतर के प्राणियों का अनुग्रह करने वाला होता है।

ज्ञानावरण आदि आठो कर्मों के समूह को कार्मण शरीर कहते हैं। सब कर्मो के समूह को कार्माण शरीर सज्ञा कार्मण शरीर नामकर्म के उदय से प्राप्त होती है।

जैसे औदारिक शरीर दिखायी देता है वैसे वैक्रियिक आदि शरीर क्यों नहीं दिखायी देते है ? इसका उत्तर देते हैं।

''परं परं सूक्ष्मम्॥'' 37॥ तत्वार्थ सूत्र-अध्याय २

अर्थ- (पर पर) औदारिक से अगले अगले शरीर (सूक्ष्मम्) सूक्ष्म हैं। अर्थात् औदारिक से वैक्रियिक सूक्ष्म है, वैक्रियिक से आहारक सूक्ष्म है। आहारक से तैजस और तैजस से कार्माण शरीर सूक्ष्म है।

भावार्थ- उक्त पाँचो शरीरों में औदारिक शरीर सबसे अधिक स्थूल है। यद्यपि सूक्ष्म एकेन्द्रियों का शरीर सूक्ष्म कहलाता है परन्तु इसमें सूक्ष्मता, सूक्ष्म नामकर्म के उदय से आती है। वैसे तो यह भी वैक्रियिक शरीर से स्थूल ही है। वैक्रियिक शरीर इससे सूक्ष्म है, आहारक शरीर वैक्रियिक शरीर से सूक्ष्म है।

इसी प्रकार तैजस शरीर आहारक से और कार्माण शरीर तैजस से सूक्ष्म है। शरीरों में यह जो उत्तरोत्तर सूक्ष्मता बतलाई है वह इन्द्रिय अग्राहत्व या अप्रतिघातपने की अपेक्षा से जानना चाहिए। परिमाण की अपेक्षा नहीं, क्योंकि परिमाण की अपेक्षा पाँचों शरीर उत्तरोत्तर अधिक हैं। यद्यपि ये पाँचों उत्तरोत्तर सूक्ष्म हैं तथापि उनके बनने में पुद्गल परमाणु उत्तरोत्तर अधिक हैं पर यह कितना अधिक होता है इसी बात को दो सूत्रों में बतलाया है-

"प्रदेशतोऽसंख्येयगुणं प्राक् तैजसात् "॥ 38॥

अर्थ- यहाँ प्रदेश का अर्थ परमाणु है। आकाश का क्षेत्र नहीं। (प्रदेशत:) प्रदेशों (परमाणुओं) की अपेक्षा (तैजसात् प्राक्) तैजस शरीर से पहले पहले के शरीर (असख्य गुणं) असंख्यात गुणे हैं अर्थात् औदारिक शरीर में जितने परमाणु हैं उनसे असंख्यात गुणे परमाणु वैक्रियिक शरीर में हैं और वैक्रियिक शरीर से असंख्यात गुणे परमाणु (प्रदेश) आहारक शरीर में हैं।

(26) शंका- यदि आगे आगे के शरीर में असंख्यात गुणे असंख्यात गुणे परमाणु होते हैं तो आगे आगे के शरीर तो औदारिक से भी स्थूल होने चाहिए। फिर आगे के शरीर सूक्ष्म होते हैं, ऐसा क्यों कहा ?

समाधान- असंख्यात गुणे असंख्यात गुणे, परमाणुओं से बने होने पर भी आगे के शरीर स्थूल नहीं हैं। बल्कि बन्धन के ठोस होने से उत्तरोत्तर सूक्ष्म हैं जैसे रूई का ढेर और लोहे का पिण्ड।

अब तैजस शरीर और कार्माण शरीर के प्रदेश (परमाणु) बतलाते हैं-

'अनन्तगुणे परे'॥ 39॥

अर्थ [परे] शेष के दो शरीर अर्थात् तैजस और कार्माण शरीर (अनंतगुणे) अनंत गुणे परमाणु वाले हैं। अर्थात् आहारक शरीर से अनंतगुणे परमाणु तैजस शरीर के हैं और तैजस शरीर से अनंतगुणे परमाणु कार्माण शरीर के हैं।

यहाँ कोई शंका करें कि यदि तैजस शरीर और कार्माण शरीर में इतने परमाणु होते हैं तो इन दोनों शरीरों के साथ होने से संसारी जीव अपने इच्छित स्थान को गमन नहीं कर सकेगा ?

इसी आशंका को दूर करने के लिए अगला सूत्र कहते हैं-

'अप्रतिघाते' ॥ 40॥

अर्थ- और ये दोनों तैजस और कार्माण शरीर अप्रतिघाती हैं अर्थात् अन्य मूर्तिमान पुद्गलादिकों से रुकते नहीं हैं। जैसे अग्नि के परमाणु सूक्ष्म रूप परिणमन होने के कारण लोहे के पिड में प्रवेश कर जाते हैं, उसी प्रकार तैजस और कार्माण शरीर भी वज्रमय पटलो से रुकते नहीं हैं और न किसी अन्य पदार्थ को रोक सकते हैं।

(27) शंका- वैक्रियिक और आहारक शरीर भी सूक्ष्म होने के कारण किसी से रुकते नहीं है फिर इनको अप्रतिघाती क्यों नहीं कहा ?

समाधान- यहाँ उन्हीं को अप्रतिघाती कहा है जो समस्त लोक में कहीं भी नहीं रुकते। वैक्रियिक और आहारक शरीर समस्त लोक में अप्रतिघाती नहीं है। क्योंकि आहारक शरीर तो ढाई द्वीप तक ही जा सकते हैं और मनुष्यों को ऋद्धि द्वारा प्राप्त हुआ वैक्रियिक शरीर भी मनुष्य लोक (ढ़ाईद्वीप) तक ही जा सकता है। तथा देवों का वैक्रियिक शरीर त्रस नाली के भीतर ही ऊपर ऊपर सोलहवे स्वर्ग तक और नीचे तीसरी नरक पृथ्वी तक ही जाते हैं। अतः समस्त लोक मे अप्रतिघाती तो तैजस और कार्माण शरीर ही हैं।

(28) शंका- वैक्रियिक और आहारक शरीर के रहते हुए बादर नाम कर्म का उदय अवश्य होता है फिर उन्हें अप्रतिघात क्यों कहा ?

समाधान- बादर और सूक्ष्म का अर्थ है जो आधार से रहे वे बादर और जो बिना आधार के रहे वे सूक्ष्म। यह दूसरी बात है कि सूक्ष्म प्रतिघात से रहित ही होते है किन्तु इससे यह नतीजा नहीं निकालना चाहिए कि जो दूसरो को रोके या दूसरो से रुके वे बादर। बादर दोनो प्रकार के होते है कुछ प्रतिघात से रहित और कुछ सप्रतिघात युक्त वैक्रियिक और आहारक शरीर ऐसे हैं जो जहाँ तक उनके जाने की क्षमता है वहाँ तक प्रतिघात से रहित हैं, इसलिए विवक्षित स्थान में इन्हें भी अप्रतिघात कहा है।

अब इन दोनो शरीरो के विषय में और भी विशेष कहते हैं-

'अनादि सम्बन्धें च' ॥ 41 ॥

अर्थ- ये दोनो शरीर आत्मा के साथ (अनादि संबंधे) अनादिकाल से सबध रखने वाले हैं। अर्थात् संसारी जीवों के ये दोनों शरीर नित्य ही साथ रहते हैं (च) यदि सन्तान की अविवक्षा हो तो सादि सम्बन्ध वाले भी हैं।

भावार्थ- 'च' शब्द विकल्पार्थक है। अतः आत्मा से तैजस और कार्माण का सम्बन्ध अनादि भी है और सादि भी है। कार्य कारण रूप बन्ध की परम्परा की अपेक्षा तो अनादि सम्बन्ध है अर्थात् जैसे औदारिक, वैक्रियिक और आहारक शरीर का सम्बन्ध अनित्य है, कभी कोई शरीर होता है और कभी नहीं होता क्योंकि आहारक शरीर तो प्रमत्तसयंत मुनि के ही सम्भव है सो भी अन्तर्मूहर्त के बाद नष्ट हो जाता है। इसलिए यह तो अनादि हो ही नहीं सकता। अब रहे दो शरीर सो वे भी कदाचित् हैं। तिर्यंच और मनुष्य पर्याय में औदारिक शरीर होता है। देव तथा नारक पर्याय में वैक्रियिक। इसलिए ये भी अनादि नहीं हो सकते। ऐसी बात तैजस और कार्माण में नहीं हैं। क्योंकि ये शरीर एक पर्याय के बाद दूसरी पर्याय में वे ही चले जाते हैं इसलिए इन्हें अनादि कहा है। तथा पहले बंधे तैजस और कार्माण शरीर की प्रतिसमय निर्जरा होती रहती है और नवीन का बन्ध होता रहता है। इस अपेक्षा से सादि भी है।

(29) शंका- जो लोग शरीर का आत्मा के साथ सम्बन्ध सर्वथा सादि या सर्वथा अनादि ही मानते हैं उनके मत में क्या क्या दोष आते हैं ?

समाधान- यदि आत्मा से शरीर का सम्बन्ध सादि ही माना जाये तो शरीर का सम्बन्ध होने से पहले आत्मा शुद्ध ठहरी। ऐसी अवस्था में सर्वथा शुद्ध आत्मा के साथ शरीर का सम्बन्ध बिना निमित्त के कैसे हो सकता है? यदि शुद्ध आत्मा के भी बिना निमित्त के शरीर का सम्बन्ध हो सकता है तो मुक्त जीवों के भी फिर से शरीर का सम्बन्ध होने का प्रसंग आ जायेगा। तब तो मुक्तात्मा का ही अभाव हो जायेगा। और यदि आत्मा और शरीर का सम्बन्ध एकान्त से अनादि ही माना जायेगा तो जो सर्वथा अनादि होता है उसका अन्त नहीं होता। अतः जीव की कभी मुक्ति ही नहीं होगी। इसलिए शरीर का सम्बन्ध कदाचित् सादि और कदाचित् अनादि ही मानना उचित है।

(30) शंका- नित्य निगोदिया के औदारिक शरीर को अनादि सम्बन्ध वाला क्यों नहीं माना जाता है ?

समाधान- विग्रह गति में औदारिक शरीर का सम्बन्ध नहीं रहता इसलिए नित्य निगोदिया ज़ीव के औदारिक शरीर को अनादि सम्बन्ध वाला नहीं माना जा सकता।

ये दोनो शरीर किसी जीव के होते हैं अथवा सब जीवों के होते हैं ? इस प्रश्न का समाधान करने के लिए आगे का सूत्र कहते हैं-

'सर्वस्य' ॥ 42 ॥

अर्थ- ये दोनों शरीर सभी संसारी जीवो के होते हैं। किन्तु शेष तीन शरीर सब ससारी जीवो के न पाये जाकर कुछ ही जीवो के पाये जाते हैं।

आगे बतलाते हैं कि इन पाँच शरीरों में से एक जीव के एक साथ कितने शरीर हो सकते हैं-

'तदादीनि भाज्यानि युगपदेकस्मिन्ना चतुर्भ्यः' ॥ 43 ॥

अर्थ- (तदादीनि) इन दोनों शरीरों को आदि लेकर (भाज्यानि) विभाजित किए हुए (एकस्य) एक जीव के (युगपत्) एक साथ (आ चतुर्भ्यः) चार शरीर तक हो सकते हैं।

भावार्थ- एक जीव के एक साथ कम से कम दो और अधिक से अधिक चार शरीर होते हैं। पाँच कभी नहीं होते। विग्रह गति में तैजस और कार्माण ये दो शरीर होते हैं। एक कभी नहीं होता, क्योंकि जब तक ससार है तब तक कम से कम उक्त दो शरीरो का सम्बन्ध अवश्य है। शरीर ग्रहण करने पर तैजस, कार्माण और औदारिक अथवा तैजस, कार्माण और वैक्रियिक ये तीन शरीर होते हैं पहला प्रकार मनुष्य और तिर्यचो के होता है तथा दूसरा प्रकार देव और नारकियो के होता है। तथा प्रमत्त सयत मुनि के आहारक ऋद्धि के प्रयोग के समय तैजस, कार्माण, औदारिक और आहारक ये चार शरीर होते हैं।

(31) शंका- पाँच शरीर एक साथ एक जीव के क्यो नहीं होते ?

समाधान- वैक्रियिक और **आहरक** शरीर एक साथ नहीं पाये जाते है इसलिए एक जीव के साथ पाँच शरीर नहीं बतलाये।

(32) शंका- इस उत्तर से तो यह ज्ञात होता है कि वैक्रियिक शरीर का औदारिक शरीर के साथ होने में कोई विरोध नहीं। यदि ऐसा है तो फिर तैजस, कार्माण औदारिक और वैक्रियिक यह विकल्प (भेद) और बतलाना चाहिए था।

समाधान- वैकियिक शरीर दो प्रकार का है एक तो जो देव और नारकियों के वैकियिक शरीर नामकर्म के उदय से होता है और दूसरा वह जो औदारिक शरीर में विक्रिया विशेष के प्राप्त होने से होता है। किन्तु यह दूसरे प्रकार का

वैक्रियिक शरीर औदरिक शरीर से भिन्न नहीं होता। यही कारण है कि प्रकृत मे तैजस कार्माण, औदारिक और वैक्रियिक यह भेद नहीं बतलाया।

आगे शरीरों के सम्बन्ध में विशेष कथन करते हैं-

निरुपभोगमन्त्यम् ॥ 44 ॥

अर्थ- (अंत्यम्) अंत का कार्माण शरीर (निरुप भोगम्) उपभोग रहित है।

इन्द्रियों के द्वारा शब्द वगैरह के ग्रहण करने को उपभोग कहते हैं। उठना, बैठना, खाना, पीना, दान देना यह सब इसी में सम्मिलित हैं। यह कार्य औदारिक, वैकियिक और आहारक शरीर इनमें से किसी एक के रहते हुए बन सकता है केवल कार्माण और तैजस शरीर के रहते हुए नहीं। क्योंकि यद्यपि विग्रह गति में दोनों शरीर रहते हैं और भावेन्द्रियाँ भी, फिर भी वहां इन्द्रियों से विषयों का ग्रहण नहीं होता इसलिए कार्माण शरीर को निरुपभोग कहा है। इससे यह अर्थ अपने आप निकल जाता है कि शेष तीन शरीर सोपभोग हैं।

(33) शंका- पूर्वोक्त कथन से यह ज्ञात होता है कि तैजस शरीर भी निरुपभोग है फिर यहाँ उसको ग्रहण क्यों नहीं किया ?

समाधान- तैजस शरीर तो योग में भी निमित्त नहीं हैं अर्थात् जैसे अन्य शरीरों के निमित्त से आत्मा के प्रदेशों में कम्पन होता है, तैजस के निमित्त से तो वह भी नहीं होता। अतः वह तो **निरुपभोग** ही है। इसलिए यहाँ उसका कथन नहीं किया; क्योंकि निरुपभोग और सोपभोग का विचार करते समय उन्हीं शरीरों का अधिकार है जो भोग में निमित्त होते हैं। ऐसे शरीर तैजस के सिवा चार ही हैं। उनमें भी केवल कार्माण शरीर **निरुपभोग** है बाकी के तीन शरीर सोपभोग है क्योंकि उनमें इन्द्रियाँ होती हैं और उनके द्वारा जीव विषयों को भोगता है।

अब यह बतलाते हैं कि किस जन्म से कौनसा शरीर होता है।

गर्भ-सम्मूर्च्छनजमाद्यम् ॥ 45 ॥

अर्थ- (गर्भ-समूर्च्छनजम्) जो गर्भ जन्म और सम्मूर्च्छन से उत्पन्न होता है, सो (आद्यं) आदि का औदारिक शरीर है। जिसके स्वामी मनुष्य और तिर्यंच हैं।

सूत्र- औपादिकं वैक्रियिकम् ॥ 46 ॥

अर्थ- (औपादिकम्) जो उपपाद जन्म से होता है। वह (वैक्रियिकम) वैक्रियिक शरीर है। इसके स्वामी देव और नारकी हैं।

यदि वैक्रियिक शरीर उपपाद् जन्म से उत्पन्न होता है। तो क्या बिना उपपाद जन्म के वैक्रियिक शरीर नहीं होता ? इस आशंका को दूर करने के लिए आगे का सूत्र कहते हैं ?

लब्धिप्रत्ययं च ॥ 47 ॥

अर्थ- वैक्रियिक शरीर (लब्धि प्रत्यं च) लब्धि से अर्थात् तप विशेष रूप से ऋद्धि की प्राप्ति के निमित्त से भी होता है।

भावार्थ- वैक्रियिक शरीर जन्म से भी होता है और निमित्त विशेष के मिलने पर भी होता है। इनमें से जो जन्म से होता है वह उपपाद जन्म से होता है और इसके स्वामी देव और नारकी हैं। वैक्रियिक शरीर निमित्त विशेष के मिलने पर भी होता है। सो यहाँ निमित्त विशेष से लब्धियाँ ली गई है। प्रकृत में लब्धि का अर्थ तप से उत्पन्न हुई शक्ति विशेष है जो गर्भज मनुष्यों के ही सम्भव है।

इसलिए गर्भज मनुष्य भी नैमित्तिक वैकियिक शरीर के स्वामी होते हैं।

(34) शंका- विक्रिया तो गर्भज तिर्यंच वायुकायिक व अग्निकायिक जीवों के भी देखी जाती है।

समाधान- देखी अवश्य जाती है पर वह विक्रिया औदारिक शरीर सम्बन्धी ही है इसलिए उसका अलग से निर्देश नहीं किया।

तैजसमपि ॥ 48 ॥

अर्थ- (अपि) तथा (तैजसम्) तैजस शरीर भी लब्धि प्रत्यय अर्थात् ऋद्धि होने से प्राप्त होता है।

विशेषार्थ- पहले अनादि सम्बन्ध वाले तैजस शरीर का उल्लेख कर आये हैं। पर एक तैजस शरीर तपश्चर्या के निमित्त से उत्पन्न हुई लब्धि के निमित्त से भी होता है। जिसके अधिकारी गर्भज मनुष्य ही हैं। यह दो प्रकार का होता है एक शुभ तैजस और दूसरा अशुभ तैजस। किसी क्षेत्र के लोगों को रोग, दुर्भिक्ष वगैरह से पीड़ित देखकर यदि तपस्वी मुनि के हृदय में अत्यन्त करुणा उत्पन्न हो जाये तो दाहिने कन्धे से शुभ तैजस निकल कर बारह योजन क्षेत्र तक के मनुष्यों का दुःख दूर कर पुनः मुनि के शरीर में प्रविष्ट हो जाता है। और यदि तपस्वी मुनि किसी क्षेत्र के मनुष्यों पर अत्यन्त क्रुद्ध हो जाते हैं तो उनके तप के प्रभाव से बाएँ कन्धें से सिन्दूर के समान लाल अशुभ तैजस शरीर निकलता है और उस क्षेत्र में

बारह योजन के भीतर के जीवों को जलाकर राख कर देता है। पीछे मुनि को भी जला डालता है।

अब आगे आहारक शरीर का स्वरूप कहते हैं-

- शुभं विशुद्धमव्याघाति चाहारकं प्रमत्तसंयतस्यैव ॥ 49 ॥

अर्थ- (आहारकं) आहारक शरीर (शुभं) शुभ हैं अर्थात् शुभ कार्य को पैदा करता है (विशुद्धं) विशुद्ध है अर्थात् विशुद्ध कर्म का कार्य है (च) और (अव्याघाति) व्याघात रहित (ढाइद्वीप में ही) है तथा (प्रमत्तसंयतस्य एव) प्रमत्तसंयत मुनि के ही होता है।

विशेषार्थ- आहारक शरीर का रंग सफेद और ऊँचाई एक हाथ होती है। समचतुरस्र संस्थान होता है। धातु उपधातु, से रहित होता है। न किसी से रुकता है और न किसी को रोकता है। छट्टे गुण स्थानवर्ती प्रमत्तसंयत मुनि के मस्तक से उत्पन्न होता है। एक तो जब मुनि को किसी सूक्ष्म विषय में सन्देह होता है। तब उस सन्देह को दूर करने के लिए आहारक शरीर पैदा होता है। दूसरे किसी काम के लिए गमनागमन करने में असंयम की बहुलता दिखने पर उसका किया जाना आवश्यक हो तो इस निमित्त से भी आहारक शरीर उत्पन्न होता है। उदाहरण के लिए दीक्षा आदि कल्याणकों में सम्मिलित होना और अकृत्रिम चैत्यालयों की वन्दना करना। सो मुनि के उत्तम अंग अर्थात् मस्तक से निकलकर वह ढाईद्वीप में जहाँ भी केवली अथवा श्रुतकेवली हों वहाँ उनके पास जाता है। और सूक्ष्म पदार्थों का निर्णय करके अर्न्तमूहर्त में लौटकर मुनि के शरीर में प्रवेश कर जाता है। तीर्थ यात्रा के लिए भी निकलता है। इसमें कुल अर्न्तमूहर्त काल लगता है।

इस तरह चौदह सूत्रों के द्वारा पाँच शरीरों का कथन किया। जिससे यह सिद्ध हुआ कि सूई के अग्रभाग जितने क्षेत्र में जो सूक्ष्म निगोदिया जीव पाये जाते हैं (तिर्यंचगति के जीव) उनके तीन शरीर औदारिक शरीर तैजस शरीर और कार्माण शरीर पाये जाते हैं। इसलिए इन तीनों शरीरों में कितनी वर्गणायें और वर्ग पाये जाते हैं उनका कथन हुआ।

(35) शंका- प्रत्येक जीव के प्रत्येक प्रदेश पर जघन्यपनें अभव्यों से अनन्तगुणे और उत्कृष्टपंने सिद्धों के अनन्तवें भाग तीनों शरीरों की वर्गणायें और वर्ग पाये जाते हैं उसका अगाम प्रमाण दीजीये।

समाधान- धवला पुस्तक 4 प्रथम संस्करण पृ० 24 पर निम्न प्रकार आया है।

"घनलोक मात्र जीव के प्रदेशों में से प्रत्येक पर अभव्य सिद्धों (अभव्य जीवों) से अनन्तगुणे और सिद्धों के अनन्तवें भाग मात्र होकर के स्थित औदारिक शरीर के परमाणुओं का वही क्षेत्र आकाशपनें को प्राप्त होता है। पुन: औदारिक शरीर के परमाणुओं से अनन्तगुणे तैजस्क शरीर के परमाणुओं की भी उसी क्षेत्र में अवगाहना होती है। तथा पूर्व में कहे गये तैजस परमाणुओं से अनन्तगुणे उसी जीव के द्वारा मिथ्यात्व, अविरति आदि कारणों से संचित और प्रत्येक प्रदेश पर अभव्यों से अनन्तगुणे तथा सिद्धो के अनन्तवें भाग मात्र कर्म परमाणु भी उसी क्षेत्र में रहते हैं। इसलिए उन कर्म परमाणुओं की भी उसी ही क्षेत्र में अवगाहना होती है।"

(36) शंका- केवलज्ञान की सूक्ष्मता के नौ बिन्दुओं में से तीसरे बिन्दु का वर्णन करते हुए आपने लिखा कि आत्मा के प्रत्येक प्रदेश पर जघन्यपनें अभव्यो से अनन्त गुणे और उत्कृष्टपनें सिद्धों के अनन्तवें भाग औदारिक शरीर की वर्गणायें एवं वर्ग पाये जाते हैं। लेकिन मूल आगम में जघन्य और उत्कृष्ट शब्द नहीं हैं। फिर आपने ऐसा किस आधार से लिखा ? हमने तो ऐसा सुना या पढ़ा है व समझ रखा है कि अभव्यों से अनन्तगुणा कहो अथवा सिद्धों के अनन्तवें भाग कहो एक ही बात है। दोनों की सख्या समान है।

समाधान- आगम में जहाँ पर भी जो कथन किया गया है वह दो प्रकार से किया गया है। एक जघन्य और दूसरा उत्कृष्ट। क्योंकि मध्यम के तो अनेक (अनन्त) भेद हैं उन सबका तो कथन किया नहीं जा सकता। केवल जघन्य और उत्कृष्ट दो भेदों का कथन किया जा सकता है। सो किया गया है। यह एक गर्भित बात है कि जहाँ दो प्रकार से कथन किया गया है वहाँ वह जघन्य और उत्कृष्टपनें की अपेक्षा समझना चाहिए। इसमें उत्कृष्ट और जघन्य शब्द लगाने की जरुरत नहीं है। सोई धवला पुस्तक 14 पृष्ट 330 प्रथम संस्करण पर निम्न प्रकार से वर्णन आया है।

"प्रदेश प्रमाणानुगम की अपेक्षा औदारिक शरीर के कितने प्रदेशाग्र (परमाणु) हैं" सूत्रनं 242

"अभव्यों से अनन्तगुणे और सिद्धों के अनन्तवें भाग प्रमाण हैं" सूत्र 243

धवलाटीका- "यह सूत्र औदारिक शरीर के जघन्य और उत्कृष्ट प्रदेश प्रमाण का कथन करता है।"

यहाँ यद्यपि सूत्र नं० 243 में अभव्यों से अनन्तगुणें और सिद्धों के अनन्तवें भाग प्रमाण कहा उसमें जघन्य और उत्कृष्ट विशेषण नहीं लगाया, फिर भी इसका अर्थ जघन्य और उत्कृष्ट समझना चाहिए। यह बात टीका में धवलाकार श्री वीरसेन स्वामी ने स्पष्ट की है। अत: जहाँ पर भी दो प्रकार से सूत्र में कथन हो वहाँ पर वह जघन्य और उत्कृष्ट दो प्रकार से कथन समझना चाहिए। इस सम्बन्ध में पं० द्यानतरायजी रचित चरचाशतक कवित्त न 57 भी दृष्ट्व्य है

"एक समै माहि एक समै परबद्ध बंधै।
एक समै एक समै परबद्ध झरै है।
वर्गना जघन्य में अभव्यों सो अनन्तगुनी।
उत्कृष्टि सिद्ध को अनंत भाग धरै है।"

अर्थ- मिथ्यात्वी जीव एक समय में एक समय प्रबद्ध कर्म वर्गणाओं का बध करता है और एक समय में एक समय प्रबद्ध वर्गणाओं को ही झड़ाता है। जघन्य वर्गणा का प्रमाण अभव्य जीवों की संख्या से अनन्तगुना और उत्कृष्ट वर्गणा सिद्ध जीवों के अनन्तवें भाग होता है।

(37) शंका- *समयप्रबद्ध किसे कहते हैं ?*

समाधान- एक समय में जितने कर्म परमाणुओं का बंध होता है उनको समयप्रबद्ध कहते हैं। एक समयप्रबद्ध मे अनन्तकर्मवर्गणायें होती हैं।

इसी प्रकार गोम्मटसार जीवकांड गाथा नं० 196 में जो एक निगोद शरीर में जीवों का जो प्रमाण द्रव्य की अपेक्षा कहा है वह जघन्य और उत्कृष्ट समझना चाहिए।

यथा - गाथा-

"एग णिगोद सरीरे, जीवा दव्वप्पमाणदो दिट्ठा।
सिद्धैहिं अणतंगुणा, सव्वैण विदीय कालेण ॥ 196 ॥

अर्थ- समस्त सिद्ध राशि का और सम्पूर्ण अतीत काल के समयों का जितना प्रमाण है, द्रव्य की सख्या अपेक्षा उनसे अनन्त गुणें जीव एक निगोद शरीर में रहते हैं।

विशेषार्थ- यहाँ पर जो एक निगोद शरीर में जीवों की संख्या का प्रमाण सिद्धों से अनन्तगुणा और भूतकाल के समयों से अनन्तगुणा कहा सोई इसका अर्थ जघन्यपनें सिद्धों की सख्या से अनन्तगुणा और उत्कृष्टपनें भूतकाल के समयों से अनन्तगुणें जीव जानने चाहिए।

साथ ही यहाँ अनन्तगुणे से आशय अनन्तवर्ग स्थान गुणाकार लेना चाहिए अर्थात् एक निगोद शरीर में जघन्यपनें सिद्धों से अनन्तवर्ग स्थान आगे जाने पर जो संख्या आती है उतनी संख्या जीवों की है। और उत्कृष्टपनें समस्त भूतकाल के समयों से अनन्त वर्गस्थान आगे जाने पर जो संख्या प्राप्त होती है उतनी जीवों की संख्या है।

एक सामान्य कथन होता है और दूसरा विशेष कथन होता है। सामान्यपने कहें तो एक निगोद शरीर में जघन्यपनें सिद्धों से अनन्तगुणे और उत्कृष्टपने भूतकाल के समयों से अनन्त गुणे जीव पाये जाते हैं। विशेषपनें कहे तो जघन्यपनें सिद्धों से अनन्त वर्ग स्थान जाने पर और उत्कृष्टपनें भूतकाल के समयों से अनन्त वर्ग स्थान जाने पर जीव पाये जाते हैं।

जैसे सामान्यपनें यह कहा जाता है कि जीवों से अनन्त गुणें पुद्‌गलों की संख्या है और पुद्‌गलों से अनन्त गुणे तीन काल के समयों की संख्या है और तीन काल के समयों से अनन्तगुणे आकाश के प्रदेशों की सख्या आती है और आकाश के प्रदेशों से अनन्तगुणें गुण प्रत्येक आत्मा में पाये जाते हैं। यह एक सामान्य कथन है। विशेषपनें देखें तो सिद्धों से अनन्त वर्ग स्थान जाने पर पुद्‌गलों की सख्या आती है और पुद्‌गलो से अनन्त वर्ग स्थान आगे जाने पर तीन काल के समयों की संख्या आती है और तीन काल के समयों से अनन्त वर्ग स्थान आगे जाने पर आकाश के प्रदेशों की संख्या आती है। द्विरुप वर्गधारा का अध्ययन करने से भली-भाँति ज्ञात होता है। अतः एक सामान्य कथन होता है और एक विशेष कथन होता है।

अभ्यास-माला

(1) आत्मा के प्रत्येक प्रदेश पर औदारिक शरीर से कितने गुणे तैजस शरीर की वर्गणा एव वर्ग पाये जाते हैं ?

(2) आत्मा के घनलोकमात्र प्रदेशों पर कितनी तैजस शरीर की वर्गणा एवं वर्ग पाये जाते हैं ?

(3) एक निगोद शरीर मे पाये जाने वाले जीवों के साथ कितनी तैजस शरीर की वर्गणा एवं वर्ग पाये जाते हैं ?

(4) सूई के अग्रभाग आकाश क्षेत्र में पाये जाने वाले कुल जीवों के साथ कितनी तैजस शरीर की वर्ग एवं वर्ग पाये जाते हैं ?

(5) सम्पूर्ण लोक में पाये जाने वाले कुल सूक्ष्म निगोदिया जीवों के साथ तैजस शरीर की कितनी वर्गणा एवं वर्ग पाये जाते हैं ?

(6) आत्मा के प्रत्येक प्रदेश पर तथा पूरे आत्मा पर तथा एक निगोद शरीर में पाये जाने वाले कुल जीवों पर तथा सूई के अग्रभाग आकाश क्षेत्र में पाये जाने वाले सम्पूर्ण सूक्ष्म निगोदिया जीवों तथा पूरे लोकाकाश में पाये जाने वाले सूक्ष्म निगोदिया जीवों के साथ जितनी तैजस शरीर की वर्गणा एवं वर्ग पाये जाते हैं उनसे कितने गुणें कार्माण शरीर की वर्गणा एवं वर्ग पाये जाते हैं?

(7) कुल शरीर कितने हैं ? प्रत्येक का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।

(8) "परम्परं सूक्ष्मम्" सूत्र का अर्थ क्या है ?

(9) "प्रदेशतोऽसख्येयगुणं प्राक्तैजसात्" सूत्र का अर्थ लिखिए।

(10) "अनन्तगुणे परे" सूत्र का अर्थ स्पष्ट कीजिए ?

(11) "अप्रतिघाते" सूत्र क्या है ?

(12) "अनादि सम्बन्धे च" सूत्र का अर्थ क्या है ?

(13) "सर्वस्य" सूत्र का अर्थ स्पष्ट कीजिए।

(14) "तदादीनि भाज्यानि युगपदेकस्मिन्ना चतुर्म्यः"॥ सूत्र का अर्थ भी समझाइये।

(15) ''निरुपभोगमन्त्यम्'' सूत्र का अर्थ स्पष्ट कीजिए।

(16) ''गर्भ सम्मूर्च्छनजमाद्यम्''॥ सूत्र क्या है ?

(17) ''औपादिकं वैक्रियिकम्'' सूत्र का अर्थ कीजिए।

(18) ''लब्धि प्रत्यय च'' सूत्र का अर्थ स्पष्ट कीजिए।

(19) ''तैजसमपि'' सूत्र का क्या अर्थ है ?

(20) ''शुभ विशुद्धमव्याघाति चाहारकप्रमत्त संयतस्यैव'' सूत्र क्या है ?

(21) शरीरों के सम्बन्ध मे तत्वार्थ सूत्र में कितने सूत्र हैं ?

(22) धवला पुस्तक 4 प्रथम सस्करण पृ० 24 पर क्या आया है ?

(23) धवला पुस्तक 14 पृष्ट 330 पर सूत्र न 242, 243 क्या है तथा उसकी टीका मे धवलाकार श्री वीरसेन स्वामी ने क्या लिखा है ?

(24) चरचाशतक कवित्त नं 57 में क्या वर्णन आया है ?

(25) समयप्रबद्ध किसे कहते हैं ?

(26) गोम्मटसार जीवकाण्ड गाथा न. 196 का सामान्य और विशेष अर्थ क्या है ?

सातवाँ अध्याय

(38) शंका- चौदह धाराओं में द्विरूप वर्ग धारा का विशेष महत्व है। अतः इसका वर्णन कीजिए।

समाधान- चौदह धारायें हैं (1) सर्वधारा (2) समधारा (3) विषम धारा (4) कृतिधारा (5) अकृतिधारा (6) कृतिमात्रक धारा (7) अकृति मात्रक धारा (8) घनधारा (9) अघनधारा (10) घनमात्रकधारा (11) अघनमात्रक धारा (12) द्विरूप वर्गधारा (13) द्विरूप घनधारा (14) द्विरूप घनाघन धारा। इनमें से द्विरूप वर्गधारा का संक्षेप में कथन करते हैं।

द्विरूप वर्गधारा-

इस द्विरूप वर्गधारा में दो के वर्ग से प्रारम्भ कर पूर्व पूर्व स्थानो (वर्गो) का वर्ग करते हुए उत्तर उत्तर स्थान प्राप्त होते हैं। इस धारा का प्रथम स्थान २ का वर्ग 4 है। इसका वर्ग 16, फिर 256, 65536, बादाल (42=) और एकट्ठी प्राप्त होती है जो पूर्व पूर्वका का वर्ग है।

विशेषार्थ- दो संख्याओं का वर्ग से लगा कर पूर्व पूर्व भेदों का वर्ग करने पर जो सख्या के भेद जिस धारा में होते हैं, सो द्विरूप वर्गधारा है अर्थात् दो से लगा कर जो वर्ग की धारा चलती है, उसे द्विरूप वर्ग धारा कहते हैं। इसका प्रथम स्थान दो का वर्ग (2 × 2 = 4) चार है ताका अर्थात् चार का वर्ग (4 × 4) सोलह यह दूसरा स्थान है तथा सोलह का वर्ग (16 × 16 = 256) दौ सौ छप्पन तीसरा स्थान है तथा याका अर्थात् 256 का वर्ग (256 × 256 = 65536) चौथा स्थान पणट्ठी है। 65536 संख्या को पणट्ठी कहते है याका वर्ग अर्थात् पणट्ठी का वर्ग पाचवां स्थान बादाल है। 65536 × 65536 = 4294967296 ये अंक लिखने पर बादाल होता है। इसके शुरू में 42 के अंक के ऊपर इस संख्या का सक्षिप्त नाम बादाल है। इसकी अंक संदृष्टि (४२ =) है। बादाल का वर्ग छटा स्थान एकट्ठी (42 = × 42 =) 1844, 6744, 07370955, 1616 है याकी अंक संदृष्टी (पहचानने का चिन्ह) 18 = है। क्योंकि 18 के अंक से इसकी संख्या प्रारंभ होती है। एकट्ठी का वर्ग सातवाँ स्थान। इसी प्रकार पूर्व पूर्व स्थानिका वर्ग करते

करते एक एक स्थान होता है। इसी प्रकार वर्ग करते हुए संख्यात स्थान आगे जाने पर जघन्य परीत असख्यात की वर्गशलाका राशि उत्पन्न होती है।

(39) शंका- वर्गशलाका क्या अर्थ है ?

समाधान- दो का वर्ग से लगाकर जितनी बार वर्ग करने पर जो राशि उत्पन्न होती है उस राशि की उतनी ही वर्गशलाका जाननी। जैसे पणट्ठी 65536 की वर्ग शलाका चार, बादाल की पाँच, एकट्ठी की छह वर्गशाला का है। क्योंकि (1) दो का वर्ग चार (2) चार का वर्ग सोलह (3) सोलह का वर्ग दौसौ छप्पन (4) दो सौ छप्पन का वर्ग पणट्ठी (5) पणट्ठी का वर्ग बादाल (6) बादाल का वर्ग एकट्ठी इस प्रकार छह बार वर्ग होने पर एकट्ठी की राशि उत्पन्न होती है। अतः एकट्ठी की वर्गशलाका छह जानना। ऐसे अन्यत्र भी लगा लेना।

इससे अर्थात् जघन्य परीत असंख्यात की वर्गशलाका राशि से संख्यात वर्गस्थान आगे जाने पर जघन्य परीत असंख्यात के अर्धच्छेदों की राशि उत्पन्न होती है।

(40) शंका- अर्धच्छेद का क्या अर्थ ?

समाधान- किसी भी राशि को जितनी बार आधा आधा करने से एक शेष बचे, उनको अर्धच्छेद कहते हैं। जैसे- चार (4) का दोबार आधा आधा करने से एक होता है। इसलिए (4) चार के अर्धच्छेद दो हैं। आठ के तीन, सोलह के चार, बत्तीस के पाँच, चौसठ के छः, एकसो अट्ठाईस के सात, दौ सो छप्पन के आठ अर्धच्छेद होते हैं। ऐसे ही अन्यत्र लगा लेना।

इससे अर्थात् जघन्य परीत असख्यात के अर्धच्छेद राशि से सख्यात वर्गस्थान आगे जाने पर जघन्य परीत असंख्यात का प्रथम वर्गमूल प्राप्त होता है और इससे एक वर्गस्थान आगे जाने पर जघन्य परीत असख्यात की राशि उत्पन्न होती है।

(41) शंका- प्रथम वर्गमूल किसे कहते हैं ? तथा क्या द्वितियादि वर्गमूल भी होते हैं ?

समाधान- किसी भी राशि का एक बार वर्ग मूल निकालने पर जो राशि उत्पन्न होती है उसको प्रथम वर्गमूल अथवा प्रथम मूल भी कहते हैं। तथा प्रथम वर्गमूल की राशि का वर्गमूल निकालने पर जो सख्या आती है उसको द्वितीय वर्गमूल कहते हैं। तथा द्वितीय वर्गमूल की सख्या का वर्गमूल निकालने पर तृतीय

वर्गमूल की संख्या आती है। इसी प्रकार चतुर्थादि वर्गमूल जानने। जैसे- 256 का प्रथम वर्गमूल सोलह (16) है, क्योंकि सोलह का वर्ग दौ सो छप्पन होता है। 256 का दूसरा वर्गमूल चार (4) है, क्योंकि चार का वर्ग 16 और 16 का वर्ग 256 होता है। 256 का तीसरा वर्गमूल दो (२) है। क्योंकि २ का वर्ग चार और चार का वर्ग 16 और 16 का वर्ग 256 होता है इसी प्रकार अन्यत्र जानना।

तथा जघन्य परीत असंख्यात संख्या से संख्यात वर्ग स्थान आगे जाने पर जघन्य युक्त असंख्यात प्रमाण (आवली) के समयों की राशि उत्पन्न होती है।

(42) शंका- आवली (जघन्य युक्त असख्यात) के समयों की राशि के वर्ग शला का, अर्धच्छेद, प्रथम वर्गमूल आदि भेद क्यो नहीं कहे ?

समाधान- क्योंकि जिस धारा में "जो राशि विरलन और देय के विधान से उत्पन्न होती है, उस राशि की वर्गशलाका और अर्धच्छेद उस धारा में नहीं मिलते" इस नियम के अनुसार इस द्विरुप वर्ग धारा में आवली (जघन्य युक्त असख्यात) की तो उत्पत्ति होती है किन्तु आवली की वर्गशलाकाएँ और अर्धच्छेद राशियाँ उत्पन्न नहीं होती। क्योंकि सख्यामान के 21 भेदों में आवली विरलन देय के विधान से उत्पन्न हुई है।

उदाहरण- मानलो अक संदृष्टी में विरलन राशि सोलह (16) है और देय राशि भी सोलह (16) है। अत: 16 का विरलन कर अर्थात् एक एक विखेर कर तथा प्रत्येक एक के ऊपर देय राशि 16 देकर और फिर समस्त देय राशि का आपस में गुणा करने पर-

$$\frac{16}{1}\ \frac{16}{1}\ \frac{16}{1}\ \frac{16}{1}\ \frac{16}{1}\ \frac{16}{1}\ \frac{16}{1}\ \frac{16}{1}\ \frac{16}{1}\ \frac{16}{1}\ \frac{16}{1}\ \frac{16}{1}\ \frac{16}{1}\ \frac{16}{1}\ \frac{16}{1}\ \frac{16}{1} =$$

एकट्ठी (18 =) अर्थात् 1844, 6744, 0737, 0955, 1616 संख्या आती है। इस एकट्ठि के अर्धच्छेद 64 और वर्गशाला का 6 है। सो 64 (अर्धच्छेद) और 6 (वर्गशालाका) है सो 64 और 6 इस द्विरुप वर्ग धारा मे नहीं मिलते। किन्तु, एकट्ठी राशि तो मिलती है। इसी प्रकार सूची अंगुल व जगत् श्रेणी का भी जानना। क्योंकि इनकी उत्पत्ति भी (उपमामान के 8 भेदों में) विरलन और देय के विधान से प्राप्त होती है।

संख्यात वर्ग स्थान आगे जाने पर आवली उत्पन्न होती है। इसका तात्पर्य है देयराशि के ऊपर विरलन राशि के जितने अर्धच्छेद हैं उतने वर्गस्थान आगे जाने पर विवक्षित राशि उत्पन्न होती है। यहाँ पर देय राशि जघन्य परीत असंख्यात और विरलन राशि जघन्य परीत असंख्यात के अर्धच्छेद प्रमाण वर्गस्थान आगे जाने पर आवली उत्पन्न होती है यहाँ जघन्य परीत असख्यात के अर्धच्छेद संख्यात होते हैं।

तथा इससे अर्थात् जघन्य युक्त असंख्यात प्रमाण आवली के समयों से एक वर्गस्थान आगे जाकर प्रतरावली अर्थात् जघन्य असख्यातासंख्यात की राशि उत्पन्न होती है क्योंकि आवली के वर्ग को ही प्रतरावली कहते हैं।

प्रतरावली से असंख्यात वर्ग स्थान आगे जाने पर अद्धापल्य की वर्गशलाकाए, पुनः असख्यात वर्गस्थान आगे जाने पर अद्धापल्य के अर्धच्छेद, पुनः असंख्यात वर्गस्थान आगे जाने पर अद्धापल्य का प्रथम वर्गमूल प्राप्त होता है। और प्रथम वर्ग मूल का एक बार वर्ग करने पर अद्धापल्य उत्पन्न होता है।

इससे अर्थात् अद्धापल्य से असख्यात वर्गस्थान आगे जाने पर सूची अंगुल (सूच्यगुल) उत्पन्न होता है। यहाँ पर सूची अंगुल का प्रमाण उत्पन्न करने के लिए देयराशि अद्धापल्य और विरलन राशि अद्धापल्य के अर्धच्छेद हैं तथा ''विरलन राशि के अर्धच्छेद प्रमाण वर्गस्थान आगे जाने पर विवक्षित राशि उत्पन्न होती है।'' इस नियम के अनुसार विरलन राशि (पल्य के अर्धच्छेदों) के अर्धच्छेद भी असंख्यात हैं। अतः अद्धापल्य के ऊपर असंख्यात वर्गस्थान आगे जाने पर सूची अगुल उत्पन्न होता है। यहॉ पर इसी द्विरूप वर्ग धारा मे सूची अंगुल की वर्ग शलाकाऐं और अर्द्धच्छेद नही पाये जाते। क्योंकि सूची अगुल की उत्पत्ति देय और विरलन राशियो द्वारा हुई है।

(43) शंका- सूची अगुल और सूच्यगुल में क्या अन्तर है ?

समाधान- कोई अन्तर नहीं है। सूची अगुल शब्द की सन्धि करने पर सूच्यगुल बनता है। अतः कोई अन्तर नहीं है। तथा इससे अर्थात् सूची अगुल से एक वर्गस्थान आगे जाने पर प्रतरांगुल उत्पन्न होता है।

तथा प्रतरागुंल से असंख्यात वर्गस्थान आगे जाने पर जगत् श्रेणी का घनमूल उत्पन्न होता है अर्थात् इस राशि का घन करने पर जगत् श्रेणी उत्पन्न होती है।

नोट:- घंनागुल, जगत श्रेणी और जगत् प्रतर द्विरूप घनधारा में हैं और जगतघन (लोक) द्विरूप घनाघनधारा में है।

जगत् श्रेणी के घनमूल से असंख्यात वर्ग स्थान आगे जाने पर जघन्य परीत अनन्त की वर्ग शलाका राशि उत्पन्न होती है और इससे असंख्यात वर्ग स्थान आगे जाने पर उसी जघन्य परीत अनन्त की अर्द्धच्छेद राशि उत्पन्न होती है। और उससे असख्यात वर्ग स्थान आगे जाने पर उसी जघन्य परीत अनन्त की प्रथम वर्गमूल उत्पन्न होता है इससे एक वर्ग स्थान आगे जाने पर जघन्य परीत अनन्त आता है।

तथा जघन्य परीत अनन्त से असख्यात वर्ग स्थान आगे जाने पर जघन्य युक्त अनन्त की संख्या आती है। चूँकि यहाँ पर विरलन राशि व देयराशि जघन्य परीत अनन्त है। यहाँ विरलन राशि के अर्द्धच्छेद असंख्यात हैं अत: असख्यात वर्ग स्थान आगे जाने पर जघन्य युक्त अनन्त की प्राप्ति होती है। यहाँ पर पूर्व नियम के अनुसार वर्गशलाका, अर्द्धच्छेद आदि का निषेध जानना। तथा जघन्य युक्त अनन्त से एक वर्ग स्थान आगे जाने पर जघन्य अनन्तानन्त की प्राप्ति होती है।

तथा जघन्य अनन्तानन्त से अनन्त वर्ग स्थान आगे जाने पर जीव राशि की वर्गशलाका, अर्द्धच्छेद, प्रथम वर्ग मूल तथा जीव राशि उत्पन्न होती है। इसी प्रकार जीव राशि से अनंत वर्ग स्थान आगे जाने पर पुद्गल राशि की वर्ग शलाका प्राप्त होती है। पुनः अनन्त वर्ग स्थान आगे जाने पर पुद्गल राशि के अर्द्धच्छेदों की सख्या प्राप्त होती है। पुनः अनन्त वर्गस्थान आगे जाने पर पुद्गल राशि का प्रथम वर्गमूल प्राप्त होता है फिर उसका (प्रथम वर्गमूल) वर्ग करने पर पुद्गलो की सख्या आती है।

इसी प्रकार अनन्त वर्गस्थान आगे जाने पर क्रमश: तीन काल के समयों की वर्गशलाका, अर्द्धच्छेद, प्रथम वर्गमूल व तीन काल के समयों की उत्पत्ति होती है।

तथा तीन काल के समयों के परिमाण से अनन्त वर्ग स्थान आगे जाने पर क्रमश: श्रेणी आकाश के प्रदेशों की वर्गशलाका, अर्धच्छेद, प्रथम वर्ग मूल व श्रेणी आकाश के प्रदेशों का परिमाण प्राप्त होता है। सो यह श्रेणी लोकाकाश अलोकाकाश रूप सर्व आकाश के लम्बाई के प्रदेशों का परिमाण जानना। इसमें चौडाई व ऊँचाई नहीं लेनी।

तथा श्रेणी आकाश से एक वर्गस्थान आगे जाने पर प्रतराकाश के प्रदेशों का परिमाण आता है। सो यह लोकाकाश व अलोकाकाश रूप सर्व आकाश के प्रदेशों का लम्बाई एवं चौड़ाई रूप प्रदेशों का परिमाण जानना। इसमें ऊँचाई नहीं लेनी।

नोट- घनरूप सर्व आकाश के प्रदेशों का परिमाण द्विरूप घनधारा में है।

प्रतराकाश से उत्तरोत्तर अनन्त वर्गस्थान आगे जाकर धर्म अधर्म द्रव्य के अगुरूलघु के अविभाग प्रतिच्छेदों की वर्गशलाका, अर्धच्छेद, प्रथम वर्गमूल व धर्म अधर्मद्रव्य के अगुरुलघुगुण के अविभाग प्रतिच्छेदों की संख्या आती है। पुनः अनन्त वर्ग स्थान आगे जाने पर इसी प्रकार एक जीव के अगुरूलघुगुण के वर्गशलाका, अर्धच्छेद, प्रथम वर्गमूल एवं अविभाग प्रतिच्छेदो की सख्या प्राप्त होती है। पुनः अनन्त वर्गस्थान आगे जाने पर इसी प्रकार सूक्ष्म निगोदिया लब्ध्यपर्याप्तक जीव के जघन्य पर्याय नामक श्रुतज्ञान की वर्गशलाका, अर्धच्छेद, प्रथम वर्ग मूल एवं अविभाग प्रतिच्छेदों की सख्या आती है तथा इसी प्रकार पुनः अनन्त वर्गस्थान आगे जाने पर जघन्य क्षायिकलब्धि (क्षायिक सम्यग्दर्शन) की वर्गशलाका, अर्धच्छेद, प्रथम वर्गमूल एवं जघन्य क्षायिकलब्धि के अविभाग प्रतिच्छेदों की सख्या प्राप्त होती है।

इससे अनन्त वर्ग स्थान आगे जाने पर केवल ज्ञान की वर्गशलाका, अर्धच्छेद, केवलज्ञान का अष्टम वर्गमूल प्राप्त होता है। इससे एक एक वर्गस्थान आगे जाने पर क्रमशः केवल ज्ञान का सप्तम्, षष्ट्म, पचम, चतुर्थ, तृतीय, द्वितीय व प्रथम वर्गमूल प्राप्त होता है तथा इसका वर्ग करने पर केवलज्ञान के अविभाग प्रतिच्छेदो की प्राप्ति होती है। यही द्विरूप वर्ग धारा का अन्तिम स्थान है। यही उत्कृष्ट प्रमाण है। इसी का नाम उत्कृष्ट क्षायिकलब्धि है। केवल ज्ञान की वर्गशलाकाओं का जितना प्रमाण है, उतना ही प्रमाण द्विरूप वर्ग धारा के समस्त स्थानों का है। द्विरूप वर्गधारा का सर्वजघन्य और प्रथम स्थान 2 का वर्ग चार तथा सबसे अन्तिम और उत्कृष्ट स्थान केवलज्ञान के अविभाग प्रतिच्छेदों का प्रमाण है इसके कुलस्थान 21 निम्न है

(1) दो का वर्ग चार।

(2) जघन्य परीत असंख्यात।

(3) जघन्य युक्त असंख्यात (आवली)

(4) असंख्यातासंख्यात (प्रतरावली)

(5) अद्धापल्योपम

(6) सूची अंगुल (7) प्रतरांगुल (8) जगत् श्रेणी का घनमूल

(9) जघन्य परीत अनन्त।

(10) जघन्य युक्त अनन्त। (अभव्यराशि)

(11) जघन्य अनन्तानन्त।

(12) जीव राशि (13) पुद्गलराशि (14) तीन काल के समय

(15) श्रेणी आकाश (16) प्रतराकाश (17) धर्म अधर्म द्रव्य के अगुरुलघुगुण के अविभाग प्रतिच्छेदों की संख्या।

(18) एक जीव के अगुरुलघुगुण के अविभाग प्रतिच्छेद।

(19) सूक्ष्म निगोदिया के लब्ध्यक्षर पर्याय श्रुतज्ञान के अविभाग प्रतिच्छेदों की संख्या।

(20) जघन्य क्षायिकलब्धिके अविभाग प्रतिच्छेदों की संख्या।

(21) केवलज्ञान के अविभाग प्रतिच्छेदों की संख्या।

(44) शंका- अविभाग प्रतिच्छेद का क्या अर्थ है ?

समाधान- चार वस्तु है द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव। इन चारों के जघन्य उत्कृष्ट का ज्ञान अवश्य होना चाहिए सोई संक्षिप्त में कहते है।

(1) द्रव्य- जघन्य एक परमाणु और उत्कृष्ट सम्पूर्ण पुद्गल द्रव्य समूह।

(2) क्षेत्र- जघन्य आकाश का एक प्रदेश। आकाश के जितने क्षेत्र को एक परमाणु रोके सो प्रदेश। उत्कृष्ट सर्व आकाश।

(3) काल- जघन्य एक समय और उत्कृष्ट तीन काल के समय। एक परमाणु को अत्यन्त मन्दगति से एक आकाश प्रदेश से अपने निकटवर्ती दूसरे आकाश प्रदेश में जाने के लिए जो काल लगता है उसे समय कहते हैं। यदि पुद्गल परमाणु तीव्रगति से गमन करे तो एक समय में चौदह राजू गमन कर

सकता है। इसमे दृष्टान्त यह है कि जैसे जो देवदत्त धीमी चाल से सौ योजन सौ दिन में जाता है। वही देवदत्त विद्या के प्रभाव से शीघ्रगति के द्वारा सौ योजन एक दिन में जाता है तो क्या उस देवदत्त को शीघ्र गति से गमन करने में सौ दिन हो गये? किन्तु एक ही दिन लगा। इसी तरह शीघ्रगति से चौदह राजू गमन करने मे भी परमाणु को एक ही समय लगता है। एक सैकिण्ड में असंख्यात समय होते हैं। साधारणतया यह बात गले नहीं उतरती लेकिन आधुनिक वैज्ञानिकों ने एक ऐसा अद्‌भुत कैमरा कैलिफोर्निया स्थित मैसाडीना की एलेक्ट्रो ओप्टीकल सिस्टल कम्पनी ने तैयार किया है जो एक सैकिण्ड के अरबवें भाग में ही चित्र उतार लेता है। संदर्भ दैनिक समाचार पत्र 'न्याय' दिनांक 21 4 91 रविवार

भाव- इसी प्रकार भाव (गुण) अथवा शक्ति की सबसे छोटी से छोटी इकाई को अविभाग प्रतिच्छेद कहते हैं। अ = नहीं, विभाग = अंश अर्थात् जिसका दूसरा अंश न हो सके, वह अविभागी है। प्रतिच्छेद = शक्ति (गुण) का अश।

जैसे चिकनाई को लें। पानी में चिकनाई के अंश कम हैं। बकरी के दूध मे उससे ज्यादा चिकनाई के अश है। बकरी के दूध से गाय के दूध में चिकनाई के अश अधिक हैं। गाय के दूध से भैंस के दूध में चिकनाई के अंश विशेष हैं। भैंस के दूध से भेड के दूध में चिकनाई के अंश अधिक हैं। इसी प्रकार समझना। जैसे डेरीवाले जो दूध खरीदते हैं वह मशीन से उस दूध की चिकनाई (Fat) कितनी है। उसको नापकर रुपये देते हैं। इसी प्रकार सभी गुणों में लगा लेना।

उत्कृष्ट ज्ञान गुण के सर्व अविभाग प्रतिच्छेदों की संख्या। यहाँ पर यह भी जानना चाहिए कि सभी गुणों के अविभाग प्रतिच्छेद समान नहीं होते हैं। सबसे ज्यादा ज्ञान गुण के अविभाग प्रतिच्छेद होते हैं। अत: केवलज्ञान के अविभाग प्रतिच्छेद सर्वोत्कृष्ट संख्या में है।

अभ्यास–माला

(1) द्विरूप वर्ग धारा किसे कहते हैं ?

(2) कुल धारायें कितनी हैं ? उनके नाम लिखिए?

(3) वर्गशलाका का अर्थ क्या है ?

(4) अर्धच्छेद किसे कहते हैं ?

(5) प्रथम वर्गमूल किसे कहते हैं तथा क्या द्वितीय आदि वर्गमूल भी होते हैं ?

(6) आवली, जघन्य युक्तानन्त, सूचीअगुल आदि के वर्गशालाका एवं अर्धच्छेद क्यों नहीं बताये ?

(7) घनागुल, जगतश्रेणी, जगतप्रतर, जगत घन किस धारा में आते हैं ?

(8) द्विरुप वर्ग धारा के कुल स्थान कितने हैं उनका नाम लिखिए ?

(9) अविभाग प्रतिच्छेद का अर्थ क्या है ? स्पष्ट उदाहरण देकर समझाइये।

(10) द्रव्य क्षेत्र काल भाव के जघन्य और उत्कृष्ट क्या हैं ?

(11) आधुनिक विज्ञान ने जो कैमरा तैयार किया है उसमें एक सैकण्ड में कितने चित्र खेचें जा सकते हैं।

आठवाँ अध्याय

(45) शंका- औदारिक आदि शरीरों के वर्ग, वर्गणा, स्पर्धक और समय-प्रबद्ध को स्पष्ट कीजिए।

समाधान- सबसे न्यून जघन्य गुणों को धारण करने वाले प्रदेश अर्थात् परमाणु को पकड लो। उसके अनुभाग अशों को बुद्धि के द्वारा उतने बार टुकडे कर डालो कि जिससे पुनः छोटा टुकड़ा नहीं हो सके। वे अविभाग प्रतिच्छेद (न्यूनगुण वाले परमाणु के) जीवराशि से अनन्तगुणे संख्या मे बैठेंगे। उतनी उतनी अविभाग प्रतिच्छेद सख्याओं को धारण करने वाले परमाणुओं की एक राशि कर डालो। इन सब परमाणुओं के समुदाय को वर्गणा कहते हैं। उसके आगे एक एक अविभाग प्रतिच्छेद को बढाते हुए नो कर्म परमाणुओ की राशि को बनाकर उत्तरोतर वर्गणाये बना लेनी चाहिए। इस प्रकार क्रम वृद्धि और क्रम हानि से हो रही पक्तियों का समुदाय स्पर्धक कहा जाता है। समान अविभाग प्रतिच्छेद के धारण करने वाले परमाणुओ के समुदाय को वर्गणा कहते हैं और वर्गणाओं के समुदाय को स्पर्धक कहते हैं। एक जीव के एक समय मे अनन्त स्पर्धको का उदय होता है। पिण्ड की अपेक्षा उसे एक समय प्रबद्ध कहते हैं।

अर्थात् जघन्यपनें अभव्यों से अनन्तगुणे और उत्कृष्टपने सिद्धो के अनन्तवे भाग परमाणुओ की एक वर्गणा होती है। अनन्त अविभाग प्रतिच्छेदो (जीवराशि से अनन्तगुणे) को धारणे वाले परमाणु को वर्ग कहते हैं।

जघन्यपने अभव्यों से अनन्त गुणें और उत्कृष्टपने सिद्धों के अनन्तवें भाग अनन्त वर्गणाओं का एक स्पर्धक होता है और ऐसे अनन्त स्पर्धक एक समय मे उदय मे आते हैं। छोटे से छोटे संसारी जीव के अभव्यों से अनन्तगुणे कर्म परमाणु प्रति समय उदय में आते हैं। और बडी से बडी अवगाहना वाले महामतृस्य के भी सिद्ध राशि के अनन्तवे भाग कर्म परमाणु उदय में आते हैं। जघन्य और उत्कृष्ट के मध्यवर्ती अनन्त भेदों को धारण करने वाले अनन्तानन्त जीव हैं।

(46) शंका- स्पर्धक किसे कहते है ?

समाधान- रस देने की शक्ति के अविभाग प्रतिच्छेद कहिए अंश तिनको धारण करने वाले कर्मरूप पुद्गल परमाणुओं को वर्ग कहते हैं। सो एक एक कर्मरूप परमाणु रूप वर्ग में शक्ति के अंश समस्त जीवराशि से अनन्तगुणे अनन्तानन्त अविभाग प्रतिच्छेद हैं। तथा समान अविभाग प्रतिच्छेदों को धारण करने वाले जघन्यपनें अभव्यों से अनन्तगुणे और उत्कृष्टपनें सिद्धों के अनन्तवें भाग अनन्तानन्त वर्गो के समूह का नाम वर्गणा है।

सो सर्व से न्यून अविभाग प्रतिच्छेदों को धारण करने वाले वर्ग को जघन्य वर्ग कहते हैं। तथा जघन्य वर्गों के समुदाय को जघन्य वर्गणा कहते हैं। तथा जघन्य वर्ग में जो अविभाग प्रतिच्छेद होते हैं सो उनसे एक अधिक अविभाग प्रतिच्छेद वृद्धि को धारण करने वाले वर्गों के समूह का नाम द्वितीय वर्गणा है। ऐसे एक एक अविभाग प्रतिच्छेद बढ़ते-बढते जिन वर्गो में पाये जाते हैं तिनके समूह का नाम अन्य अन्य वर्गणा है। इस प्रकार जघन्यपने अभव्यों से अनन्तगुणे और उत्कृष्टपनें सिद्धों के अनन्तवे भाग वर्गणाओं के समुदाय का नाम स्पर्धक है।

जघन्य वर्गणा में जितने अविभाग प्रतिच्छेदों को धारण करने वाले वर्ग हैं उनसे एक एक अविभाग प्रतिच्छेद बढता-बढ़ता द्वितीय आदि वर्गणामें वर्ग हैं। इस प्रकार जहाँ से दूने अविभाग प्रतिच्छेदो को धारण करने वाले जिस वर्गणा में वर्ग होते हैं वहाँ से दूसरा स्पर्धक कहा जाता है। इससे पहले तक की सर्व अनन्ती वर्गणाये प्रथम स्पर्धक की जाननी। इसी प्रकार जघन्य वर्गणा से तिगुने अविभाग प्रतिच्छेदों को धारण करने वाली वर्गणायें हैं सो तीसरे स्पर्धक की जाननी अर्थात् जहां तक एकएक अविभाग प्रतिच्छेद को बढता हुआ को धारण करने वाले वर्गो की वर्गणाये होती है वहाँ तक की सभी वर्गणायें एक स्पर्धक की कही जाती हैं। और जहाँ से प्रथम स्पर्धक की प्रथम वर्गणा के वर्गो में जितने अविभाग प्रतिच्छेद थे उनसे दुगने अविभाग प्रतिच्छेदों को धारण करने वाले वर्गों की वर्गणायें चालू होती हैं वहाँ से दूसरा स्पर्धक प्रारम्भ हो जाता है और उसके आगे एक-एक अविभाग प्रतिच्छेद अधिक अविभाग प्रतिच्छेदों को धारण करने वाले वर्गों की वर्गणायें पाई जाती हैं। वहाँ तक कि समस्त वर्गणायें दूसरे स्पर्धक की कहीं जाती

हैं। उसी प्रकार प्रथम वर्गणा से अर्थात् जघन्य वर्गणा से तिगुणे अविभाग प्रतिच्छेदों को धारण करने वाली वर्गों की वर्गणायें हैं वहाँ से वे वर्गणायें तीसरे स्पर्धक की जाननी। ऐसे ही चौगुणी, पंचगुणी आदि अविभाग प्रतिच्छेदों को धारण करते हुए वर्गणायें होती हैं सो चौथी पाचवीं स्पर्धक की जाननी। प्रथम स्पर्धक का नाम जघन्य स्पर्धक है क्योंकि उसमें अन्य सर्व स्पर्धको से कम शक्ति के अंश हैं। ऐसे ही पूर्व स्पर्धक से उत्तर स्पर्धक मे शक्ति के अविभाग प्रतिच्छेद अनन्तानन्त बढ़ते हैं। इस प्रकार जघन्यपने अभव्यों से अनन्त गुणे और उत्कृष्टपने सिद्धों के अनन्तवें भाग स्पर्धकों का एक सयम प्रबद्ध होता है। एक जीव के एक समय में अनन्तानन्त स्पर्धकों का उदय होता है। पिण्ड की अपेक्षा से उसे एक समय प्रबद्ध कहते हैं।

यहाँ यह विशेष बात ध्यान रखने योग्य है कि प्रत्येक वर्गणा में वर्गों की संख्या जघन्यपने अभव्यों से अनन्तगुणी और उत्कृष्टपनें सिद्धो के अनन्तवें भाग होती है। अर्थात् एक वर्गणामे कम से कम इतने वर्ग पाये जाते हैं। तथा इतने ही अर्थात् जघन्यपने अभव्यो से अनन्त गुणे और उत्कृष्टपनें सिद्धों के अनन्तवें भाग वर्गणाओ का एक स्पर्धक होता है और इतने ही अर्थात् जघन्यपने अभव्यों से अनन्तगुणे और उत्कृष्टपने सिद्धों के अनन्तवें भाग स्पर्धकों का एक समय प्रबद्ध होता है।

(47) **शंका**- औदारिक, वैक्रियिक व आहारक शरीरो के बध, उदय व सत्ता को भी स्पष्ट कीजिए ?

समाधान- औदारिक, वैक्रियिक व आहारक शरीरों के ग्रहण के प्रथम समय से लगाकर अपनी आयु का अन्त समय तक शरीर नामा नामकर्म के उदय से सयुक्त जीव, समय-समय प्रति एक एक समय प्रबद्ध को बाधता है अर्थात् पुद्गल वर्गणाओं को (आहारवर्गणा) उस शरीर रूप परिणमाता है। इनका उदय शरीर ग्रहण का प्रथम समय मे बधा जो समय प्रबद्ध उसका तो पहला निषेक उदय होता है और दूसरे समय मे पहले समय में बधा था जो समय प्रबद्ध उसका तो दूसरा निषेक और दूसरे समय बधा जो समय प्रबद्ध उसका पहला निषेक इस प्रकार दो निषेक उदय मे आते हैं। इसी प्रकार तीसरे आदि समयों में एक एक बढता निषेक उदय होता है। ऐसे क्रम से अन्त समय में उदय और सत्त्व [सत्ता]

स्वय दोनों किंचित ऊन डेढ़ गुण हानि आयाम करि गुणित समय प्रबद्ध प्रमाण होता है। इसी प्रकार आहारक शरीर में शरीर ग्रहण के प्रथम समय से लगाकर अपनी अन्तर्मूहुर्त मात्र स्थिति के अन्त समय में किंचित ऊन डेढ़ गुण हानि आयाम कर गुणित समय प्रबद्ध द्रव्य का उदय और सत्त्व रूप संचय युगपत होता है।

(48) शंका- इन उपर्युक्त समय प्रबद्धों का स्थितिबध के बारे मे भी स्पष्ट कीजिए ?

समाधान- शरीर ग्रहण का प्रथम समय में जो समय प्रबद्ध बंधा था उसका स्थिति बंध सम्पूर्ण आयु मात्र होता है। दूसरे समय में जो समय प्रबद्ध बंधा उसका स्थिति बंध एक समय कम अपना आयु प्रमाण होता है। तीसरे समय में जो समय प्रबद्ध बधा उसका स्थिति बंध दो समय कम अपना आयु प्रमाण होता है। इसी प्रकार चौथा आदि उत्तरोत्तर समयों में बन्धे जो समय प्रबद्ध उनका स्थिति बंध एक एक-समय घटता जानना और अन्तिम समय बधा समयप्रबद्ध का स्थिति बंध एक समय मात्र है। ऐसे जिस समय प्रबद्ध की जितनी स्थिति होती है उस समय प्रबद्ध की उतनी उतनी स्थिति मात्र निषेक रचना जाननी और अन्तिम समय में बधा समय प्रबद्ध की स्थिति एक समय की कही सो निषेक (सम्पूर्ण) समय प्रबद्ध मात्र जानना और अन्त में गलितावशेष (बचे हुए) समयप्रबद्ध किंचित ऊन डेढ गुण हानि मात्र सत्त्व रूप इकट्ठा होता है।

(49) शंका- तैजस और कार्माण शरीरों के समय प्रबद्ध में जो विशेषता है सो बताइये ?

समाधान- तैजस और कार्माण शरीर की अपेक्षा जो समय समय प्रति बंधे समय प्रबद्धो का एक एक निषेक इकट्ठे होकर विवक्षित एक समय मे समय प्रबद्ध मात्र उदय होता है उसी को कहते हैं-

तैजस और कार्माण शरीर की अपेक्षा अनादि बंध का निमित्त कर बंधा विवक्षित समय प्रबद्ध ताका तिस काल मे अन्त निषेक उदय होता है। तिसही काल में उसके अनन्तर बंधा समय प्रबद्ध का अन्तत: दूसरा निषेक उदय होता है। और उसके अनन्तर बंधा समय प्रबद्ध का अन्तत: तीसरा निषेक उदय होता है। ऐसे चौथे आदि समयों में बधे समय प्रबद्धों का अन्तत: चौथा आदि निषेकों का उदय क्रमकर आबाधा काल रहित बिवक्षित स्थिति जितने समय उतने स्थान जाकर जो समय प्रबद्ध बधा उसका आदि निषेक उदय होता है। ऐसे सबों को जोड़ने पर विवक्षित एक समय प्रबद्ध का उदय होता है।

(50) शंका- औदारिक, वैक्रियिक, आहारक और तैजस कार्माण शरीर के सयम प्रबद्ध में क्या विशेषता हुई ?

समाधान- चूकि औदारिक, वैक्रियिक और आहारक इन तीन शरीरो का जीव के साथ अनादि सम्बन्ध नहीं हैं अतः इनका प्रति समय एक समय प्रबद्ध उदय में नहीं आता। प्रारम्भ में तो इनका एक एक ही निषेक उदय में आता है, जबकि तैजस और कार्माण शरीर का अनादि से बन्ध होने के कारण इनका प्रतिसमय एक एक समयप्रबद्ध उदय में आता ही रहता है। यह विशेषता है। यह जीव प्रति समय अर्थात् समय समय प्रति एक समय प्रबद्ध को बाँधता है और एक समय प्रबद्ध को छोडता है अर्थात् निर्जरा करता है और किंचित ऊन डेढ़ गुण हानि आयाम करि गुणित समय प्रबद्ध हमेशा सत्ता में बने रहते हैं सो यह सिद्धान्त तैजस और कार्माण शरीर मे ही मुख्यतया लागू होता है अन्य शरीरो में अन्त मे लागू होता है।

अभ्यास–माला

(1) औदारिक आदि शरीरों के वर्ग, वर्गणा, स्पर्धक और समय प्रबद्ध को स्पष्ट कीजिए ?

(2) वर्ग किसे कहते हैं ?

(3) वर्गणा का क्या अभिप्राय है ?

(4) स्पर्धक किसे कहते हैं ?

(5) एक वर्ग मे कितने अविभाग प्रतिच्छेद होते हैं ?

(6) एक वर्गणा में कितने वर्ग होते हैं ?

(7) एक स्पर्धक मे कितनी वर्गणाये होती हैं ?

(8) एक समय प्रबद्ध में कितने स्पर्धक होते हैं ?

(9) जघन्य स्पर्धक किसे कहते हैं ?

(10) औदारिक, वैक्रियिक व आहारक शरीरो के बध, उदय व सत्ता को स्पष्ट कीजिए ?

(11) उपर्युक्त समय प्रबद्धों का स्थिति बंध के बारे में स्पष्ट कीजिए ?

(12) तैजस और कार्माण शरीरों के समय प्रबद्ध में जो विशेषता है उसको बताइये ?

(13) औदारिक, वैक्रियिक आहारक और तैजस कार्माण शरीर के समय प्रबद्धो मे क्या विशेषता है ?

नवाँ अध्याय

[यहाँ तक केवलज्ञान की सूक्ष्मता के नो बिन्दुओं में से जिन चार बिन्दुओं का वर्णन हुआ उनका संक्षिप्त में विवरण निम्न प्रकार है।]

(1) प्रथम बिन्दु- सूई के अग्रभाग आकाश क्षेत्र में सूक्ष्मनिगोदिया जीव कितने हैं ? इसका उत्तर आचार्यो ने तीन प्रकार से दिया है।

(अ) संक्षेप रुचिवाले शिष्यों के लिए- सूई के अग्रभाग आकाश क्षेत्र मे पाये जाने वाले जीवों के अनन्तवें भाग के भी अनन्तवें भाग में इतने जीव है कि उतने जीव ही तीन कालों में मोक्ष जावेंगे।

(ब) मध्यम रुचिवाले शिष्यों के लिए- सूई के अग्रभाग आकाश क्षेत्र में असख्यात लोक प्रमाण तो सूक्ष्म स्कन्ध हैं। प्रत्येक स्कन्ध में असंख्यात लोक प्रमाण अन्डर हैं। प्रत्येक अन्डर में असख्यात लोक प्रमाण आवास हैं प्रत्येक आवास मे असंख्यात लोक प्रमाण पुलवी हैं। और प्रत्येक पुलवी में असख्यात लोक प्रमाण निगोद शरीर हैं अर्थात् पाच जगह असख्यात लोक प्रमाण, असख्यात लोक प्रमाण सख्या रखकर उनको परस्पर गुणा करने पर जो सख्या आवे उतने तो सूक्ष्म निगोद शरीर (असंख्यातासंख्यात लोक प्रमाण) हैं तो एक निगोद शरीर मे कितने जीव है सो बताते हैं-

(क) "एक निगोद शरीर में ऐते जीव बरवान,
तीन काल के सिद्ध सब एक अशं परिमाण।
बढै न सिद्ध अनन्तता घटै न राशि निगोद,
जैसी की तैसी रहे यह जिन वचन विनोद॥"

वनारसी विलास (97-98)

(ख) तीन तेरह का सिद्धान्त से समझाया अर्थात् संसार राशि तेरह और सिद्ध राशि तीन है। यह अनुपात अनादि काल से है और अनन्त काल तक रहेगा।

(ग) स्याद्वाद मंजरी पृ०स० 259 गाथा नं० 29 की टीका "जितने जीव आज तक मोक्ष गये और आगे जाने वाले हैं, वे निगोद जीवों के अनन्तवें भाग भी न हुए हैं और न होंगे।

(घ) गोम्मटसार जीव कांड गाथा नं० 196 एवं उसकी टीका के आधार से बताया कि जीवों की संख्या अक्षय अनन्त हैं अत: छ महिना और आठ समय में छहसो आठ जीव अनादिकाल से मोक्ष जा रहे हैं ओर अनन्त काल तक जाते रहेंगे फिर भी जीव राशि घटेगी नहीं।

(ङ) फिर वृहद् द्रव्यसग्रह गाथा 37 की संस्कृत टीका के आधार से सिद्ध किया कि अनादि काल से जीव मोक्ष जा रहे हैं फिर भी संसार में जीवों की कमी नहीं देखी जाती है। अभव्य जीवों की तो मुक्ति नहीं होती है साथ ही अभव्य जीवों के समान दूरानुदूर भव्य जीवों का भी मोक्ष नहीं है। दूरानुदूर भव्य भी अक्षय अनन्त है।

(च) ज्ञानानन्द श्रावकाचार पृष्ट संख्या 168 पर भी ऐसा ही वर्णन है।

(छ) पद्मद्रह आदि छहों द्रहों में से गंगा सिंधु आदि चौदह नदियाँ अनादिकाल से निकल रही हैं फिर भी उन द्रहों का पानी घटता नहीं है।

(ज) पूज्य कानजी स्वामी के शब्दों में 'द्रव्य दृष्टि जिनेश्वर पर्याय दृष्टि विनश्वर' प्रथम सस्करण के बोल न० 373, 485, 592, 995, 1026 आदि के द्वारा भी यही सिद्ध किया कि ससार में जीव घटते नहीं।

(स) विस्तार रुचिवाले शिष्यों के लिए– कहा था कि एक निगोद शरीर में जघन्यपनें सिद्धो से अनन्तवर्ग स्थान और उत्कृष्टपने भूत काल के समयो से अनन्त वर्गस्थान जीव पाये जाते हैं। इसमे एक वर्गस्थान की कितनी कीमत हैं सो भी जाननी चाहिए तथा फिर इसका सार बताया कि तीन काल के सिद्धो के अनन्तगुणे से एक निगोद शरीर के जीवों का अनन्तवाँ भाग अनन्तगुणा है।

(2) दूसरा बिन्दु– दूसरे बिन्दु में बताया कि एक जीव के एक प्रदेश पर औदारिक शरीर की वर्गणा और वर्ग कितने हैं ? फिर पूरे एक आत्मा के लोक प्रमाण असख्यात प्रदेशो पर कितने हैं ? फिर एक निगोद शरीर में पाये जाने वाले अक्षय अनन्त जीवो के साथ औदारिक शरीर की कितनी वर्गणा एव वर्ग हैं। फिर सूई के अग्रभाग आकाश क्षेत्र में पाये जाने वाले जीवों के कुल जीवों के साथ पूर्व

कथित राशि से असंख्यात लोक गुणे औदारिक शरीर की वर्गणा एवं वर्ग हैं। फिर पूरे लोक में पूर्व कथित राशि से लोक प्रमाण असंख्यात गुणे (पूर्व कथित राशि से) औदारिक शरीर की वर्गणा एवं वर्ग हैं यह बताया।

(3) तीसरे बिन्दु में बताया कि औदारिक शरीर से अनन्तगुणे तैजस शरीर के वर्गणा एवं वर्ग हैं। सूत्र भी है 'अनन्तगुणे परे'।

इस प्रकार आत्मा के प्रत्येक प्रदेश पर, पूरी आत्मा पर, एक निगोद शरीर में पाये जाने वाले अक्षय अनन्त जीवों के साथ एव सूई के अग्रभाग आकाश क्षेत्र में पाये जाने वाले कुल जीवों के साथ तथा पूरे लोक में पाये जाने वाले सूक्ष्म निगोदिया जीवों के साथ औदारिक शरीर से अनन्तगुणे तैजस शरीर की वर्गणा एव वर्ग समझना चाहिए।

(4) चौथे बिन्दु में बताया कि आत्मा के प्रत्येक प्रदेश पर उसकी लोकप्रमाण असंख्यात प्रदेशी पूरी आत्मा पर, एक निगोद शरीर में पाये जाने वाले अक्षय अनन्त जीवों के साथ, सूई के अग्रभाग आकाश क्षेत्र में पाये जाने वाले जीवो के साथ तथा पूरे लोक में पाये जाने वाले सूक्ष्म निगोदिया जीवों के साथ तैजस शरीर से भी अनन्तगुणे कार्माण शरीर की वर्गणा एवं वर्ग पाये जाते हैं।

अभ्यासमाला

(1) केवल ज्ञान की सूक्ष्मता के नो बिन्दुओं मे से अब तक कितने बिन्दुओ का वर्णन हो चुका है ?

(2) प्रथम बिन्दु क्या है ?

(3) प्रथम बिन्दु का संक्षिप्त रुचिवाले शिष्यों के लिए आचार्यों ने क्या उत्तर दिया ?

(4) प्रथम बिन्दु का ही मध्यम रुचि वाले शिष्यों के लिए आचार्यों ने क्या उत्तर दिया ?

(5) एक निगोद शरीर में कितने जीव हैं ? बनारसी विलास में इस सम्बन्ध में क्या कहा है ?

6. स्याद्वादमंजरी में एक निगोद शरीर में कितने जीव बताये हैं ?
7. तीन-तेरह का सिद्धान्त क्या है ?
8 वृहद् द्रव्य सग्रह गाथा नं० 37 की टीका में क्या आया है ?
9 गोम्मट सार जीव काण्ड गाथा न० 196 एवं उसकी टीका में क्या वर्णन है ?
10 पद्म द्रह आदि द्रहों के बारे में क्या बताया है ?
11 पूज्यकानजी स्वामी ने 'द्रव्य दृष्टि जिनेश्वर पर्याय दृष्टि विनश्वर' नामक पुस्तक में जीवों के बार में क्या विचार प्रकट किए हैं ?
12 विस्तार रुचि वाले शिष्यों के लिए एक निगोद शरीर में कितने जीव बताये ?
13 विस्तार रुचि वाले शिष्यों के लिए जो आचार्यों ने कहा है उसका सार क्या है ?
14 दूसरे बिन्दु मे किसका वर्णन है ?
15 तीसरे बिन्दु में क्या वर्णन है ?
16 चौथे बिन्दु मे क्या कहा ?

दसवाँ अध्याय

(5) [केवलज्ञान की सूक्ष्मता के नो बिन्दुओं में से चार बिन्दुओं का कथन करके अब पाचवें बिन्दु का वर्णन करते हैं-

विस्रसोपचय (कर्म बनने के उम्मीदवार)-

औदारिक शरीर, तैजस शरीर और कार्माण शरीर की अनन्तानन्त वर्गणाओं के अनन्तानन्त गुणे कर्म परमाणुओं (वर्ग) में से प्रत्येक कर्म परमाणु पर सम्पूर्ण अक्षय अनन्त जीवों से अनन्तगुणे विस्रसोपचय (कर्म बनने के उम्मीदवार) पाये जाते हैं।

जब एक कर्म-नोकर्म परमाणु पर सम्पूर्ण जीवो से अनन्तानन्तगुणे विस्रसोपचय कर्म परमाणु पाये जाते हैं तो एक जीव के सम्पूर्ण नोकर्म व कर्म परमाणुओं पर पूर्व कथित राशि से अनन्तानन्त गुणे विस्रसोपचय पाये जाते हैं। और जब एक जीव के नोकर्म और कर्म परमाणुओं पर इतने विस्रसोपचय परमाणु पाये जाते हैं तब एक निगोद शरीर के अक्षय अनन्त जीवों के आत्म प्रदेशों पर पूर्व कथित राशि से अक्षय अनन्तगुणे विस्रसोपचय पाये जायेगे और फिर सूई के अग्रभाग जितने आकाश क्षेत्र में असख्यातासंख्यात लोक प्रमाण निगोद शरीरों के जीवों के कर्म व नोकर्म परमाणुओं पर पूर्व कथित राशि से असंख्यातासंख्यात लोक प्रमाण गुणे अनन्तानन्त विस्रसोपचय पुद्गल परमाणु पाये जाते हैं। तब फिर पूरे लोक में सूक्ष्म निगोदिया जीवों के साथ पूर्वकथित राशि से लोक प्रमाण असख्यात गुणे विस्रसोपचय पाये जाते हैं।

'विस्रसा' कहिए अपने ही स्वभाव करि आत्मा के परिणाम बिना ही 'उपचीयते' कहिये कर्म नोकर्म रूप बिना परिणमे ऐसे कर्म नोकर्म रूप स्कन्ध में स्निग्ध रूक्ष गुण का विशेष कर मिली एक सम्बन्ध रूप होई ते विस्रसोपचय कहिए। विस्रसोपचय परमाणु कर्म नोकर्मरूप होने के योग्य हैं। वर्तमान कर्म नोकर्म रूप परिणमें नहीं हैं।

(51) शंका- एक जीव के साथ कुल कितने विस्रसोपचय रूप परमाणु पाये जाते हैं ?

समाधान- जब एक कर्म वा नोकर्म सम्बन्धी परमाणु के प्रति, जीव राशि से अनन्तानन्त गुणे विस्रसोपचय परमाणु पाये जाते हैं तो किंचित ऊन डेढ़ गुण हानि आयाम करि गुणित समय प्रबद्ध प्रमाण सर्व कर्म वा नोकर्म के परमाणु पे कितने विस्रसोपचय परमाणु पाये जाते हैं। ऐसे त्रैराशिक गणित करना। यहाँ प्रमाण राशि एक परमाणु, फल राशि जीवों से अनन्त गुणी राशि, इच्छा राशि किंचित ऊन डेढ़ गुण हानि आयाम करि गुणित समय प्रबद्ध प्रमाण। सो इच्छा राशि को फलराशि कर गुणे प्रमाण राशि का भाग देने पर लब्ध राशि सर्व विस्रसोपचय परमाणु का प्रमाण जानना।

(52) शंका- त्रैराशिक गणित का क्या स्वरूप है ?

समाधान- त्रैराशिक गणित में एक प्रमाण राशि एक फल राशि और एक इच्छा राशि ऐसे तीन राशियाँ होती हैं। जैसे- दो रुपयों की कोई वस्तु सोलह किलो आती है तो आठ रुपयों की कितनी आवेगी ? यहाँ प्रमाण राशि दो, फलराशि सोलह और इच्छा राशि आठ हुई। सो फल राशि को इच्छा राशि से गुणा कर प्रमाण राशि का भाग देने पर लब्धराशि प्रमाण उत्तर होता है। सो यहाँ फलराशि सोलह (16) को इच्छा राशि आठ (8) से गुणा करने पर एक सौ अट्ठाइस (128) होते है, इसमे प्रमाण राशि दो का भाग देने पर चौसंठ (64) किलो आते हैं। इस तरह जानना। इसी प्रकार अन्यत्र भी लगा लेना।

(53) शंका- इसका आगम प्रमाण क्या है ?

समाधान- "पुनः औदारिक शरीर, तैजस्क शरीर और कार्माण शरीर के विस्रसोपचयो का जोकि प्रत्येक सर्वजीवों से अनन्त गुणे हैं और प्रत्येक परमाणु पर उतने ही प्रमाण हैं। उनकी भी उसी ही क्षेत्र में अवगाहना होती है।" (धवला पुस्तक 4 पृष्ट स० 24)

अभ्यास–माला

(1) केवलज्ञान की सूक्ष्मता के नो बिन्दुओं में से पाचवाँ बिन्दु किससे सम्बन्धित है ?

(2) प्रत्येक कर्म और नोकर्म परमाणु के साथ कितने विस्रसोपचय पाये जाते हैं ?

(3) एक जीव के सम्पूर्ण कर्म और नोकर्म परमाणुओं के साथ कितने विस्रसोपचय पाये जाते हैं ?

(4) विस्रसोपचय का क्या अर्थ है ?

(5) त्रैराशिक गणित का स्वरूप क्या है ?

ग्यारहवाँ अध्याय

(6) [केवलज्ञान की सूक्ष्मता के नो बिन्दुओं में से पाँच बिन्दुओं का वर्णन करके अब छठे बिन्दु का वर्णन करते हैं।]

छठे बिन्दु में बताते हैं कि सूक्ष्म निगोदिया जीवों के अलावा सूई के अग्रभाग आकाश क्षेत्र में अन्य सूक्ष्म जीव कितने कितने पाये जाते हैं।

सूक्ष्म निगोद जीवों के अलावा सूई के अग्रभाग जितने आकाश क्षेत्र मे असख्यात लोक प्रमाण सूक्ष्म अग्निकायिक (तैजस्कायिक) जीव स्थित हैं और उनसे विशेष अधिक (असंख्यात लोकवें भाग अधिक) असंख्यात लोक प्रमाण सूक्ष्म पृथ्वीकायिक जीव भी पाये जाते हैं और सूक्ष्म पृथ्वीकायिक जीवों से कुछ अधिक (असंख्यात लोकवें भाग अधिक) असंख्यात लोक प्रमाण सूक्ष्म जलकायिक जीव भी वहीं पाये जाते हैं। और सूक्ष्म जलकायिक जीवों से कुछ अधिक (असख्यात लोकवे भाग अधिक) असख्यात लोक प्रमाण सूक्ष्म वायुकायिक जीव भी उसी क्षेत्र में पाये जाते हैं।

जिस प्रकार सूई के अग्रभाग आकाश क्षेत्र में पाये जाने वाले प्रत्येक सूक्ष्म निगोदिया जीव के प्रत्येक आत्म प्रदेश पर औदारिक शरीर, तैजस शरीर और कार्माण शरीर की वर्गणा, वर्ग पाये जाते हैं और प्रत्येक कर्म नो कर्म परमाणु के साथ जीवों से अनन्तगुणे विस्रसोपचय पाये जाते हैं उसी प्रकार इन सभी असख्यात लोक प्रमाण सूक्ष्म अग्निकायिक, सूक्ष्म पृथ्वीकायिक, सूक्ष्म जलकायिक और सूक्ष्म वायुकायिक जीवो के साथ भी लगा लेना चाहिए।

(54) शंका- *आगम प्रमाण भी दीजिए-*

समाधान- ''निगोदजीवों के अलावा उसी सूई के अग्रभाग जितने आकाश मे तैजस्कायिक जीव असंख्यात लोक प्रमाण हैं। तैजस्कायिक जीवों से पृथ्वीकायिक जीव विशेष अधिक है। पृथ्वीकायिक जीवों से जलकायिक जीव विशेष अधिक हैं। जलकायिक जीवों से वायुकायिक जीव विशेष अधिक हैं।'' (धवलापुस्तक 4 पृष्ट 25)

(55) शंका- इस विषय को और अधिक स्पष्ट कीजिए।

समाधान- शलाका त्रय निष्ठापन की विधि से सामान्यपने लोकका साढे तीन बार व विशेषपनें किंचित ऊन चार बार शलाका राशि पूर्ण करने तक परस्पर गुणा करने से तैजस्कायिक जीवो का प्रमाण आता है। उस तैजस्कायिक जीव राशि में यथायोग्य छोटा असख्यात लोक का भाग देने से जो प्रमाण आवे उस भाग को तैजस्कायिक जीव राशि में मिला देने पर पृथ्वीकायिक जीवों का प्रमाण निकलता है और पृथ्वी कायिक जीवों के प्रमाण में यथायोग्य छोटा असख्यात लोकका भाग देने पर जो लब्ध आवे उस एक भाग को पृथ्वीकायिक जीवों के प्रमाण मे मिला देने पर जलकायिक जीवों का प्रमाण निकलता है। तथा जलकायिक जीवो के प्रमाण मे यथायोग्य छोटा असंख्यात लोक का भाग देने पर जो लब्ध आवे उस एक भाग को जलकायिक जीवराशि में मिलाने से वायुकायिक जीवो का प्रमाण आता है।

(56) शंका - शलाकात्रय निष्ठापन का गणित क्या है ? स्पष्टतया समझाइये।

समाधान- यहाँ पर चूँकि लोक का शलाकात्रय निष्ठापन करना है इसलिए लोक का शलाकात्रय निष्ठापन विधि को समझाते हैं। वैसे किसी भी छोटी या बडी राशि का शलाका त्रय निष्ठापन किया जा सकता है। उसी को बताते हैं।

लोकाकाश प्रदेशो के बराबर तीन राशि करना। एक शलाका राशि, एक विरलन राशि, एक देयराशि। विरलन राशि का विरलन करना अर्थात् बिखेरकर एक-एक जुदा जुदा करना और एक एक विरलन राशि के ऊपर एक एक देयराशि (लोक प्रमाण प्रदेशों की सख्या) धरना फिर देय राशियों को आपस मे परस्पर गुणा करना अर्थात् लोक प्रमाण राशि को लोक प्रमाण बार अलग अलग रख कर आपस मे परस्पर गुणा करना। इस प्रकार गुणा कर शलाका राशि (लोक प्रमाण प्रदेशो) में से एक घटाना। फिर जो गुणा करके राशि प्राप्त हो उसकी दो राशि एक विरलन राशि और एक देयराशि करना। विरलन राशि का विरलन कर (बिखेरकर) प्रत्येक एक के ऊपर देयराशि रखकर समस्त देय राशियों का परस्पर आपस में एक दूसरे से गुणा करना और शलाका राशि में से पहले एक घटाया था अब एक और घटाना। अब जो दूसरी बार राशि गुणा करके उत्पन्न हुई उस प्रमाण राशि को पुनः विरलन और देय राशि करना। पूर्वोक्त विधि के अनुसार विरलन राशि को बिखेरकर और देय राशि को एक एक विरलन राशि पर देकर परस्पर आपस में गुणा करना। और शला का राशि में से एक और घटाना इस ही क्रम से

नवीन नवीन गुणनफल प्रमाण विरलन राशि और देयराशि के क्रम से एक एक बार देय राशियों का गुणा करने पर शलाका राशि में से एक एक घटाते घटाते जब शलाका राशि (लोक प्रमाण प्रदेश) समाप्त हो जाये तब उस समय जो अन्तिम गुणनफल रूप महाराशि उत्पन्न हो उस महाराशि प्रमाण तीन राशि करना। एक शलाका राशि, एक विरलन राशि, एक देय राशि। विरलन राशि को बिखेरकर प्रत्येक एक के ऊपर देयराशि रखकर परस्पर गुणा करना और फिर दूसरी महाराशि प्रमाण शलाका राशि में से एक घटाना। फिर जो गुणा करने पर परिमाण आवे उसका विरलन कर प्रत्येक के ऊपर उस ही प्रमाण देयराशि रखकर परस्पर गुणा करना तब फिर एक और दूसरी महाशलाका राशि में से घटाना। ऐसे विरलन देयराशि कर गुणा करते करते जाना और महाशलाका राशि में से एक एक घटाते जाना। ऐसा करते करते जब दूसरी बार की हुई महत् शलाका राशि भी समाप्त (निष्ठापन) हो जावे तब जो कुछ अन्तिम गुणनफल का परिणाम आवे उस गुणन फल रूप महाराशि प्रमाण पुनः विरलन देय और शलाका ये तीन राशि करना। विरलन राशि का विरलन कर प्रत्येक एक के ऊपर देय राशि रखकर देय राशियों का परस्पर गुणा कर तीसरी महाशलाका राशि में से एक घटाना। ऐसे करने पर जो महागुणन फल राशि प्राप्त हो उसका पुनः विरलन कर प्रत्येक के ऊपर तिस ही प्रमाण देयराशि रख परस्पर गुणा करना, तब फिर तीसरी महाशलाका राशि में से एक और घटाना। ऐसे विरलन देयराशि कर गुणा करते करते जाना और तीसरी महाशलाका राशि में से एक-एक घटाते जाना। ऐसा करते करते जब तीसरी बार भी की हुई महत् शलाका राशि भी समाप्त हो जाय तब फिर जो अन्तिम गुणन फल प्रमाण महाराशि आवे सो शलाका त्रय निष्ठापन कर आई हुई समझना।

अभ्यास-माला

(1) सूई के अग्रभाग आकाश क्षेत्र मे सूक्ष्म निगोदिया जीवों के अलावा अन्य कौन कौन से कितने कितने सूक्ष्म जीव पाये जाते हैं ?

(2) शलाका त्रय निष्ठापन का गणित क्या है ?

(3) लोक का साढ़े तीन बार शलाका त्रय निष्ठापन करने पर कौन से जीवों की संख्या आती है ?

(4) अग्निकायिक जीवों से पृथ्वीकायिक जीव कितने अधिक हैं ?

(5) पृथ्वीकायिक जीवों से जलकायिक जीव कितने अधिक हैं ?

(6) जलकायिक जीवो, से वायुकायिक जीव कितने अधिक हैं ?

बारहवाँ अध्याय

(7) अब सातवें बिन्दु का वर्णन करते हैं-

[अब तक केवलज्ञान की सूक्ष्मता के नो बिन्दुओं में से छह बिन्दुओं तक सूक्ष्म जीवों एवं उनके साथ औदारिक शरीर, तैजस शरीर, कार्माण शरीर तथा उनके साथ विस्त्रसोपचय का वर्णन किया। अब सातवें बिन्दु में बताते हैं कि जीवों के अलावा उस सूई के अग्रभाग आकाश क्षेत्र में पुद्गल परमाणु एवं उनके स्कन्ध भी पाये जाते हैं ?]

सूई के अग्रभाग जितने आकाश क्षेत्र में अनन्त पुद्गल परमाणु स्वतन्त्रपने स्थित हैं। और उसी क्षेत्र में अनन्त स्कन्ध दो दो परमाणुओं की सख्या वाले स्थित हैं और उसी क्षेत्र मे तीन तीन परमाणुओ के अनन्त स्कन्ध स्थित हैं। इसी प्रकार एक एक परमाणु अधिक वृद्धिगत् स्कन्ध वहीं पर मौजूद हैं अर्थात् जघन्य सख्यात से लेकर उत्कृष्ट सख्यात तक के जितने भी भेद हैं उतने ही भेदों के अनन्त अनन्त स्कध उसी क्षेत्र में पाये जाते है। उसी प्रकार जघन्य परीत असख्यात से लेकर उत्कृष्ट असंख्यातासख्यात लोक के जितने भी भेद हैं, उन सब भेदों के अनन्त स्कन्ध भी उसी क्षेत्र मे स्थित हैं। इसी प्रकार जघन्य परीत अनन्त से लेकर यथायोग्य मध्यम अक्षय अनन्तानन्त तक के जितने भी भेद हैं उन सभी भेदों के अनन्त अनन्त स्कंध उसी क्षेत्र में स्थित हैं।

(57) शंका - उक्त कथन का आगम प्रमाण क्या है ?

समाधान- ''तथा सूई के उसी अग्रभाग जितने आकाश क्षेत्र में अनन्तानन्त परमाणु **वापुली** (स्वतत्रपनें) तिष्ठे हैं, अनन्तानन्त स्कंध दो दो परमाणु वाका तिष्ठे हैं, ऐसे हैं। एक एक परमाणु अधिक अधिक स्कन्ध, तीन परमाणु वाका स्कन्ध सो लगाकर अनन्त परमाणु, वाका स्कन्ध पर्यन्त अनंत जाति के स्कन्ध, सो भी अनन्तानन्त, सूई के अग्रभाग विषै तिष्ठे हैं।'' ज्ञानानन्द श्रावकाचार पृ० 189

अब विशेषपनें आकाश के **एक प्रदेश** की अवगाहन शक्ति के महात्म्य का वर्णन करते हैं-

तीन लोक में जितने भी परमाणु स्वतंत्रपनें स्थित हैं, ठसाठस भरे हुए हैं उन सब परमाणुओं को आकाश का एक प्रदेश अवगाहना दे सकता है। साथ ही जघन्य संख्यात दो से लेकर यथायोग्य मध्यम अक्षय अनन्तानन्त तक के सभी भेदों के सूक्ष्म स्कन्ध लोकाकाश में ठसाठस भरे हुए हैं उन सबको भी आकाश का एक प्रदेश अवगाहना दे सकता है। और यदि उनसे भी अनन्तगुणे सूक्ष्म स्कन्ध होते तो वे भी आकाश के एक प्रदेश में समा सकते हैं।

(58) शंका- अब उक्त कथन का आगम प्रमाण प्रस्तुत करते हैं-

"जावदियं आयासं अविभागी पुग्गलाणु वट्ठद्धं।

तं खू पदेसं जाणे, सव्वाणुट्ठाण दाण रिहं ॥ 27 ॥" 'द्रव्यसंग्रह'

अन्वयार्थ- [जावदियं] जितना (आयासं) आकाश (अविभागी पुग्गलाणुवट्ठद्ध) जिसका फिर खण्ड न हो सके ऐसे पुद्गल परमाणु द्वारा रोका जाय (तं) उसको (खु) निश्चय से (सव्वाणुट्ठाणदाणरिहं) समस्त प्रकार के अणुओं को स्थान देने में समर्थ (पदेसं) प्रदेश (जाणे) जानना चाहिए।

भावार्थ- आकाश के जितने क्षेत्र में पुद्गल का सबसे छोटा टुकड़ा (परमाणु) रहता है उतने क्षेत्र को प्रदेश कहते हैं। इस प्रदेश में धर्म और अधर्म द्रव्य के एक एक प्रदेश एक कालाणु और पुद्गल के संख्यात, असंख्यात और अनन्त अणु भी लोहे में आग के समान एक क्षेत्रावगाही होकर समा जाते हैं। इसलिए प्रदेश को सर्व अणुओं को स्थान देने योग्य कहा है।

(59) शंका- संख्यात, असख्यात और मध्यम अनन्तानन्त के जितने भी भेद हैं उन सब भेदों के अनन्त अनन्त स्कन्ध सूई के अग्रभाग आकाश क्षेत्र में पाये जाते हैं। सो संख्यात असंख्यात एवं अनन्त के कितने कितने भेद हैं ? उनका दिग्दर्शन भी कराइये ताकि वास्तविक ज्ञान हो सके।

समाधान- जिसका आधार एक दो आदि संख्या होती है उसे संख्यामान कहा है। संख्यामान के मूल तीन भेद हैं और उत्तर भेद इक्कीस हैं। अर्थात् (1) संख्यात (2) असंख्यात और (3) अनन्त। इनमें से असंख्यात के तीन भेद हैं (1) परीत असंख्यात (२) युक्त असंख्यात, (3) असंख्यातासंख्यात। अनन्त के भी तीन भेद हैं (1) परीत अनन्त (२) युक्त अनन्त और (3) अनन्तानन्त।

संख्यात एक ही प्रकार का है। इस प्रकार सख्यात का एक भेद और असंख्यात और अनन्त के तीन तीन भेद। सब मिलाकर संख्या मान के सात भेद हुए। इन सातो मे से प्रत्येक के जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट की अपेक्षा तीन तीन भेद हैं। इस प्रकार सख्यामान के 21 भेद हुए। जो ये हैं:- (1) जघन्य सख्यात (२) मध्यम सख्यात (3) उत्कृष्ट संख्यात (4) जघन्य परीत असंख्यात (5) मध्यम परीत असंख्यात (6) उत्कृष्ट परीत असंख्यात (7) जघन्य युक्त असख्यात (8) मध्यम युक्त असंख्यात (9) उत्कृष्ट युक्त असंख्यात (10) जघन्य असंख्याता-सख्यात (11) मध्यम असंख्याता संख्यात (12) उत्कृष्ट असंख्याता संख्यात (13) जघन्य परीत अनन्त (14) मध्यम् परीत अनन्त (15) उत्कृष्ट परीत अनन्त (16) जघन्य युक्त अनन्त (17) मध्यम युक्त अनन्त (18) उत्कृष्ट युक्त अनन्त (19) जघन्य अनन्तानन्त (20) मध्यम् अनन्तानन्त (21) उत्कृष्ट अनन्तानन्त।

जो प्रमाण दो तीन चार आदि सख्याओं से कहा जा सके उसे संख्यात कहते हैं। जो राशि इतनी बड़ी हो कि जिसे संख्याओं से कहना संभव नहीं, उसे असख्यात कहते हैं। और जो राशि इससे भी बहुत बड़ी हो और जिसकी सीमा का अन्त न हो, उसे अनन्त कहते हैं। इनमें से सख्यात राशि हमारे इन्द्रियों का विषय है। हम अक गणना के द्वारा उसे गिन सकते हैं और शब्दों के द्वारा उसे संज्ञा विशेष से कह सकते हैं। अतः वह श्रुतज्ञान का विषय है। किन्तु असंख्यात राशि को न हम शब्दो द्वारा कह ही सकते हैं और न अंकों द्वारा गिन ही सकते हैं। यह राशि तो अवधि ज्ञान का विषय है। अनन्त राशि अनन्त प्रमाण वाले केवल ज्ञान का विषय है उसे सर्वज्ञ के सिवाय और कोई नहीं जान सकता। अर्थात् श्रुत केवली उत्कृष्ट संख्यात तक को जान सकता है। सर्वावधि ज्ञान का विषय उत्कृष्ट असंख्यात तक का है। उसके बाद केवल ज्ञान ही जान सकता है जिसे अनन्त कहते हैं।

सख्यामान के 21 भेदों में प्रथम जघन्य संख्यात दो के अंक से प्रारम्भ होता है। चूँकि एक में एक का भाग देने पर अथवा एक को एक से गुणा करने पर कुछ भी हानि वृद्धि नहीं होती। इसलिए सख्या का प्रारम्भ दो से ग्रहण किया है। और एक को गणना शब्द का वाच्य माना है इसलिए जघन्य संख्यात का प्रमाण दो है।

एक घट को देखकर घट की प्रतीति तो होती है परन्तु उसके परिमाण की ओर द्रष्टा का लक्ष्य नहीं जाता। एकादि घटों के देखने पर ही उसके परिमाण की ओर लक्ष्य जाता है। विकल्प दो के होने पर ही होता है।

भावार्थः- एक केवल वस्तु की सत्ता को स्थापित करता है, भेद को सूचित नहीं करता। भेद की सूचना दो से प्रारंभ होती है। इसलिए दो को संख्यात का आदि माना है। इस प्रकार जघन्य संख्यात दो है।

तीन, चार, पाँच आदि से लेकर एक कम उत्कृष्ट संख्यात पर्यन्त के सम्पूर्ण भेदों को मध्यम संख्यात कहते हैं। इसके संख्यात ही भेद हैं।

एक कम जघन्य परीत असख्यात के प्रमाण को उत्कृष्ट संख्यात कहते हैं इसका एक ही भेद है। जघन्य परीत असंख्यात का ज्ञान करने के लिए एक जम्बूद्वीप प्रमाण एक लाख प्रमाण योजन व्यासवाला और गहराई का प्रमाण एक हजार प्रमाण योजन वाला एक गोल कुण्डा बनाओ। फिर इस कुण्ड को गोल सरसों से शिखाउ (पृथ्वी पर अन्न की राशि की तरह) तक भरना। गणित विधान के अनुसार इस प्रथम अनवस्था कुंड में छियालीस अंक प्रमाण अर्थात् 1997, 1129384, 5131636, 3636363, 6363636, 3636363, 6363636-4/11 इतनी सरसों समाई। किन्तु यहाँ पर अपूर्णाङ्क का ग्रहण नही करना।

अब इस अनवस्था कुंड में से समस्त सरसों को निकालकर मनुष्य बुद्धि द्वारा अथवा देव हस्तादिक द्वारा जम्बूद्वीप से प्रारम्भ करके एक एक सरसो, द्वीप में व एक समुद्र में अनुक्रम से डालते जायें।

मध्यलोक में असंख्यात द्वीप समुद्र हैं जिनमें सबके बीच में थाली के आकार जम्बूद्वीप है। इसका व्यास एक लाख योजन है, उसके चारो तरफ खाई की तरह लवण समुद्र है। जिसका वलय व्यास दो लाख योजन है। लवण समुद्र को चारों तरफ से घेर कर धातकीखंड द्वीप है। और धातकीखंड द्वीप के चारों तरफ कालोदधि समुद्र है। इस प्रकार द्वीप के आगे समुद्र और समुद्र के आगे द्वीप के क्रम से असंख्यात द्वीप समुद्र हैं। द्वीप की चौडाई से समुद्र की चौड़ाई दूनी है और समुद्र की चौडाई से आगे के द्वीप की चौडाई दूनी है। इसी प्रकार अन्त पर्यन्त जानना। किसी द्वीप का समुद्र की परिधि (गोलाई) के एक तट से दूसरे तट तक की चौडाई को सूची व्यास कहते हैं। जैसे लवण समुद्र का सूची व्यास 5 लाख योजन है। वलय व्यास को चार से गुणा करके तीन लाख घटाने पर सूची व्यास आता है।

इस प्रकार एक एक दाना एक एक द्वीप वा समुद्र में डालते डालते सब सरसों पूर्ण होकर जिस द्वीप वा समुद्र में अन्त की सरसो डली, वहीं से अर्थात् उसी द्वीप वा समुद्र से लगाकर जम्बूद्वीप पर्यन्त जितने द्वीप वा समुद्र है तिन सबनिका व्यास प्रमाण के समान की सूचीव्यास वाला और हजार योजन गहरा दूसरा अनवस्था कुंड बनाओ। और फिर इस दूसरे अनवस्था कुंड को भी सरसों से शिखाउ भरकर इस दूसरे अनवस्था कुड की सरसों को भी निकालकर जिस द्वीप वा समुद्र में पहले समाप्त हुई थी, उसके आगे एक सरसो द्वीप मे और एक समुद्र में डालते जाईए। जहाँ ये सरसों भी समाप्त हो जावें वहाँ उसी द्वीप वा समुद्र की सूची व्यास प्रमाण चौडा और हजार योजन गहरा तीसरा अनवस्था कुंड बनाकर उसे भी सरसो से शिखाउ तक भरना। और फिर इस तीसरे कुण्ड की भी सरसों निकालकर आगे के द्वीप समुद्र में एक एक डालते डालते जब सब सरसों समाप्त हो जाय तब पूर्वोक्त अनुसार चौथा अनवस्था कुड शिखाउ तक भरना। इस प्रकार प्रथम अनवस्था कुंड में 46 अंक प्रमाण सरसों माई थी उनके घन प्रमाण अनवस्था कुंड बनने पर अन्तिम जो महा अनवस्था कुंड बनेगा और उसमें शिखाउ तक जितनी सरसों आयेंगी वह जघन्य परीत असंख्यात का प्रमाण है। यहाँ यह भी जान लेना चाहिए कि प्रथम अनवस्था कुंड की सरसों से दूसरे अनवस्था कुड की सरसो कहीं ज्यादा संख्यात गुणी आयेगी। इसी प्रकार तीसरे अनवस्था कुंड की सरसो दूसरे अनवस्था कुंड की सरसों से संख्यात गुनी ज्यादा आवेगी। इसी प्रकार अगले अगले अनवस्था कुंड से पूर्व पूर्व का अनवस्था कुंड सख्यात गुणा छोटा है और अगला अगला अनवस्था कुंड पूर्व पूर्व कुंड से सख्यात गुणा ज्यादा बडा है। अन्तिम अनवस्था कुड की सरसो इतनी अधिक है कि पूर्व के समस्त अनवस्था कुडो में जितनी सरसो माई थी उनसे भी कहीं अधिक सख्यात गुणी ज्यादा है।

संख्यामान के मूल भेद सात कहे थे। और इन सातों के जघन्य, मध्यम उत्कृष्ट की अपेक्षा 21 भेद कहे थे। यहाँ पर आगे के मूल भेद के जघन्य भेद में से एक घटाने पर पिछले मूल भेद का उत्कृष्ट भेद होता है। जैसे जघन्य परीत असख्यात मे से एक घटाने से उत्कृष्ट संख्यात तथा जघन्य युक्त असंख्यात में से एक घटाने से उत्कृष्ट परीत असंख्यात होता है। इसी प्रकार अन्य जगह भी

जानना। जघन्य और उत्कृष्ट भेदों के बीच के सब मध्यम भेद कहलाते हैं। इस प्रकार मध्यम और उत्कृष्ट के स्वरूप जघन्य के स्वरूप जानने से ही मालुम हो सकते है। इसलिए अब आगे जघन्य भेदों का ही स्वरूप लिखा जाता है। अब आगे जघन्य युक्त असंख्यात का प्रमाण लिखते हैं।

जघन्य परीत असंख्यात प्रमाण दो राशि लिखना। एक विरलन राशि और दूसरी देयराशि। विरलन राशि का विरलन करना अर्थात् विरलन राशि का जितना प्रमाण है उतने एक एक लिखना और प्रत्येक एक के ऊपर एक एक देयराशि रखकर समस्त देयराशियों का परस्पर गुणन करने से जो गुणनफल हो उतना ही जघन्य युक्त असंख्यात का प्रमाण है।

भावार्थ- यदि जघन्य परीत असंख्यात का प्रमाण ४ माना जाय तो चार का विरलन कर 1 1 1 1 प्रत्येक एक के ऊपर देयराशि चार चार रखकर 4 4 4 4 चारों चोकों का परस्पर गुण्न करने से गुणनफल 256 जघन्य युक्त असंख्यात का प्रमाण होगा। इस ही जघन्य युक्त असंख्यात को आवली भी कहते हैं। क्योंकि एक आवली में जघन्य युक्त असंख्यात प्रमाण समय होते हैं।

जघन्य युक्त असंख्यात के वर्ग को जघन्य असंख्यातासंख्यात कहते हैं। एक राशि को उस ही से गुणा करने से जो गुणन फल होता है उसको वर्ग कहते है जैसे 256 का वर्ग 65536 है। जघन्य असख्यातासख्यात को प्रतरावली भी कहते हैं। एक प्रतरावली में जघन्य युक्त असंख्यात प्रमाण आवलियाँ होती हैं। एक प्रतरावली में असंख्य वर्ष हो जाते हैं।

अब आगे जघन्य परीत अनन्त का प्रमाण कहते हैं-

जघन्य परीत अनन्त लाने के लिए सबसे प्रथम जघन्य असख्यातासख्यात का शलाकात्रयनिष्ठापन करना। शलाकात्रयनिष्ठापन का विधान पूर्व में शका समाधान न 56 में कथन कर आये हैं। उसके अनुसार शलाकात्रय निष्ठापन जघन्य असख्यातासंख्यात का करना। फिर इस महाराशि में (1) लोक प्रमाण धर्म द्रव्य के प्रदेश (2) लोक प्रमाण अधर्म द्रव्य के प्रदेश (3) लोक प्रमाण एक जीव के प्रदेश (4) लोक प्रमाण लोकाकाश के प्रदेश (5) लोक से असंख्यात लोक गुणे अप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पतिकायिक जीवों का प्रमाण (6) और उससे भी असंख्यात लोक गुणी सामान्यपने असंख्यात लोक प्रमाण प्रतिष्ठित प्रत्येक बनस्पतिकायिक

जीवो का प्रमाण ये छह राशियाँ मिलाना फिर पुनः इसका शलाकात्रयनिष्ठापन करना। इस प्रकार शलाकात्रय निष्ठापन करने से जो महाराशि उत्पन्न हो उसमे (1) बीस कोडा कोडी सागर प्रमाण कल्प काल के समयों की संख्या (२) फिर इनसे भी असख्यात लोक गुणे असंख्यात लोक प्रमाण स्थिति बन्ध के कारण भूत परिणामों की संख्या (3) इनसे भी असंख्यात लोक गुणे तथापि सामान्यपने असंख्यात लोक प्रमाण अनुभाग बन्ध के कारण भूत परिणामों की संख्या (4) और फिर इनसे भी असंख्यात लोक गुणे तथापि सामान्यपनें असंख्यात लोक प्रमाण मन वचन काय योगो के अविभाग प्रतिच्छेदों की संख्या ये चार राशि मिलाना। फिर इस दूसरे योगफल प्रमाण राशि का शलाकात्रय निष्ठापन करना। इस प्रकार जो राशि उत्पन्न हो उसको जघन्य परीतानन्त कहते हैं।

जघन्य परीत अनन्त का विरलन कर प्रत्येक एक के ऊपर जघन्य परीत अनन्त रखकर सब जघन्य परीत अनन्तों का परस्पर गुणा करने से जो राशि उत्पन्न हो उसको जघन्य युक्तानन्त कहते हैं। अभव्य जीवों की संख्या जघन्य युक्त अनन्त प्रमाण हैं।

और जघन्ययुक्त अनन्त के वर्ग को जघन्य अनंतानंत कहते हैं।

अब केवलज्ञान के अविभाग प्रतिच्छेदों का प्रमाण रूप उत्कृष्ट अनंतानत का स्वरूप कहते हैं-

जघन्य अनतानंत का पूर्वोक्त विधान के अनुसार शलाकात्रयनिष्ठापन करना इस प्रकार शलाकात्रयनिष्ठापन करने से महाराशि उत्पन्न हो वह अनन्तानन्त का एक मध्यम भेद है। [अनन्त के दो भेद हैं, एक सक्षय अनत और दूसरा अक्षय अनन्त यहाँ तक जो संख्या हुई वह सक्षय अनन्त है। इससे आगे अक्षय अनन्त के भेद है, क्योकि इस महाराशि मे आगे छह अक्षय अनन्त राशि मिलाई जाती हैं। नवीन वृद्धि न होने पर भी खर्च करते करते जिस राशि का अन्त नहीं आवे उसको अक्षय अनन्त कहते हैं।] इस पूर्वोक्त राशि में जीवराशि के अनन्तवें भाग (१) सिद्धराशि (२) सिद्ध राशि से अनन्तगुणी निगोद राशि (3) सम्पूर्ण वनस्पति काय राशि (4) जीव राशि से अनन्त गुणी पुद्गल राशि (5) पुद्गलों से भी अनन्त गुणे तीन काल के समय और (6) तीन काल के समयों से भी अनन्तगुणे सम्पूर्ण आकाश के प्रदेश। ये छह राशियाँ मिलाने से जो योगफल हो उस राशि का

पुनः पूर्वोक्त विधान अनुसार शलाकात्रयनिष्ठापन करना फिर इस राशि में धर्मद्रव्य और अधर्म द्रव्य के अगुरुलघुगुण के अनन्तानन्त अविभाग प्रतिच्छेद मिलाकर फिर-योगफल प्रमाण राशि का पुनः शलाकात्रयनिष्ठापन करने से मध्यम अनन्तानन्त का भेदरूप जो महाराशि उत्पन्न हुई उसको केवलज्ञान के अविभाग प्रतिच्छेदों के समूह रूप राशि में से घटाना और जो शेष बचे उसमें पुनः वही महाराशि मिलाना। तब केवलज्ञान के अविभाग प्रतिच्छेदों का प्रमाण स्वरूप उत्कृष्ट अनन्तानन्त होता है।

उक्तराशि को केवलज्ञान में से घटाकर फिर मिलाने का अभिप्राय यह है कि केवलज्ञान के अविभाग प्रतिच्छेदों का प्रमाण उक्त महाराशि से भी बहुत बड़ा है। उस महाराशि को किसी दूसरी राशि से गुणा करने पर भी केवल ज्ञान के प्रमाण से भी बहुत कमती रहता है। इसलिए केवलज्ञान के अविभाग प्रतिच्छेदों के प्रमाण का महत्त्व दिखलाने के लिए उपर्युक्त निधान किया है। इस प्रकार सख्यामान के २१ भेदों का कथन पूरा हुआ।

अभ्यास-माला

(1) सूई के अग्रभाग आकाशक्षेत्र में कितने पुद्गल परमाणु स्वतन्त्र रूप से स्थित हैं ?

(2) उसी क्षेत्र में पुद्गल स्कन्ध भी कितने हैं ? तथा कितने प्रकार के हैं ?

(3) विशेषपनें आकाश के एक प्रदेश की अवगाहना शक्ति का वर्णन आगम आधार से करें।

(4) संख्यामान के कुल कितने भेद हैं? उनके नाम लिखिए।

(5) जघन्य संख्यात का प्रमाण क्या है ?

(6) एक को जघन्य संख्यात क्यों नहीं माना।

(7) प्रथम अनवस्था कुंड में शिखाउ तक कितनी सरसों मायेंगी उनकी संख्या भी लिखिए।

(8) प्रथम अनवस्था कुड की लम्बाई चौड़ाई एवं गहराई का प्रमाण क्या है ?

(9) द्वितीय अनवस्था कुंड में प्रथम अनवस्था कुंड से कितनी गुणी ज्यादा सरसों समायेगी।

(10) सूची व्यास लाने का गणित सूत्र क्या है ?

(11) सूची व्यास किसे कहते हैं ?

(12) कुल कितने अनवस्था कुड बनेगे ?
(13) जघन्यपरीत असख्यात का परिमाण क्या है ?
(14) उत्कृष्ट संख्यात किसे कहते है ?
(15) जघन्य और उत्कृष्ट के कितने कितने भेद है ?
(16) मध्यम सख्यात के कितने भेद हैं ?
(17) आवली किसे कहते हैं ?
(18) आवली के वर्ग को क्या कहते हैं ?
(19) एक प्रतरावली मे कितने वर्ष होते हैं ?
(20) एक प्रतरावली में कितनी आवलियाँ हैं ?
(21) जघन्यपरीत अनन्त कैसे आता है ?
(22) जघन्य युक्त असंख्यात का दूसरा नाम क्या है ?
(23) जघन्य असंख्यात का शलाकात्रय निष्ठापन करने के बाद प्रथम बार कितनी और कौन कौन सी राशियाँ मिलाई ?
(24) द्वितीय बार कितनी और कौन कौन सी राशियाँ मिलाई ?
(25) जघन्यपरीत अनन्त आने से पहले जघन्य असख्यातासख्यात का कितनी बार शलाकात्रय निष्ठापन किया गया है ?
(26) जघन्ययुक्त अनन्त किस प्रकार आता है ?
(27) जघन्य युक्त अनन्त का दूसरा नाम क्या है ?
(28) जघन्य अनन्तानन्त किस प्रकार आता है ?
(29) सक्षय अनन्त भौर अक्षय अनन्त किसे कहते हैं ?
(30) जघन्य अनन्तानन्त का शलाकात्रय निष्ठापन करने पर प्रथम बार कितनी और कौन कौन सी राशियाँ मिलाई ?
(31) द्वितीय बार कितनी और कौन कौन सी राशियाँ मिलाई ?
(32) उत्कृष्ट अनन्तानन्त लाने के लिए अंतिम कौन सी प्रक्रिया अपनाई और क्यों ?
(33) श्रुतकेवली कहाँ तक जानता है ?
(34) सर्वावधि ज्ञानी कहाँ तक जान सकता है ?
(35) अनन्त किस ज्ञान का विषय है ?
(36) सक्षय अनन्त का अन्त आ जाता है फिर भी उसे अनन्त क्यों कहा ?

तेरहवाँ अध्याय

(8) [अब केवल ज्ञान की सूक्ष्मता के अष्टम् बिन्दु का वर्णन करते है]

अब तक सात बिन्दुओं में सूई के अग्रभाग आकाश क्षेत्र में यह बताया कि उसमें कितने सूक्ष्म निगोदिया जीव हैं तथा उनके साथ कितने औदारिक शरीर, तैजस शरीर और कार्माण शरीर के वर्गणा और वर्ग पाये जाते हैं और प्रत्येक वर्ग के साथ कितने विस्रसोपचय परमाणु पाये जाते हैं। साथ ही सूक्ष्म पृथ्वी कायिक, सूक्ष्म अग्नि कायिक, सूक्ष्म जलकायिक, सूक्ष्म वायुकायिक, जीव कितने हैं यह भी बताया। इसके अलावा पुद्गल परमाणु व पुद्गल स्कन्ध कितने पाये जाते हैं ? यह भी बताया।

जीव और पुदगलों के अलावा इस बिन्दु मे धर्मद्रव्य, अधर्म द्रव्य, आकाश द्रव्य के कितने प्रदेश हैं तथा कालाणु कितने हैं यह भी बताते हैं।

सूई के अग्रभाग आकाश क्षेत्र में धर्म द्रव्य के भी असंख्यात प्रदेश हैं। यद्यपि धर्म द्रव्य के प्रदेशों का असंख्यातवाँ भाग ही सूई के अग्रभाग आकाश क्षेत्र में है। तो भी उसके असंख्यात प्रदेश पाये जाते हैं। यद्यपि धर्मद्रव्य उससे असंख्यात गुणा बड़ा है और उसके सम्पूर्ण के भी असंख्यात प्रदेश ही हैं। फिर भी सूई के अग्रभाग आकाश क्षेत्र में उसके असख्यात प्रदेश पाये जाते हैं क्योंकि असंख्यात के भी असंख्यात प्रकार हैं इसी प्रकार अधर्म द्रव्य के भी असंख्यात प्रदेश भी वहीं उसी क्षेत्र में पाये जाते हैं। असख्यात कालाणु भी स्थित हैं। क्योंकि उसमें असंख्यात प्रदेश हैं। और प्रत्येक प्रदेश पर एक एक कालाणु पाया जाता है। अतः असंख्यात कालाणु भी लगा लेना और आकाश के भी असख्यातासख्यात प्रदेश हैं। यह तो सबसे प्रथम ही स्पष्ट कर आये हैं।

(9) [नवम् बिन्दु- यह केवल ज्ञान की सूक्ष्मता का अन्तिम बिन्दु है जिसका वर्णन करते हैं।]

प्रारम्भ (प्रथम बिन्दु) से लेकर अष्टम बिन्दु तक जो सूई के अग्रभाग जितने आकाश क्षेत्र में जीव और पुद्गल परमाणु उपर्युक्त प्रकार भरे पड़े हैं उसी प्रकार 343 घन राजू लोक मे सर्वत्र पूर्ण रूप से घडे में घीवत् भरे पड़े हैं। कोई भी सूई का अग्रभाग जितना क्षेत्र खाली नहीं है।

भावार्थ- प्रारम्भ से लेकर (प्रथम बिन्दु से अष्टम बिन्दु तक) अब तक जो सूई के अग्रभाग जितने आकाश क्षेत्र में स्थित असंख्यातासंख्यात लोक प्रमाण सूक्ष्म निगोद शरीर, प्रत्येक निगोद शरीर में अक्षय अनन्त सूक्ष्म जीव, असंख्यात लोक प्रमाण सूक्ष्म अग्निकायिक जीव, अग्निकायिक जीवों से विशेष अधिक सूक्ष्म पृथ्वीकायिक जीव, पृथ्वीकायिक जीवों से विशेष अधिक सूक्ष्म जलकायिक जीव और जलकायिक जीवो से विशेष अधिक सूक्ष्म वायुकायिक जीव स्थित हैं और प्रत्येक जीव के लोक प्रमाण असख्यात प्रदेशों में से प्रत्येक प्रदेश पर औदारिक शरीर की अनन्त वर्गणा उनसे अनन्तगुणी तैजस शरीर की वर्गणायें हैं और उनसे अनन्त गुणी कार्माण शरीर की वर्गणा हैं। और प्रत्येक वर्गणा मे अनन्तानन्त कर्मपरमाणु (वर्ग) हैं। और प्रत्येक कर्म एव नो कर्म परमाणु के साथ सम्पूर्ण जीवराशि से अनन्तगुणे विस्रसोपचय रूप कर्मपरमाणु (कर्म बनने योग्य उम्मीदवार) मौजूद हैं तथा उसी क्षेत्र मे अनन्त पुद्गल परमाणु, अनन्त दो दो परमाणु वाले स्कन्ध, इसी प्रकार एक एक संख्या को बढ़ाते हुए यथायोग्य मध्यम अक्षय अनन्त के जितने भी भेद हैं उन सभी भेदों की सख्या को लिए अनन्तानन्त स्कन्ध मौजूद हैं तथा धर्म द्रव्य के असंख्यात प्रदेश, अधर्म द्रव्य के असख्यात प्रदेश और असख्यात कालाणु भी स्थित हैं। उसी प्रकार सम्पूर्ण लोक में जितने सूई के अग्रभाग क्षेत्र बने उन सब मे लगा लेना।

(60) शंका- केवलज्ञान के अनन्तवें भाग प्रमाण आकाश द्रव्य है और आकाश के भी अनन्तवे भाग में, सबके बीच मे लोकाकाश असख्यात प्रदेशो का धारक है। उस असख्यात प्रदेशी लोक मे अक्षय अनन्त जीव, उनसे भी अनन्तगुणे पुद्गल लोकाकाश प्रमाण असख्यात कालाणु और लोकाकाश प्रमाण धर्मद्रव्य तथा अधर्म द्रव्य कैसे रहते हैं ?

समाधान- उत्तर मे कहते हैं कि एक दीपक के प्रकाश में अनेक दीपों का प्रकाश समा जाता है अथवा एक गूढ़ रस विशेष से भरे शीशे के बर्तन में बहुत सा स्वर्ण समा जाता है, अथवा भस्म से भरे हुए घट मे सूई और ऊँटनी का दूध आदि समा जाते हैं, इत्यादि दृष्टान्तों के द्वारा विशिष्ट अवगाहना शक्ति के कारण असख्यात प्रदेश वाले लोक में जीव पुद्गलादि के भी समा जाने मे कुछ विरोध

नहीं आता। यदि इस प्रकार अवगाहन शक्ति न हो तो, लोक के असंख्यात प्रदेशों में असंख्यात परमाणुओं का ही निवास हो सकेगा। ऐसा होने पर जैसे शक्ति रूप शुद्ध निश्चयनय से सब जीव आवरण रहित तथा शुद्ध बुद्ध एक स्वभाव के धारक हैं वैसे ही व्यक्तिरूप व्यवहार नय से भी हो जावेगें। किन्तु ऐसा है नहीं क्योंकि ऐसा मानने में प्रत्यक्ष और आगम से विरोध आवेगा।

वास्तव में सभी द्रव्यों में परस्पर अवकाश देने की शक्ति है। जैसे भस्म में और जल में अवगाहन शक्ति है वैसे ही जीव के असंख्यात प्रदेशो में जानो।

भावार्थः-जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल सभी द्रव्यों मे निश्चय से अवगाहन शक्ति है। जैसे पानी से भरे हुए घड़े में राख समा जाती है। जैसे नमक समा जाता है, सूईयाँ समा जाती हैं। वैसे ही लोकाकाश में सब द्रव्य परस्पर एक दूसरे को अवकाश (जगह) देते है। वैसे ही विशिष्ट अवगाहन शक्ति के होने से असख्यात प्रदेशी भी लोक में सब द्रव्यो के रहने में कोई विरोध नहीं आता। यदि अवगाहना शक्ति न होती तो आकाश के प्रत्येक प्रदेश में सब द्रव्य नहीं पाये जाते। आकाश के जितने भाग को पुद्गल का एक परमाणु रोकता है उसे प्रदेश कहते है। इससे प्रतीत होता है कि सभी द्रव्यो मे स्वाभाविक अवगाहन शक्ति है।

(61) शंका- यदि सभी द्रव्यो में स्वाभाविक अवगाहन शक्ति है तो अवकाश (जगह) देना आकाश का असाधारण गुण नहीं हुआ, क्योंकि असाधारण गुण उसे कहते हैं जो दूसरों में न पाया जावे।

समाधान- यह आपत्ति उचित नहीं है ? सब पदार्थो को अवकाश देना आकाश का असाधारण लक्षण है। क्योंकि अन्य द्रव्य सब पदार्थो को अवकाश देने में असमर्थ हैं।

अभ्यास-माला

(1) अष्टम् बिन्दु मे क्या बताया ?

(2) नवम् बिन्दु क्या है ?

(3) असंख्यात प्रदेशी लोक में अक्षय अनन्त जीव उनसे अनन्त गुणे पुद्गल द्रव्य, असंख्यात कालाणु, लोकाकाश प्रमाण धर्मद्रव्य तथा अधर्मद्रव्य किस प्रकार रहते है ? युक्ति द्वारा स्पष्ट कीजिए।

चौदहवाँ अध्याय

[अब इस अध्याय में केवलज्ञान की सूक्ष्मता के नो बिन्दुओं को ध्यान में रखने के लिए अति संक्षेप में वर्णन करते हैं।]

(1) सूई के अग्रभाग आकाश क्षेत्र मे कितने सूक्ष्म निगोदियाँ जीव पाये जाते हैं ?

(अ) संक्षेप रुचिवालो के लिए।

(ब) मध्यम रुचिवाले शिष्यो के लिए:- स्कन्ध, अन्डर, आवास, पुलवी, निगोद शरीर = असख्यात लोक प्रमाण निगोद शरीर हैं। फिर एक निगोद शरीर मे जीवों की सख्या।

(i) बनारसी विलास के अनुसार पृ० 116 दोहा न० 97, 98

(ii) स्याद्वाद मजरी के अनुसार पृ०स० 259 गाथा 29

(iii) गोम्मटसार जीवकाड की गाथा 196 एवं उसकी टीका

(iv) तीन तेरह का सिद्धान्त

(v) वृहद् द्रव्यसग्रह गाथा 37 की टीका में

(vi) 'द्रव्य दृष्टि जिनेश्वर पर्याय दृष्टि विनश्वर' के बोल नं० 373, 485, 592, 995, 1026

(स) विस्तार रुचि वाले शिष्यों के लिए।

(2) एक जीव के घन लोकमात्र प्रत्येक प्रदेश पर जघन्यपनें अभव्यो से अनन्तगुणे और उत्कृष्टपने सिद्धो के अनन्तवें भाग औदारिक शरीर की वर्गणा और वर्ग पाये जाते हैं।

(3) आत्मा के प्रत्येक प्रदेश पर औदारिक शरीर से अनन्त गुणे तैजस शरीर की वर्गणा, वर्ग पाये जाते हैं।

(4) तथा तैजस शरीर से अनन्तगुणे कार्माण शरीर की स्पर्धक, वर्गणा, वर्ग पाये जाते हैं।

(5) तथा औदारिक, तैजस और कार्माण शरीर के प्रत्येक वर्ग पर (परमाणु) जीवो से अनन्तगुणे विस्रसोपचय (कर्म बनने के उम्मीदवार) पाये जाते हैं।

(6) निगोद जीवों के अलावा अन्य सूक्ष्म जीवों की संख्या:-

(i) असंख्यात लोक प्रमाण सूक्ष्म अग्निकायिक जीव।

(ii) सूक्ष्म अग्निकायिक जीवों से विशेष अधिक सूक्ष्म पृथ्वीकायिक जीव।

(iii) सूक्ष्म पृथ्वीकायिक जीवों से विशेष अधिक सूक्ष्म जलकायिक जीवों की संख्या।

(iv) सूक्ष्म जलकायिक जीवों से विशेष अधिक सूक्ष्म वायुकायिक जीव।

(7) सूक्ष्म जीवों के अलावा पुदगलों की संख्या-

(i) अनन्तानन्त परमाणु।

(ii) अनन्तानन्त संख्यात संख्या वाले सूक्ष्म स्कन्ध (प्रत्येक भेद के)

(iii) अनन्त असंख्यात सख्या वाले सूक्ष्म स्कन्ध (प्रत्येक भेद के)

(iv) अनन्त सूक्ष्म स्कन्ध अनन्त अनन्त परमाणु वाले (मध्यम अनन्त के प्रत्येक भेद तक)

(8) सूक्ष्म जीवों, पुद्गलों के अलावा धर्म द्रव्य के एवं अधर्म द्रव्य के असख्यात असंख्यात प्रदेश, असंख्यात कालाणु, आकाश के असंख्यात प्रदेश भी पाये जाते हैं।

(9) जब सूई के अग्रभाग जितने आकाश क्षेत्र में उपर्युक्त आठ बिन्दु जितने जीव अजीव पदार्थ पाये जाते हैं उसी प्रकार लोकाकाश में जितने अर्थात् असंख्यात सूई के अग्रभाग आकाश क्षेत्र के प्रत्येक क्षेत्र में लगा लेना।

अभ्यास–माला

(1) केवल ज्ञान की सूक्ष्मता के नो बिन्दुओं को संक्षेप में लिखिए।

पन्द्रहवाँ अध्याय

अब तक नो बिन्दुओं में जिन जीव व अजीव पदार्थों का वर्णन किया है उनके अलावा भी लोक में क्या क्या पदार्थ पाये जाते हैं अब इस अध्याय में उनका भी ज्ञान कराते हैं।

(i) जीव पदार्थ- असंख्यात लोक प्रमाण बादर अग्निकायिक जीव हैं इन से असंख्यात लोकगुणे असंख्यात लोक प्रमाण अप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पतिकायिक जीव हैं। और इनसे भी असंख्यातलोक गुणे सामान्यपणे असंख्यात लोक प्रमाण सप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति कायिक जीवों की संख्या है जो भी सामान्यपने असंख्यात लोक प्रमाण हैं। और इनसे असंख्यात लोक गुणे बादर पृथिविकायिक जीव हैं जो भी सामान्यपने असंख्यात लोक प्रमाण हैं। इनसे असंख्यात लोक गुणे बादर जल कायिक जीव हैं जो भी सामान्यपने असंख्यात लोक प्रमाण हैं। बादर जलकायिक जीवों से असंख्यात लोक गुणे बादर वायु कायिक जीव हैं जो भी सामान्यपने असंख्यात लोक प्रमाण हैं। इनमें पर्याप्त और अपर्याप्त दोनों भेद सम्मलित है।

(62) शंका- पर्याप्त और अपर्याप्त का अर्थ क्या है ?

समाधान- पर्याप्त और अपर्याप्त नामकर्म के भेद हैं। इस प्रकार जीव के पर्याप्त और अपर्याप्त दो भेद हुए। इनमें से जो जीव पर्याप्त नाम कर्म के उदय से शरीर बनने के लिए प्राप्त हुई पुद्‌गल वर्गणाओं में अन्तर्मूहूर्त मे शरीर बनने की शक्ति उत्पन्न करता है और जब उसकी वह शरीर बनने की शक्ति पूर्ण हो जाती है तबसे वह पर्याप्तक कहलाता है। और अपनी आयु पर्यन्त पर्याप्तक कहलाता है। जिसके पर्याप्त नाम कर्म का उदय है वह अन्तर्मूहूर्त में नियम से पर्याप्ति पूर्ण करेगा ही। परन्तु जितने समय तक शरीर पर्याप्ति पूर्ण नहीं होय उतने समय तक अर्थात् अंतर्मूहूर्त प्रमाण काल तक निवृत्ति अपर्याप्त (निवृत्यपर्याप्त) कहलाता है। और अंतर्मूहूर्त बाद में ही पर्याप्त हो जाता है। भले ही अभी इन्द्रियादिक दिखाई नहीं देती शरीर पूर्ण हुआ नहीं दिखाई देता क्योंकि जन्म लेते ही इन्द्रियादिक तो प्रकट होती नहीं। परन्तु शरीर इन्द्रियादिक के योग्य पुद्‌गल वर्गणा ग्रहण कर उनमें

(आहारवर्गणा में) आहारक शरीर इन्द्रियादिक उपजने की शक्ति का प्रकट हो जाना सो पर्याप्ति है। शरीर इन्द्रियादिक तो परिपूर्ण अवसर पाकर होते हैं। परन्तु पुद्गल में होने की शक्ति प्रकट हो जाती है। जैसे आम्रनामा वृक्ष की उत्पत्ति होते समय अंकुर प्रकट होता है। परन्तु उस अंकुर में पान, फल, डाहला इत्यादि होने की शक्ति प्रकट हो जाती है। पान, फूल, फल तो समय आने पर ही प्रकट होते हैं। इसलिए शक्ति का प्रकट हो जाना ही पर्याप्ति है। इसी प्रकार गर्भज जो जीव हैं उनके शरीर की पूर्णता तो यथायोग्य महिनों मे पूर्ण होती है। लेकिन उनके शरीर पूर्ण करने की शक्ति तो अन्तर्मूहूर्त में ही पूर्ण हो जाती है अतः सभी गर्भज नियम से पर्याप्त कहलाते है। गर्भज जीव अपर्याप्त होते ही नहीं। जो बालक गर्भ में ही मर जाते हैं, उनको पर्याप्त ही समझना। देव और नारकियों की पर्याप्ति और शरीर की पूर्णता दोनों ही साथ साथ अन्तर्मूहूर्त में हो जाती है। लेकिन गर्भज मनुष्य और तिर्यचों में ऐसा नहीं है। उनकी पर्याप्ति तो अन्तर्मूहूर्त में ही पूर्ण हो जाती है लेकिन शरीर पूर्ण होने में समय लगता है। सम्मूर्छन तिर्यंचों की शरीर की पूर्णता भी अन्तर्मूहूर्त में हो जाती है लेकिन देवों और नारकियों की अपेक्षा अधिक समय में होती है।

इसके विपरीत अपर्याप्त नामकर्म के उदय से शरीर पर्याप्ति पूर्ण नहीं होती है वह जीव श्वास के अठारहवें भाग में ही मर जाता है। ऐसे जीव को अपर्याप्त कहते हैं। ऐसे जीव को लब्धि अपर्याप्तक (लब्ध्यपर्याप्तक) कहते हैं। इनकी आयु एक श्वॉस के अठारहवें भाग प्रमाण ही होती है। यह उनकी जघन्य और उत्कृष्ट दोनों आयु श्वॉस के अठारहवें भाग मात्र ही है। इसको क्षुद्रभव भी कहते हैं। इससे छोटा भव नहीं होता। लब्ध्यपर्याप्तक जीव सम्मूर्छन तिर्यंचों और मनुष्यों में ही होते हैं। गर्भज तिर्यच और गर्भज मनुष्यों में, समस्त भोगभूमि के मनुष्य तिर्यचों में, कुभोग भूमि के जीवो में, म्लेच्छ खंड के मनुष्यों में और समस्त देवता और नारकी इनमे लब्ध्यपर्याप्तक जीव उत्पन्न नहीं होते हैं। ये सभी जीव पर्याप्तक ही होते है। इनके पर्याप्त नाम कर्म का ही उदय होता है। शेष समस्त एकेन्द्रिय जीव, विकलेन्द्रिय अर्थात् दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय जीव, असैनी पचेन्द्रिय तिर्यंच, कर्मभूमि के सैनीपंचेन्द्रिय तिर्यंच, पर्याप्त और अपर्याप्त दोनों प्रकार के होते हैं हाँ, आर्यखंड के सन्मूर्छन मनुष्य अपर्याप्त अर्थात् लब्ध्यपर्याप्क ही होते हैं इतना विशेष समझना। अर्थात् सन्मूर्छन तिर्यंच पर्याप्त और अपर्याप्त

दोनों प्रकार के होते हैं लेकिन मनुष्यों में सन्मूर्छन मनुष्य लब्धयपर्याप्तक ही होते है पर्याप्तक नहीं होते। इस तरह स्थावरों में निगोद को छोड़कर बादर एकेन्द्रिय जीव भी उपर्युक्त लोक में पाये जाते है लेकिन ये सर्वत्र लोक में नहीं पाये जाते हैं इसलिए इनको केवलज्ञान की सूक्ष्मता के नो बिन्दुओं में नहीं लिया गया।

इसी प्रकार अक्षय अनन्तानन्त पर्याप्त अपर्याप्त बादर निगोदिया जीव भी लोक में पाये जाते हैं चूँकि ये बादर हैं अतः सर्वलोक में नहीं पाये जाते हैं। आठों पृथिवियों एव अन्य पदार्थों के आश्रित रहते हैं। इसलिए इनको भी केवलज्ञान की सूक्ष्मता के बिन्दुओं में सम्मिलित नहीं किया।

एकेन्द्रिय जीवो के अलावा त्रसजीव भी अर्थात् दो इन्द्रिय पर्याप्त अपर्याप्त, तीन इन्द्रिय पर्याप्त अपर्याप्त, चोइन्द्रिय पर्याप्त अपर्याप्त, असैनीपचेन्द्रिय पर्याप्त अपर्याप्त, सैनीपचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्त अपर्याप्त, गर्भज मनुष्य, सम्मूर्छन मनुष्य, चारों प्रकार के देव (भवनवासी व्यन्तर ज्योतिषी, वैमानिक) सातों पृथिवियों के असख्यात नारकी भी लोक में पाये जाते हैं। लेकिन त्रसजीव त्रसनाली में ही पाये जाते है और बादर ही होते है सर्वत्र नहीं पाये जाते हैं इसलिए इनको भी नौ बिन्दुओ में सम्मिलित नहीं किया गया है।

जीवों के अलावा अनन्त बादर स्कन्ध भी लोक मे पाये जाते हैं। आठो पृथिवियाँ रत्नप्रभा, शर्करा प्रभा, बालूका प्रभा, पक प्रभा, धूम प्रभा, तमप्रभा, महातम प्रभा और आठवी ईषत प्राग्भार (पृथिवी) भी लोक में पायी जाती है। अधोलोक की सातो पृथिवियों में चौरासी लाख नरक भी पाये जाते हैं। मध्यलोक में जम्बूद्वीप को आदि लेकर स्वयंभुरमण समुद्र तक असख्यात द्वीप समुद्र भी पाये जाते हैं। जिनकी सख्या पच्चीस कोडा कोडी उद्धार पल्यों के रोम अथवा समय प्रमाण है। अथवा ढाई उद्धार सागरोपम के समय अथवा रोम प्रमाण हैं। जिनमें ढाई द्वीप में पाँच मेरु, तीसकुलाचल, अस्सी वक्षार गिरि पर्वत, बीस गजदंत पर्वत, एकसो सत्तर विजयार्धपर्वत, दस जम्बूशाल्मलीवृक्ष, चारइष्वाकार पर्वत, एक मानुषोत्तर पर्वत एकसो सत्तर वृषभाचल पर्वत, बीस नाभीगिरि पर्वत, गगा, सिंधु आदि सत्तर महानदियाँ, एकसो अस्सी द्रह, चारसो पचास कुंड, बीस **यमक** गिरि पर्वत, चालीस **दिग्गजेन्द्र** पर्वत एक हजार काचन गिरिपर्वत भी पाये जाते हैं।

अधोलोक की रत्न प्रभा पृथ्वी के खरभाग एवं पंक भाग में भवनवासियों के सात करोड़ वहत्तर लाख भवन भी हैं। जिनमें प्रत्येक में एक एक अकृत्रिम चैत्यालय भी हैं। तथा खरभाग व पंकभाग में असंख्यात व्यन्तरों के भवन भी हैं जिनमें प्रत्येक में एक एक अकृत्रिम चैत्याल्य भी हैं इस प्रकार व्यन्तरों के भवनों में असंख्यात अकृत्रिम चैत्यालय भी अधोलोक में हैं। मध्यलोक में तेरहवें द्वीप तक चारसौ अट्ठावन गिनती वाले अकृत्रिम चैत्याल्य भी हैं। तथा मध्यलोक में असख्यात द्वीपसमुद्रों में असंख्यात व्यन्तरों के असंख्यात भवन भी हैं जिनमें प्रत्येक में एक एक अकृत्रिम चैत्याल्य भी है इस प्रकार मध्य लोक में व्यन्तरों के भवनों में असंख्यात अकृत्रिम चैत्याल्य भी हैं जो गिनती में नहीं हैं। इसके अलावा मध्यलोक में चित्रा पृथ्वी से सात सौ नब्बे (790) योजन से लेकर एक सौ दस योजन की मोटाई तक अर्थात् ९०० योजन तक असंख्यात ज्योतिषी देवों (चन्द्रमा, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र, तारे) के विमान भी हैं। जिनमे प्रत्येक विमान में एक एक अकृत्रिम चैत्याल्य भी है इस प्रकार मध्यलोक में ज्योतिषी देवों के असंख्यात अकृत्रिम चैत्याल्य भी हैं जो भी तीन लोक के गिनती वाले अकृत्रिम चैत्याल्यों में (आठ करोड छप्पन लाख सत्तानवें हजार चार सो इक्यासी) सम्मिलित नहीं हैं।

उर्ध्वलोक में चौरासी लाख सत्तानवें हजार और तेईस वैमानिक देवों के भी विमान हैं जो सुमेरु के चूलिका से बालके अग्रभाग अन्तराल को छोड़कर आठवी ईषत् प्रागभार पृथ्वी से बारह योजन नीचे तक स्थित हैं। जिनमें प्रत्येक में एक एक उत्कृष्ट अकृत्रिम चैत्याल्य है।

आठवी ईषत् प्रागभार पृथ्वी के बहुमध्य भाग में पैतालीस लाख योजन प्रमाण की स्फटिक मणि की सिद्ध शिला भी है जो आठवी पृथ्वी में अँगूठी में नगीने की भाँति जडी हुई है। जो सीधे रखे कटोरे की भाँती अथवा अर्धचन्द्रकार (˘) अथवा उत्तान छत्राकार (उत्तान का अर्थ उल्टा होता है।) सिद्धशिला की बीच की मोटाई आठ योजन है तथा अन्त में घटती चली गई है। आठवी ईषत् प्राग्भार पृथ्वी की मोटाई भी आठ योजन है। बहुधा लोग ईषत् प्राग्भार पृथ्वी व सिद्धशिला दोनों का एक ही अर्थ लगाते हैं सो गलत है। यद्यपि सिद्धशिला व आठवी पृथ्वी अलग अलग नहीं है। आठवी पृथ्वी का ही एक छोटा भाग बीचोंबीच का पैतालीस लाख योजन प्रमाण सिद्धशिला है। लेकिन दोनों में अन्तर बहुत है। प्रथम तो आठवी पृथ्वी असंख्यात प्रमाण योजन लंबी चौडी है। पूर्व

पश्चिम एक राजू प्रमाण और उत्तर दक्षिण सर्वत्र सात राजू प्रमाण है। राजू के असंख्यातवे भाग में असंख्यात प्रमाण योजन होते हैं। जबकि सिद्ध शिला मात्र पैतालीस लाख योजन की ढाई द्वीप प्रमाण है। जोकि राजू का असंख्यातवाँ भाग भी नहीं है। दूसरे सिद्धशिला स्फटिक मणि की है और आठवीं पृथ्वी शुद्ध पृथ्वी है। तीसरे सिद्ध शिला का आकार उत्तान छत्राकार है जबकि पृथ्वी का ऐसा आकार नही है। अतः दोनों का एक अर्थ नहीं है चूँकि आठवी पृथ्वी और सिद्धशिला दोनो एक ही क्षेत्र में है। अर्थात् आठवीं पृथ्वी का एक छोटा सा भाग ही सिद्ध शिला है इसलिए सिद्धशिला को उपचार से अष्टम् वसुधा (पृथ्वी) भी कह सकते हैं। लेकिन भाव में अन्तर भी समझना चाहिए।

तथा लोक के चारों तरफ (वृक्ष की छाल, अंडे की जाली, तन के चमड़े की भाँति तीनों वातवलय घनोदधि वातवलय, घनवात वलय तनुवातवलय) भी पाई जाती है। तथा आठों पृथ्वीयों के नीचे भी तीनों वातवलय बीस बीस हजार योजन मोटी पायी जाती है। अन्तर इतना है कि आठवीं पृथ्वी के तो दसों दिशाओ मे तीनों वातवलय हैं जबकि शेष अधोलोक की सातों पृथ्वीयों में ऊपर की दिशा को छोड़कर नो तरफ तीनों वातवलय पाई जाती हैं।

तथा लोक शिखर के अन्त में तनुवातवलय की मोटाई के पन्द्रहसोवां भाग मे उत्कृष्ट अवगाहना वाले (525 धनुष) तथा नवलाख खंड के एक भाग में जघन्य अवगाहना (साढ़े तीन हाथ वाले) अक्षय अनन्त सिद्ध महाराज भी हैं। अतः उन सबको जोकि निजशुद्ध भाव को साधने में दर्पणवत् निमित्त हैं मनवचन काया से वन्दना करते हैं।

(63) शंका- तनुवात वलय की मोटाई पन्द्रह सो पिच्चत्तर धनुष मात्र (1575) ही आगम मे बतायी है फिर उसमें पन्द्रह सौ का भाग देने पर पाँच सो पच्चीस धनुष की उत्कृष्ट अवगाहना वाले तथा नव लाख खड के एक भाग में साढे तीन हाथ की अवगाहना वाले सिद्ध महाराज किस प्रकार आते हैं ? स्पष्ट कीजिए।

समाधान- चूँकि तनुवातवलय की मोटाई प्रमाण धनुषो में है और जीवों की अवगाहना व्यवहार धनुषों मे होती है अतः तनुवातवलय की मोटाई को पाच सो से गुणा करने पर (1575 × 500) 787500 व्यवहार धनुष आते हैं। अतः उनमे 1500 का भाग देने पर (787500 ÷ 1500) पाँच सौ पच्चीस धनुष उत्कृष्ट

अवगाहना आ जाती है। और चूँकि एक धनुष में चार हाथ होते हैं। अत: सात लाख सत्यासी हजार पाँच सौ धनुष (787500) के हाथ बनाने पर (787500 × 4) इकतीस लाख पचास हजार हाथ बनते है। जिनमें नव लाख का भाग देने पर (3150,000 ÷900000) साढे तीन हाथ आते हैं। इसीलिए सिद्ध पूजा की जयमाल में निम्न प्रकार कहा है-

"पन्द्रह से भाग महान बसैं, नव लाख के खंड जघन्य लसैं।
तनुवात के अंत सहायक हैं सबसिद्ध नमोसुखदायक हैं।"

यह उपर्युक्त दोहा त्रिलोक सार की एक प्राकृत गाथा का हिन्दी अनुवाद है।

(64) शंका- प्रमाण धनुष और व्यवहार धनुष में क्या अन्तर है ?

समाधान- प्रमाण धनुष व्यवहार धनुष से पाँच सौ गुणा बड़ा होता है अर्थात् व्यवहार धनुषों में पाँच सौ का भाग देने पर प्रमाण धनुष आते हैं। अथवा प्रमाण धनुषों को पाँच सौ से गुणा करने पर व्यवहार धनुष आते हैं। इसी प्रकार प्रमाण योजन, कोस, हाथ, अंगुल सभी में लगा लेना अर्थात् व्यवहार योजन, व्यवहार कोस, व्यवहार धनुष, व्यवहार अंगुल से प्रमाण योजन, प्रमाण कोस, प्रमाण धनुष, प्रमाण अंगुल पाँच सौ गुना बड़ा होता है।

(65) शंका- प्रमाण योजन और व्यवहार योजन से किन किन को नापा जाता है ?

समाधान- समस्त अकृत्रिम रचनायें (अकृत्रिम प्रतिमाओ, देवों के नगर एवं भवन को छोड़कर) प्रमाण योजन से नापी जाती हैं। अर्थात् उन सबकी लम्बाई चौडाई एव ऊँचाई प्रमाण योजनों में जाननी चाहिए। और अकृत्रिम रचनाओं को छोडकर कृत्रिम रचनायें, चारों गति के जीवों की अवगाहना व्यवहार धनुषों में समझनी चाहिए।

(66) शंका- उन समस्त अकृत्रिम रचनाओं को बताइये जिनकी नाप प्रमाण योजनों मे है।

समाधान- मध्य लोक के असंख्यात द्वीप (1) असंख्यात समुद्र (2) अकृत्रिम नदियाँ (3) अकृत्रिम पर्वत (4) कुलाचल पर्वत (5) समस्त द्वीप समुद्रों की वेदियाँ (6) जगती (अंतिम सीमा) (7) तीनों लोक की लम्बाई चोड़ाई ऊँचाई (8) उर्ध्वलोक के 8497023 वैमानिक विमान (9) नरकों के 49 पटल (प्रस्तर) (10) पाँचों मेरु (11) आठों पृथ्वियों (12) चौरासी लाख नरक

(13) कुंड (14) द्रह-सरोवर (15) भरत आदि क्षेत्र (16) तीनों वातवलयों की मोटाई (17) अकृत्रिम चैत्याल्यो की नाप (18) ज्योतिषी देवों के असंख्यात विमान (19) सिद्धशिला (20) सिद्धक्षेत्र (21) गजदंत पर्वत (22) वक्षारगिरि पर्वत (23) विजयार्थ पर्वत (24) नाभीगिरि पर्वत (25) वृषभाचलपर्वत (26) यमक गिरि (27) दिग्गजेन्द्र पर्वत (28) काचन गिरि (29) ईष्वाकार पर्वत (30) मानुषोत्तर पर्वत (31) कुंडल गिरि (32) रुचक गिरि (33) नागेन्द्र पर्वत (34) नन्दीश्वर द्वीप के चारो अंजन गिरि (35) 16 दधिकर पर्वत (36) 32 रतिकर (37) सोलह बावडियाँ (38) 64 वनों की लम्बाई चौड़ाई (39) पाँचो मेरुओं की चूलिकाये (40) पाँचों मेरुओं की पांडुक आदि शिलायें (41) पाँचो मेरुओं के कूट (42) बावडियों आदि (43) जम्बू वृक्ष शलमली वृक्ष (44) वनों, पर्वतों-कुडों, द्रहो, नदियों की समस्त वेदिया (45)

(67) शंका- जिनकी नाप व्यवहार योजन अथवा व्यवहार धनुषों में है उनको भी बताइये।

समाधान- देव, मनुष्य, तिर्यच, नारकियों के अर्थात् चारों गतियो के जीवो की शरीर की ऊँचाई (अवगाहना) (1) अकृत्रिम चैत्यालयो की अकृत्रिम प्रतिमाओ की ऊँचाई (2) देवो के नगर (3) देवों के भवन (4) ये सभी व्यवहार योजन से नापी जाती है।

(68) शंका- व्यवहार अगुल का क्या आगम में दूसरा नाम भी जाना जाता है ?

समाधान- व्यवहार अगुल का दूसरा नाम उत्सेध अगुल भी है।

(69) शंका- क्या व्यवहार अगुल और प्रमाण अगुल के अलावा अन्य तीसरे प्रकार का भी अगुल आगम मे बताया गया है ?

समाधान- आगम में अगुल तीन प्रकार के बताये हैं। (1) उत्सेध अगुल या व्यवहार अगुल (2) प्रमाण अंगुल (3) आत्मागुल।

(70) शंका- आत्म अगुल से क्या नापा जाता है ?

समाधान- आत्मअगुल भरत ऐरावत क्षेत्रों में होने वाले मनुष्यों के भिन्न-भिन्न कालो में भिन्न-भिन्न हुआ करते हैं। इसके द्वारा छोटी-छोटी वस्तुओं जैसे झारी, कलश, दर्पण, वेणु, भेरी, शय्या, शकट, (गाडी), हल, मूसल, तोमर, सिंहासन, छत्र, मनुष्यो के निवास स्थान व नगर और उद्यान आदि को नापा जाता है।

(71) शंका- अंगुल, हाथ, धनुष, कोस और योजन का आपस में कितना अनुपात है सो बताइये ?

समाधान- 24 अंगुल का एक हाथ होता है। चार हाथ का एक धनुष होता है। दो हजार धनुष का एक कोस होता है और चार कोस का एक व्यवहार योजन होता है और व्यवहार योजन से प्रमाण योजन 500 गुना बड़ा होता है अर्थात् एक प्रमाण योजन में पाँचसौ व्यवहार योजन, दो हजार व्यवहार कोस, चालीस लाख व्यवहार धनुष, एक करोड़ साठ लाख हाथ होते हैं। तथा अंगुल अड़तीस करोड़ चालीस लाख होते हैं।

(72) शंका- क्या सिद्ध महाराज सिद्ध शिला पर नहीं विराजते हैं ?

समाधान- सिद्ध शिला से सिद्ध महाराज कम से कम 7573 प्रमाण धनुष ऊपर विराजते हैं। और व्यवहार धनुष से देखा जाय तो 3786500 धनुष ऊपर तनुवात वलय में विराजते हैं। यदि सिद्ध शिला पर सिद्ध महाराज विराजते तो पच पैंताले में सिद्धशिला और सिद्धक्षेत्र भेदों को अलग अलग नहीं गिनते।

(73) शंका- जब सिद्ध शिला पर सिद्ध महाराज विराजते नहीं उससे काफी ऊपर तनुवातवलय में स्थित हैं तब उसको सिद्ध शिला क्यों कहते हैं ?

समाधान- सिद्ध महाराज सिद्धशिला जितने क्षेत्र मे ही सिद्ध क्षेत्र में रहते हैं। तथा सिद्ध क्षेत्र और सिद्ध शिला दोनों पैतालीस लाख योजन प्रमाण की हैं। तथा सिद्धशिला जितने क्षेत्र में ही ठीक उसके ऊपर सिद्ध क्षेत्र में विराजते हैं इसलिए उपचार से सिद्ध शिला कहते हैं। और निश्चय मे देखा जाय तो सिद्ध क्षेत्र में भी नहीं विराजते वे तो अपने अपने असख्यात प्रदेशों मे ही विराजते हैं। तथा जब चार घातिया कर्मो का अभाव करने वाले अर्हन्त महाराज समवसरण में सिंहासन से अधर विराजते हैं फिर उनको समोसरण मे सिहासन पर विराजमान हैं ऐसा कहा जाता है तब जो सम्पूर्ण घातिया अघातिया कर्मो से रहित जीव हैं वे सिद्धशिला पर क्यो कर विराजेंगे। वे तो अर्हन्तो से भी अधिक ऊपर लोकशिखर पर ही विराजेगे यदि वे नीचे विराजते तो उनको फिर सबसे उत्कृष्ट नहीं कहा जा सकता। तीन लोक में सबसे उत्कृष्ट जीव सिद्ध महाराज ही हैं अत: वे सबके अन्तिम लोक शिखर पर विराजते हैं। सभी सिद्ध महाराजों का अन्तिम हिस्सा अलोकाकाश को छूता हुआ है।

अभ्यास–माला

(1) सूई के अग्रभाग आकाश क्षेत्र में पाये जाने वाले नो बिन्दुओं के अलावा भी लोक में कौन-कौन से पदार्थ पाये जाते हैं ?

(2) पर्याप्त और अपर्याप्त का अर्थ क्या है ?

(3) जो जीव गर्भ में ही मर जाते हैं उनको अपर्याप्त कहेंगे या पर्याप्त ?

(4) निर्वृत्यपर्याप्त का क्या अर्थ है ? ऐसे जीवों के साथ पर्याप्त नाम कर्म का उदय है या अपर्याप्त नाम कर्म का ?

(5) ऐसे कौन से जीव हैं जिनकी पर्याप्ति और शरीर की पूर्णता दोनों अन्तर्मूहर्त में ही पूर्ण हो जाती है ?

(6) क्या गर्भज जीव अपर्याप्त भी होते हैं ?

(7) किन जीवो की शरीर की पूर्णता पर्याप्ति के साथ पूर्ण नहीं होती ?

(8) क्या सम्मूर्छन मनुष्य पर्याप्त भी होते हैं ?

(9) निर्वृत्यपर्याप्तक जीव नामकर्म के कौनसा भेद में आते हैं ?

(10) क्या निर्वृत्यपर्याप्त अवस्था मे जीव का मरण हो सकता है ?

(11) लब्ध्यपर्यप्तक जीव की जघन्य आयु और उत्कृष्ट आयु कितनी कितनी है ?

(12) क्या सभी लब्ध्यपर्याप्तक जीवों की आयु समान होती है ?

(13) सिद्धशिला किसे कहते हैं ?

(14) आठवीं ईषत् प्राग्भार नामक पृथ्वी और सिद्धशिला में क्या अन्तर है ?

(15) सिद्धों की उत्कृष्ट व जघन्य अवगाहना कितनी है ?

(16) व्यवहारनय से सिद्ध महाराज कहाँ रहते हैं ?

(17) निश्चयनय से सिद्ध महाराज कहा रहते हैं ?

(18) सिद्ध शिला पर सिद्ध जीव क्यो नहीं विराजते हैं ?

(19) सिद्धशिला और सिद्ध क्षेत्र दोनो का प्रमाण कितना है ?

(20) आठों पृथ्वियों के नाम लिखिए।

(21) नरकों की सख्या कितनी है ?

(22) अंगुल कितने प्रकार के होते हैं ?

(23) व्यवहार योजन और प्रमाण योजन में क्या अन्तर है ?

(24) कितने अंगुल का एक हाथ होता है ?

(25) कितने हाथ का एक धनुष होता है ?

(26) कितने धनुष का एक कोस होता है ?

(27) कितने कोस का एक योजन होता है ?

(28) व्यवहार योजन से क्या नापा जाता है ?

(29) प्रमाण योजन से क्या क्या नापा जाता है ?

(30) तीनों लोकों में गिनती वाले अकृत्रिम चैत्यालय कितने हैं ?

(31) जिनकी गिनती नहीं है ऐसे अकृत्रिम चैत्यालय कितने हैं ?

(32) उर्ध्वलोक में कितने वैमानिक देवो के विमान हैं ?

(33) उनकी स्थिति लोक में कहाँ से कहाँ तक है ?

(34) तीनों वातवलय कहाँ कहाँ पाये जाते हैं ?

(35) क्या आठों पृथ्वियों के सभी दिशाओं मे वातवलय हैं ?

(36) किस पृथ्वी की सभी दिशाओं में वातवलय है ?

(37) मध्यलोक में ज्योतिषी देवो के कितने विमान हैं ?

(38) ज्योतिषी देवों की स्थिति कहाँ से कहाँ तक है ?

सोलहवाँ अध्याय

[अब इस अध्याय में आकाश की अवगाहना शक्ति के माहात्म्य को अन्य प्रकार से भी कहते हैं।]

उत्सेध घनांगुल अथवा व्यवहार घनांगुल के असंख्यातवें भाग मात्र क्षेत्र में सूक्ष्म जीव की जघन्य अवगाहना है। उस क्षेत्र में स्थित घनलोक मात्र जीव के प्रदेशों में से प्रत्येक प्रदेश पर अभव्य जीवों से अनन्तगुणे और सिद्धों के अनन्तवे भाग मात्र होकर के स्थित औदारिक शरीर के परमाणुओं का वही क्षेत्र अवकाश-पने को प्राप्त होता है।

पुनः औदारिक शरीर के परमाणुओं से अनन्त गुणे तैजस्क शरीर के परमाणुओं की भी उस ही क्षेत्र मे अवगाहना होती है तथा पूर्व में कहे गये तैजस शरीर के परमाणुओ से अनन्त गुणे उसी ही जीव के द्वारा मिथ्यात्व, अविरति आदि कारणों से सचित और प्रत्येक प्रदेश पर अभव्य जीवो से अनन्त गुणे तथा सिद्धों के अनन्तवे भाग मात्र कर्म परमाणु भी उसी क्षेत्र मे रहते हैं।

पुनः औदारिक शरीर, तैजस शरीर और कार्माण शरीर के विस्त्रसोपचयों का जोकि प्रत्येक सर्व जीवो से अनन्तगुणे हैं और प्रत्येक परमाणु पर उतने ही प्रमाण है उनकी भी उसी क्षेत्र मे अवगाहना होती है।

इस प्रकार एक जीव से व्याप्त अगुल के असख्यातवे भाग मात्र उसी जघन्य क्षेत्र में समान अवगाहना वाला होकर के दूसरा जीव भी रहता है इसी प्रकार समान अवगाहना वाले अनन्तानन्त जीवो की उसी क्षेत्र मे अवगाहना होती है। तत्पश्चात् दूसरा कोई जीव उसी ही क्षेत्र मे उसके मध्यवर्ती प्रदेश को अपनी अवगाहना का अन्तिम प्रदेश करके उत्पन्न हुआ। इस जीव की भी अवगाहना में समान अवगाहना वाले अनन्तानन्त जीव रहते हैं। इस प्रकार यहाँ भी पूर्व के समान प्ररुपणा करना चाहिए अर्थात् उस क्षेत्र में स्थित घनलोक मात्र जीव के

प्रदेशों में से प्रत्येक प्रदेश पर अनन्त औदारिक शरीर के परमाणु, औदारिक शरीर से अनन्तगुणे तैजस शरीर के और उससे अनन्तगुणे कार्माण शरीर के परमाणु भी है। पुन: इन तीनों शरीरों के सर्व जीवों से अनन्त गुणित विस्रसोपचय भी उसी क्षेत्र में रहते हैं। इस प्रकार से लोक के परिपूर्ण होने तक सभी दिशाओं में लोक का एक एक प्रदेश बढ़ाते जाना चाहिए।

अब यहाँ पर उत्सेध घनांगुल के असंख्यातवें भाग प्रमाण एक एक अवगाहना में स्थित जीवों का अल्पबहुत्व कहते हैं वह इस प्रकार है–

तैजस कायिक जीव असंख्यात लोक प्रमाण हैं। तैजसकायिक जीवों से पृथ्वीकायिक जीव विशेष अधिक हैं। पृथ्वीकायिक जीवों से जलकायिक जीव विशेष अधिक हैं और जलकायिक जीवों से वायुकायिक जीव विशेष अधिक हैं और वायुकायिक जीवों से वनस्पति कायिक जीव अनन्तगुणे हैं। इस प्रकार से सर्व जीव राशि के द्वारा यह लोकाकाश परिपूर्ण है, ऐसा श्रद्धान करना चाहिए।

यहाँ पर यह विशेष ध्यान रखना चाहिए कि उपर्युक्त सभी जीव सूक्ष्म लेने बादर नहीं त्रस भी नहीं क्योंकि वे सर्वत्र लोक में नहीं पाये जाते।

अभ्यास–माला

(1) आकाश की अवगाहना शक्ति के महात्म्य को अन्य प्रकार से भी बताइये ।

(2) उत्सेध घनागुल के असख्यातवें भाग प्रमाण अवगाहना क्षेत्र मे जीवों का अल्पबहुत्व क्या है ?

(3) उपर्युक्त वर्णन में कौनसे जीव लेने और कौनसे नहीं लेने उसका कारण भी बताइये ?

सतरहवाँ अध्याय

अब विस्तार के भय से विषय को पूर्ण करते हैं और इस अध्याय में केवलज्ञान की एक समय की पर्याय की शक्ति बताकर इस विषय को जानकर क्या करना चाहिए, सोई संक्षेप में कहते हैं -

संसार में अपनी जुदी जुदी सत्ता को लिए हुए अक्षय अनन्त जीव हैं और प्रत्येक जीव में अक्षय अनन्त गुण हैं। यद्यपि एक जीव के गुणो की संख्या आकाश के प्रदेशों से भी अनन्त गुणी है तो भी आलाप से वह अनन्त ही कही जाती है। इन गुणो में से प्रत्येक गुण के असंख्यात असंख्यात प्रदेश हैं। क्योंकि जीव असंख्यात (लोकप्रमाण) प्रदेशी है और निश्चय से जीव और गुणों में भेद नहीं है- वे अभिन्न हैं। जीव के उक्त एक एक प्रदेश में अनन्त कर्म व नो कर्म वर्गणायें हैं। जो आत्मप्रदेश से एक क्षेत्रावगाह रूप हो रही हैं और एक एक कर्म नो कर्म वर्गणाओं में अनन्तानन्त वर्ग (पुद्गल परमाणु) है। क्योंकि अनन्त परमाणु मिले बिना (जघन्यपनें अभव्यो से अनन्तगुणे और उत्कृष्टपने सिद्धों के अनन्तवें भाग परमाणुओं की एक वर्गणा होती है)। एक कर्म व नो कर्मरूप वर्गणा नहीं बन सकती। इन सब परमाणुओं मे भी प्रत्येक में अनन्त अनन्त गुण हैं और एक एक गुण भूत भविष्य व वर्तमान की अपेक्षा अनन्त पर्यायो रूप परिणमन करता है और एक एक पर्याय के अविभाग प्रतिच्छेदो की अपेक्षा अनन्त अनन्त (सर्वजीव राशि से अनन्तगुणें एक पर्याय में अविभाग प्रतिच्छेद होते हैं) भेद हैं। इन सब पर्यायों के अनन्त अनन्त भेद वर्तमान में हैं। उनसे अनन्तगुणें भेद पूर्व के भूतकाल के अनन्तकाल में हो गये हैं और उनसे अनन्तगुणे भविष्यतकाल में होवेंगे। इन सबको एक समय मे जो जानता है देखता है उसे सर्वज्ञ देव कहते हैं।

तथा यहाँ तक जितना भी सूक्ष्म अन्तरित और दूरवर्ती ज्ञेय (द्रव्य, गुण, पर्याय, अविभाग प्रतिच्छेद) मौजूद हैं उनसे भी यदि अनन्तानन्त गुणे ज्ञेय होते तो

भी उन सबको केवलज्ञानी प्रत्येक समय में आकाश में एक तारे की भाँति स्पष्ट जान लेते। ऐसी केवलज्ञान की एक समय की शक्ति है। ऐसी ऐसी अनन्त (केवलज्ञान जैसी) पर्यायों का पिण्ड एक गुण है और ऐसे ऐसे अनन्तानन्त गुणों का स्वामी प्रत्येक आत्मा है। चूँकि मैं भी उनमें से एक आत्मा हूँ। इसलिए मुझमें भी ऐसे ऐसे अनन्त गुण मौजूद हैं। ऐसी अपनी आत्मा की महिमा लाकर पर की महिमा (ज्ञेयो की) छोड़कर अपनी आत्मा का आश्रय करके और उसमें लीन होकर अतिन्द्रिय आनन्द का भोग करते करते परिपूर्ण सुख अवस्था (मोक्ष) प्राप्त करनी चाहिए। अन्यथा इस केवलज्ञान की सूक्ष्मता को जानने का कोई लाभ नहीं। इसका तो यही प्रयोजन है।

(74) शंका- संसार में जितने भी ज्ञेय (द्रव्य, गुण, पर्याय और अविभाग प्रतिच्छेद) हैं यदि उनसे अनन्त गुणे भी होते तो भी उनको केवलज्ञानी आकाश में एक तारे की भाँति देख लेते। यह आप किस आधार से कहते हैं क्योंकि श्री कुन्दकुन्दाचार्य ने प्रवचन सार की गाथा नं० 23 में जो यह कहा है-''णाणं णेय पमाण'' ज्ञान ज्ञेय प्रमाण है सो उससे किस प्रकार मेल होगा ?

समाधान- श्री कुन्दकुन्दाचार्य ने प्रवचन सार की गाथा नं० 23 में जो यह कहा है कि- ''णाणं णेय पमाण'' अर्थात् ज्ञान ज्ञेय प्रमाण है। वह तो केवलज्ञान की शक्ति की व्यक्ति की अपेक्षा कहा है। वैसे शक्ति की अपेक्षा से तो समस्त ज्ञेयों से भी अनन्त गुणी शक्ति केवलज्ञान में जानने की है। इसके लिए मंडप की बेल का दृष्टान्त भी आगम में दिया गया है अर्थात् मंडप के अनुसार ही बेल बढ़ती है। यदि मंडप बड़ा होता तो बेल भी बढ़ती लेकिन मंडप जितना है उतनी ही तो बेल फैलेगी उसी प्रकार केवलज्ञान की शक्ति में भी लगा लेना क्योंकि संसार में जितने भी ज्ञेय हैं उनसे भी अनन्तानन्त गुणे केवलज्ञान के अविभाग प्रतिच्छेदों की संख्या है संख्यामान के 21 भेदों में केवलज्ञान को सर्वोत्कृष्ट अनन्तानन्त कहा है। यदि अलौकिक जैन गणित में वर्णित चौदह धाराओं में से द्विरूप वर्गधारा को समझ लिया जावे तो यह विषय बिलकुल स्पष्ट हो जायेगा। द्विरूप वर्ग धारा का वर्णन संक्षिप्त रूप से इसी पुस्तक के शंका समाधान नं० 38 अध्याय सातवें में किया गया है। वहाँ से देखी जा सकती है।

अभ्यास–माला

(1) इस अध्याय में सर्वज्ञदेव किसे कहा है ?

(2) केवल ज्ञान की महिमा को समझने का क्या अभिप्राय है ? क्या प्रयोजन है ?

(3) ''णाणं णेय पमाणं'' सूत्र का क्या अर्थ है ?

(4) मंडप और बेल का दृष्टान्त क्या है ?

(5) संख्यामान के 21 भेदों में सर्वोत्कृष्ट अनन्तानन्त किसको बताया है ?

(6) द्विरूप वर्गधारा का अन्तिम स्थान कौनसा है ?

अट्ठारहवाँ अध्याय

अब इस अन्तिम अध्याय में जो लोग करणानुयोग को अप्रयोजन भूत समझकर अध्ययन नहीं करते हैं तथा प्रथमानुयोग, चरणानुयोग व द्रव्यानुयोग के पक्षपाती करणानुयोग में अरुची होने का विपरीत विचार प्रकट करते हैं तथा करणानुयोग में दोष कल्पना करते हैं। सो उस दोष कल्पना का निराकरण करते हुए साथ ही करणानुयोग की उपयोगिता का भी आचार्यकल्प पं० टोडरमल जी कृत मोक्ष मार्ग प्रकाशक तथा गोम्मटसार की पीठिका को तथा अन्य भी आधार लेकर आगम अनुसार कथन करते हैं।

शास्त्रों का ज्ञान करने को कारण भूत दो विद्यायें हैं। एक अक्षर विद्या और दूसरी अंक विद्या (गणित विद्या) भाषा व्याकरण द्वारा अक्षर का ज्ञान होता है। और गणित शास्त्र के द्वारा अंक विद्या का ज्ञान होता है। इन दोनों विद्याओं का ज्ञान होने पर शास्त्रों का अभ्यास सुगम होता है इसलिए कहा जाता है कि मानव जाति की जीती जागती दो आखें हैं एक को अंक और दूसरी को अक्षर कहते हैं। इसीलिए इस युग की आदि में प्रथम तीर्थंकर श्री आदिनाथ भगवान् ने अपनी एक पुत्री को अक्षर विद्या और दूसरी पुत्री को अक विद्या सिखाई। सो दोनों विद्या कार्यकारी हैं।

सांसारिक, वैदिक तथा धार्मिक आदि सभी कार्यो में गणित उपयोगी है। अर्थशास्त्र में, संगीत व नाट्यशास्त्र में, पाकशास्त्र में और इसी तरह औषधिशास्त्र में तथा वास्तुविद्या (निर्माणकला) में, छंद, अलकार, तर्क, व्याकरण आदि इन सभी कलाओं में गणना का विज्ञान श्रेष्ठ माना जाता है। सूर्य तथा अन्य ग्रह-नक्षत्रो की गति के सम्बन्ध में ग्रहण और चन्द्रमा की गति के विषय में सर्वत्र इसे उपयोग में लाते हैं।

द्वीपों, समुद्रों और पर्वतों की संख्या, व्यास और परिधि, भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिषी, कल्पवासी देवों के तथा नारकी जीवों के श्रेणीबद्ध प्रकीर्णक और इन्द्रक निवास-स्थानों के माप सभी गणित के द्वारा जाने जाते हैं। उन स्थानो में

रहने वाले जीवों के संस्थान, आयु उनकी गति आदि, इन सबका आधार गणित है। और व्यर्थ के प्रलापों से क्या लाभ है ? जो कुछ इन तीनों लोकों में चराचर (गतिशील और स्थिर) वस्तुएँ हैं उनका अस्तित्व गणित से अलग नहीं है।

करणानुयोग के जितने भी शास्त्र हैं, उनमें गणित का प्रयोजन मुख्यतया पाया जाता है। "करण" अर्थात् गणित कार्य के कारण भूत सूत्र, उनका जिसमें "अनुयोग" अधिकार है वह करणानुयोग है। इसमें गणित वर्णन की मुख्यता है। तथा अन्य अनुयागों में भी थोड़ा बहुत गणित का प्रयोजन पाया जाता है। इसलिए करणानुयोग रूप शास्त्र के अभ्यास करने के लिए गणित का ज्ञान अवश्य करना चाहिए। आचार्य श्री नेमीचन्द सिद्धान्त चक्रवर्ती ने त्रिलोक सार में तीनों लोकों का वर्णन करने से पहले अलौकिक गणित के चार अध्याय (1) संख्यामान के 21 भेद, (2) उपमामान के 8 भेद, (3) चौदह धाराये, (4) उपमामान की वर्गशलाका एवं अर्धच्छेदों का ज्ञान का वर्णन किया फिर अधोलोक का वर्णन प्रारम्भ किया। इससे भी सिद्ध होता है कि करणानुयोग में अलौकिक गणित का कितना महत्त्व है तथा अलंकारादिक का ज्ञान होने पर प्रथमानुयोग का, गणितादिक का ज्ञान होने पर करणानुयोग का, सुभाषित का ज्ञान होने पर चरणानुयोग का, न्यायादिक का ज्ञान होने पर द्रव्यानुयोग का ज्ञान होता है। इसलिए गणित का अभ्यास करना। गणित विद्या का ज्ञान हुए बिना करणानुयोग के शास्त्रों का वास्तविक भाव नहीं खुलता। और भाव खुले बिना ज्ञान निर्मल नहीं होता और ज्ञान निर्मल हुए बिना सम्यग्दर्शन नहीं होता।

आ अर्थात् आप्त। ग अर्थात् गणधर। म अर्थात् मुनि। अर्थात् आप्त (परमात्मा) के द्वारा कहा गया हो, गणधर के द्वारा रचा गया हो, मुनि द्वारा मनन किया गया हो, ऐसा आगम चार भागो मे बाँटा गया है। जिनका नाम क्रमश: (1) प्रथमानुयोग (2) करणानुयोग (3) चरणानुयोग (4) द्रव्यानुयोग है। चारो अनुयोगों का तात्पर्य वीतरागता है। जिस प्रकार एक खाट के चार पाये होते हैं, जिन पर वह खाट टिकी हुई है। खाट का एक भी पाया कमजोर हो तो उस पर सोने वाला सुख की नींद नहीं सो सकता है। उसी प्रकार चारों अनुयोगों का महत्त्व समझना चाहिए।

अब क्रमश: प्रथमानुयोग, चरणानुयोग व द्रव्यानुयोग के पक्षपाती करणानुयोग के अभ्यास में अरुचि होने के कारण विपरीत विचार प्रकट करते हैं तथा करणानुयोग में दोष कल्पना करते हैं सो उनका निराकरण करते हैं।

(75) **शंका**– करणानुयोग में गणित की मुख्यता होने के कारण कठिनता बहुत है इसलिए उसके अभ्यास में खेद होता है ।

समाधान– उनसे कहते हैं– यदि वस्तु शीघ्र जानने में आवे तो वहाँ उपयोग उलझता नहीं है तथा जानी हुई वस्तु को बारम्बार जानने का उत्साह नहीं होता, तब पाप कार्यों में उपयोग लग जाता है, इसलिए अपनी बुद्धि अनुसार कठिनता से भी जिसका अभ्यास होता जाने उसका अभ्यास करना तथा जिसका अभ्यास हो ही न सके उसका कैसे करे ?

तथा तू कहता है खेद होता है परन्तु प्रमादी रहने में तो धर्म है नहीं। प्रमाद से सुखी रहे, वहाँ तो पाप ही होता है। जितना हो सके उतना ही अभ्यास कर, और तू पाप कार्य में तो प्रवीण और इस अभ्यास में कहता है ''मेरी बुद्धि नहीं है'' सो यह तो पापी का लक्षण है।

द्रव्यानुयोग का पक्षपाती कहता है कि-

करणानुयोग में जीव के गुणस्थानादि रूप विशेष और कर्म के विशेष तथा त्रिलोकादिक की रचना का वर्णन किया है; किन्तु उनको जानने से तो अनेक विकल्प-तरंग उत्पन्न होते हैं और कुछ सिद्धि नहीं है। इसलिए अपने शुद्ध स्वरूप का अनुभव करना वा स्व-परका भेद विज्ञान करना, इतना ही कार्यकारी है। अथवा इनके उपदेशक जो अध्यात्म शास्त्र हैं उन्हीं का अभ्यास करना योग्य है। अब उसी का समाधान करते हैं-

हे सूक्ष्माभास ! तूने कहा वह सत्य है किन्तु अपनी अवस्था देखना। जो स्वरूपानुभव में वा भेद विज्ञान में उपयोग निरन्तर रहता है तो अन्य विकल्प क्यों करने ? वहाँ ही स्वरूपानन्द सुधारस का स्वादी होकर सन्तुष्ट होना किन्तु निचली अवस्था में वहाँ निरन्तर उपयोग रहता ही नहीं है, उपयोग अनेक अवलम्बों को चाहता है। अत: जिस काल वहाँ उपयोग न लगे तब गुणस्थानादि विशेष जानने का अभ्यास करना। और सुनो! तुम्हारे परिणाम स्वरूपानुभव दशा में तो वर्तते नहीं और विकल्प जानकर गुणस्थानादि भेदों का विचार नहीं करोगे तो तुम 'इतो भ्रष्ट ततो भ्रष्ट' होकर अशुभोपयोग में ही प्रवर्तन करोगे वहाँ तेरा बुरा होगा।

तथा तूने कहा जो अध्यात्म शास्त्र का ही अभ्यास करना युक्त है किन्तु वहाँ भेद विज्ञान करने के लिए स्वपर का सामान्यपने स्वरूप निरूपण है और विशेष ज्ञान बिना सामान्य का जानना स्पष्ट नहीं होता। सामान्यपनें से तो वेदान्त आदि

शास्त्राभासो में जीव का स्वरूप शुद्ध कहते हैं। वहाँ विशेष को जाने-बिना यथार्थ अयथार्थ का निश्चय कैसे हो ?

और सुन। जीव का गुण ज्ञान है सो विशेष जानने से आत्मगुण प्रकट होता है, अपना श्रद्धान भी दृढ़ होता है इसलिए जीव और कर्म का विशेष अच्छी तरह जानने से ही स्वपर जानना स्पष्ट होता है। उस विशेष को जानने के लिए करणानुयोग के शास्त्रों का अभ्यास करना। कारण सामान्य शास्त्र से विशेष शास्त्र बलवान है। वही कहा है-"सामान्य शास्त्र तो नूनं विशेषो बलवान भवेत्"

(76) शंका- अब पुनः द्रव्यानुयोग का पक्षपाती कहता है कि आपने जो कहा वह सत्य किन्तु करणानुयोग द्वारा विशेष जानने से भी द्रव्यलिंगी मुनि अध्यात्म श्रद्धा बिना संसारी ही रहते हैं और अध्यात्म का अनुसरण करने वाले तिर्यचादि को अल्प श्रद्धान से भी सम्यक्त्व प्राप्त हो जाता है वा "तुष माष भिन्नं" इतना ही श्रद्धा करने से शिवभूति नामक मुनि मुक्त हुए। अतः हमारी बुद्धि से तो विशेष विकल्पों का साधन नहीं होता। प्रयोजन मात्र आध्यात्म का अभ्यास करेंगे।

समाधान- द्रव्यलिंगी जिस प्रकार करणानुयोग द्वारा विशेष को जानता है उसी प्रकार आध्यात्म शास्त्रों का ज्ञान भी उसको होता है, किन्तु मिथ्यात्व के उदय से अयथार्थ साधन करता है तो शास्त्र क्या करे ? तथा तूने कहा कि तिर्यंचादि को सामान्य श्रद्धान से कार्य सिद्धि कही, तो उनके भी अपने क्षयोपशम के अनुसार विशेष का जानना भी होता है अथवा पूर्व पर्यायों में (पूर्वभवों में) विशेष का अभ्यास किया था उसी सस्कार के बल से विशेष का जानना होता है।

तथा जिस प्रकार किसी को कहीं पर गडा हुआ धन पाया तो 'हम भी उसी प्रकार पावेंगे' ऐसा मानकर सभी को व्यापार आदि का त्याग न करना। उसी प्रकार किसी को अल्प श्रद्धान द्वारा ही कार्य सिद्धि हुई हो तो 'हम भी इस प्रकार ही कार्य की सिद्धि करेगे,' ऐसा जानकर सब ही को विशेष अभ्यास का त्याग करना उचित नहीं है, इसलिए यह राजमार्ग नहीं हैं, राजमार्ग तो यही है जिससे नाना प्रकार के विशेष (भेद) जानकर तत्त्वो का निर्णय होते ही कार्य सिद्धि होती है।

"तथा आत्मानुभव सर्वोत्तम कार्य है: परन्तु सामान्य अनुभव में उपयोग टिकता नहीं हैं, तब अन्य विकल्प होते है वहाँ करणानुयोग का अभ्यास हो तो उस विचार में उपयोग लगता हैं।

"यह विचार वर्तमान में रागादिक घटाता है और आगामी रागादिक घटाने का कारण है, इसलिए यहाँ उपयोग लगाना।

" कर्मादिक के नाना प्रकार के भेद जाने, उनमें रागादि करने का प्रयोजन नहीं है, इसलिए रागादिक बढ़ते नहीं हैं; वीतराग होने का प्रयोजन जहाँ-तहाँ प्रकट होता है, इसलिए रागादि मिटाने का कारण है।

"यहाँ कोई कहे-कोई कथन तो ऐसा ही है, परन्तु द्वीप समुद्रादिक के योजनादिक का निरूपण किया उनमें क्या सिद्धि है ?

" **उत्तर**- उनको जानने पर उनमें कुछ इष्ट-अनिष्ट बुद्‌धि होती नहीं, इसलिए पूर्वोक्त सिद्धि होती है।

"फिर वह कहता है- ऐसा है तो जिनसे कुछ प्रयोजन नहीं है ऐसे पाषाणादिक को भी जानते हुए वहाँ इष्ट अनिष्टपना नहीं मानते इसलिए वह भी कार्यकारी हुआ।

" **उत्तर**- सरागी जीव रागादि प्रयोजन बिना किसी को जानने का उद्यम नहीं करता, यदि स्वयमेव उनका जानना हो तो अतरंग रागादिक के अभिप्रायवश वहाँ उपयोग को छुड़ाना ही चाहता है। यहाँ उद्यम द्वारा द्वीप-समुद्रादिक को जानता है, वहाँ उपयोग लगाता है; सो रागादि घटने पर ऐसा कार्य होता है। तथा पाषाणादिक में इस लोक का कोई प्रयोजन भासित हो जाये तो रागादिक हो आते हैं और द्वीपादिक में इस लोक सम्बन्धी कार्य कुछ नहीं है इसलिए रागादिक का कारण नहीं है।

"यदि स्वर्गादिक की रचना सुनकर वहाँ राग हो तो परलोक सम्बन्धी होगा; उसका कारण पुण्य को जाने तब पाप छोड़कर पुण्य में प्रवर्ते इतना ही लाभ होगा, तथा द्वीपादिक को जानने पर यथावत रचना भासित हो तब अन्य मतादिक का कहा झूठ भासित होने से सत्य श्रद्धानी हो और यथावत् जानने से भ्रम मिटने पर उपयोग की निर्मलता हो; इसलिए वह अभ्यास कार्यकारी है।"

अब चरणानुयोग का पक्षपाती कहता है कि-

करणानुयोग में गुणस्थान, मार्गणादिक का व कर्म प्रकृतियों का कथन किया व त्रिलोकादिक का कथन किया; सो उन्हें जान लिया कि "यह इस प्रकार है" इससे अपना कार्य क्या सिद्ध हुआ ? या तो अरहन्तादि की पूजा, भक्ति, नाम

स्मरणादि करे या व्रत-तप-दानादिक करें वा विषय-कषायादिक से उदासीन बने, इत्यादिक जो शुभ कार्य किया जाय तो आत्महित है, इसलिए इनका प्ररुपक चरणानुयोग का उपदेशादिक करना। अब उसी का समाधान करते है-

हे स्थूल बुद्धि ! परमेश्वर तो वीतरागी हैं; भक्ति करने से प्रसन्न होकर कुछ करते नहीं हैं। भक्ति करने से कषाय मन्द होती है, उसका स्वमेव उत्तम फल होता है। सो करणानुयोग के अभ्यास में उससे भी अधिक मन्द कषाय होती है। इसलिए इसका फल अति उत्तम होता है।

तथा व्रत-दानादिक तो कषाय घटाने के बाह्य निमित के साधन है और करणानुयोग का अभ्यास करने पर वहाँ उपयोग लग जाये तब रागादिक दूर होते हैं सो यह अन्तरग निमित का साधन है; इसलिए यह विशेष कार्यकारी है।

तथा तूने व्रतादिक शुभ कार्य कहे सो वह करने योग्य ही हैं किन्तु वे सर्व सम्यक्त्व के बिना ऐसे हैं जैसे अंक बिना विंदि और जीवादिक का स्वरूप जाने बिना सम्यक्त्व का होना ऐसा जैसे बाँझ का पुत्र, अतः जीवादिक जानने के अर्थ करणानुयोग के शास्त्रों का अभ्यास अवश्य करना। तथा तूने जिस प्रकार व्रतादिक शुभ कार्य कहा: और उससे पुण्य बन्ध होता है। उसी प्रकार जीवादिक जानने रूप ज्ञानाभ्यास है वह प्रधान शुभ कार्य है। इससे अतिशय पुण्य का बन्ध होता है।

तथा उन व्रतादिक के भी ज्ञानाभ्यास की ही मुख्यता है उसी को कहते हैं। जो जीव प्रथम जीव समासादि जीवों के विशेष जानकर पश्चात ज्ञान से हिंसादिक का त्यागी बनकर व्रत को धारण करे वह व्रती है। जीवादिक के विशेष को जाने बिना कथंचित हिसादिक के त्याग से आपको व्रती माने तो वह व्रती नहीं है। कहा भी है-

''दया दया सबही कहें, दया न जाने कोय।
जीव जाति जाने बिना दया कहाँ से होय।''

आगम में भी कहा है-

''कायन्द्रिय गुणस्थान जीवस्थान कुलायुषाम।
भेदानयोनि विकल्पाश्चं निरुप्यगम चक्षुषा॥ 116॥
कियासु स्थान पूर्वासु बधादि परिवर्जनम्।
षण्णां जीव निकाय नाम हिंसाधमहाव्रतम्''॥ 117॥

वृहद्हरिवंश पुराण

अर्थ- काय, इन्द्रियाँ, गुणस्थान, जीवस्थान, कुल और आयु के भेद तथा योनियों के नाना विकल्पों का आगमरूपी चक्षु के द्वारा अच्छी तरह अवलोकन कर बैठने-उठने आदि क्रियाओं में छह काय के जीवों के वध-वन्धनादिका त्याग करना सो प्रथम अहिंसाव्रत कहलाता है।

मूलाचार में भी कहा है-

''कायेन्द्रियगुण मग्गणा कुलाउ जोणीसु सव्व जीवाणं।

णाउण च ठाणादिसु हिंसादि विवज्जणमहिंसा।'' 5-289

अर्थ- कायइन्द्रिय गुणस्थान, मार्गणास्थान, कुल, आयु, योनि इनमें सब जीवों को जानकर कायोत्सर्गादि क्रियाओं में हिंसा आदि का त्याग करना अहिंसा महाव्रत है।

इसलिए व्रत पालने में भी ज्ञानाभ्यास की ही प्रधानता है।

तथा तप दो प्रकार के है- (1) बहिरंग (2) अन्तरंग। जिसके द्वारा शरीर का दमन हो वह बहिरंग तप है और जिससे मन का दमन होवे, वह अन्तरंग तप है। इनमें वहिरंग तप से अन्तरंग तप उत्कृष्ट है। उपवासादिक बहिरंग तप है। ज्ञानाभ्यास अन्तरंग तप है। सिद्धान्त में भी छह प्रकार के अन्तरंग तपों में चौथा स्थाध्याय नाम का तप कहा है, उससे उत्कृष्ट व्युत्सर्ग और ध्यान हैं, इसलिए तप करने में भी ज्ञानाभ्यास की ही प्रधानता है।

तथा जीवादिक के विशेष रूप गुणस्थानादिक का स्वरूप जानने से ही अरहन्त आदि का स्वरूप भले प्रकार पहिचाना जाता है। अपनी अवस्था पहचानी जाती है, ऐसी पहचान होने पर जो अन्तरंग में तीव्र भक्ति प्रकट होती है वही बहुत कार्यकारी है। जो कुल क्रमादिक से भक्ति होती है वह किंचित मात्र ही फल देती है। इसलिए भक्ति में भी ज्ञानाभ्यास ही प्रधान है।

तथा दान चार प्रकार का होता है, उनमें आहारदान, औषधदान, अभयदान तो तत्काल क्षुधा के दुःख को या रोग को या मरणादिक दुःख को दूर करते हैं और ज्ञानदान है वह अनन्त भव सन्तान से चले आ रहे दुःख को दूर करने में कारण है। तीर्थंकर, केवली, आचार्यादिक के भी ज्ञानदान की प्रवृत्ति की ही मुख्यता है। इससे ज्ञानदान उत्कृष्ट है, इसलिए अपने ज्ञानाभ्यास हो तो अपना भला कर लेता है और अन्य जीवों को भी ज्ञानदान देता है। ज्ञानाभ्यास के बिना ज्ञानदान कैसे हो सकता है। इसलिए दानों में भी ज्ञानाभ्यास ही प्रधान है।

तथा ज्ञान के बिना जो उदासीनता होती है वह पुण्यफल की दाता है। मोक्ष मार्ग का साधन नहीं है। अतः उदासीनता में भी ज्ञानाभ्यास ही प्रधान है।

प्रथमानुयोग का पक्षपाती कहता है कि-

वर्तमान में जीवों की बुद्धि मद बहुत है उन्हीं को ऐसे सूक्ष्म व्याख्यान रूप शास्त्र में कुछ भी समझ होती नहीं। इससे तो तीर्थंकरादिक की कथा का उपदेश दिया जाय तो ठीक समझ लेगा और समझ कर पाप से डरे, धर्मानुरागरूप होगा इसलिए प्रथमानुयोग का उपदेश कार्यकारी है- उन्हें उत्तर दिया जाता है।

अब भी सब जीव तो एक से नहीं हुए हैं, हीनाधिक बुद्धि दीख रही है अतः जैसे जीव हो वैसा उपदेश देना अथवा मंदबुद्धि जीव भी सिखाने से अभ्यास करने से बुद्धिमान होता दीख रहा है। जैसा कि एक कवि ने कहा भी है-

''करत करत अभ्यास के, जड़मति होत सुजान।
रस्सी आवत जातते, सिलपर होत निशान॥
एक चरन हु नितपढ़े, तो काटे अज्ञान।
पनिहारी की नेजसो, सहज कटे पाषाण॥''

इसलिए जो बुद्धिमान है उन्हीं को तो करणानुयोग के ग्रन्थ कार्य कारी हैं और जो मन्द बुद्धि है वे विशेष बुद्धि द्वारा सामान्य विशेष रूप गुणस्थानादि का स्वरूप सीखकर करणानुयोग के अभ्यास में प्रवर्तन करें।

तथा तूने कहा जो प्रथमानुयोग सम्बन्धी कथादिक सुनने में पाप से डरकर धर्मानुरागरूप होता है सो वह तो वहाँ दोनों कार्य शिथिलता लिए होते हैं। यहाँ पुण्य-पाप के कारण कार्यादिक विशेष जानने से वे दोनों कार्य दृढ़ता लिए होते हैं। अतः उनका अभ्यास करना। इस प्रकार प्रथमानुयोग के पक्षपाती को करणानुयोग के शास्त्र के अभ्यास के सन्मुख किया।

'करत करत अभ्यास के जडमति होत सुजान' कहावत के अनुसार करणानुयोग के उद्भट्ट विद्वान् स्वर्गीय श्री रतन चन्द्रजी मुख्यत्यार की जीवनी पढ़ने योग्य है सो उनकी जीवनी को उन्हीं के शब्दों में लिखते हैं। जो उन्होंने गोम्मटसार कर्मकाण्ड की सिद्धान्त दीपिका हिन्दी टीका के सम्पादकीय लेख में लिखी है यह हिन्दी टीका 105 आर्यिका आदिमतीजी ने की है।

''लगभग 62 वर्ष पूर्व की घटना है जब सन 1935 में विद्वद् जगत् के सुप्रसिद्ध विद्वान स्व० श्री माणिकचन्द्र जी कौन्डेय न्यायाचार्य दशलक्षण पर्व के

पावन अवसर पर सहारनपुर में शास्त्र प्रवचन के लिए आमंत्रित करने पर पधारे थे। प्रवचन करते हुए उन्होंने तत्वार्थ सूत्र की व्याख्या करते हुए उपशम सम्यग्दर्शन का स्वरूप बताया; किन्तु ज्ञान का अल्प क्षयोपशम होने के कारण उनके द्वारा आगमानुसार प्रतिपादित उपशम सम्यग्दर्शन का स्वरूप मैं (रतनचन्दजी मुखत्यार) नहीं समझ सका, परन्तु इतना अवश्य समझ गया था कि सम्यग्दर्शन की प्राप्ति से ही मेरा आत्महित हो सकता है। शास्त्र प्रवचन समाप्त होने के पश्चात् अपनी जिज्ञासा को शांत करने के लिए मैंने पंडितजी से पूछा कि प्रथमोपशम सम्यक्त्व की प्राप्ति का उपाय और उसका स्वरूप किस ग्रन्थ में है। पंडितजी ने मेरे प्रश्न का साहजिक उत्तर देते हुए कहा कि "लब्धिसार-क्षपणासार" ग्रन्थ में इसकी विस्तृत प्ररुपणा है।

उन दिनों सहारनपुर नगर के जैन मन्दिरों में मुद्रित शास्त्रों के पढ़ने पर प्रतिबन्ध था। मात्र हस्तलिखित शास्त्रों को पढ़ने की आज्ञा थी वे भी शुद्ध वस्त्र पहनकर ही पढ़े जा सकते थे। यही कारण था कि सहारनपुर जैसे धर्मप्राण नगर में मुद्रित ग्रन्थ उपलब्ध नहीं थे। अपने निर्णय के अनुसार मैंने स्व० लाला भगवान दास जी द्वारा निर्मपित जिन मन्दिर में बैठकर स्व० लाला जम्बू प्रसाद जी रईस के निजी शास्त्र भण्डार से हस्तलिखित "लब्धिसार क्षपणासार" प्राप्त कर प्रातः कालीन शुभ बेला में स्वाध्याय प्रारंभ किया। हिन्दी संस्कृत व प्राकृत भाषा से अनभिज्ञ तथा कर्म प्रकृतियों के नाम तक भी न जानने वाले मात्र उर्दू व अँग्रेजी भाषा से भिज्ञ मेरे द्वारा 'लब्धिसार क्षपणासार' जैसे महान् ग्रन्थ का स्वाध्याय करने का साहस करना ऐसे लगा जैसे कोई पाँव से लगंडा व्यक्ति किसी दुरुह एवं ऊँचे पहाड़ पर चढ़ना चाह रहा हो। अपने आप को इसके लिए अयोग्य जानते हुए भी अन्तःकरण की प्रबलतम् प्रेरणा मिलते रहने से निराशा ने कभी भी मुझपर अपना साम्राज्य नहीं किया। आशा का दीप सतत मन को दृढ़ से दृढतम होने में प्रकाश प्रदान करता रहा, फलस्वरूप स्वाध्याय प्रारम्भ रहा, क्योंकि आत्महित की भावना प्रबल थी।

प्रथम दिन मैंने पं० प्रवर टोडरमलजी द्वारा लिखित उक्त ग्रन्थ सम्बन्धी पीठिका के प्रथम पृष्ठ को पढ़ा किन्तु एक घंटे के परिश्रम के बाद कुछ भी समझ में नहीं आया। अतः उस दिन स्वाध्याय बन्द कर दिया। क्योंकि वकालत सम्बन्धी कार्य करने का समय हो गया था। प्रथम दिन के समान ही दूसरे दिन भी पीठिका के उसी पृष्ठ का स्वाध्याय किया किन्तु पूर्व की अपेक्षा कोई प्रगति नहीं

हुई अर्थात् दूसरे दिन भी कुछ समझ में नहीं आया। किन्तु निरन्तर प्रयास करते रहने से धीरे-धीरे पीठिका सम्बन्धी विषय स्पष्ट होने लगा और "करत-करत अभ्यास के जड़मति होत सुजान" उक्ति जीवन में प्रत्यक्ष अनुभव में आने लगी।

धीरे-धीरे जैनदर्शन सम्बन्धी करणानुयोग के प्रति मेरा आकर्षण बढ़ता ही गया। फलस्वरूप जीवन में करणानुयोग सम्बन्धी वर्तमान में उपलब्ध प्रायः सभी प्रमुख ग्रन्थों के स्वाध्यायका अवसर प्राप्त हुआ।

उसी समय धवल ग्रन्थ की दो पुस्तकें प्रकाशित हो गई। तब मैंने धवला प्रथम व द्वितीय पुस्तक का स्वाध्याय प्रारंभ किया। किन्तु क्षयोपशम की मन्दता से बहुत कम समझ में आया। इस पर भी हतोत्साही नहीं हुआ और धवलग्रन्थ के अगामी प्रकाशित भाग भी मगाता रहा और स्वाध्याय करता रहा। परन्तु स्थिति मे कोई परिवर्तन नहीं हुआ। जो स्थल समझ में नहीं आते उनमें से कुछ विषय श्री पं० फूलचन्द जी सिद्धान्त शास्त्री व श्री पं० हीरालाल जी सिद्धान्त शास्त्री के पास भेजता रहा। उक्त दोनों विद्वान् उनका समाधान भेजने की कृपा करते रहे। जिस समय धवल की पाँचवी पुस्तक प्रकाशित हुई और उसे मंगाकर स्वाध्याय किया तो मानों ऐसा लगा जैसे ज्ञान कपाट खुल ही गये हों। इस पुस्तक के स्वाध्याय से मात्र इसके ही विषय का हार्द समझ में आया हो ऐसी बात नही थी, अपितु उससे पूर्व पुस्तकों के भी प्रतिपाद्य विषय स्पष्ट हो गया। इस प्रकार निरन्तर परिश्रम पूर्ण वृत्ति के फलस्वरूप विषय तो स्पष्ट होने लगा ही किन्तु साथ ही लिपिकारों के प्रमादवश होने वाली तथा विषय की दुरुहता के कारण विषय स्पष्ट न होने से मुद्रित अनुवाद मे जो अशुद्धियाँ रहने लगी वे भी समझ में आने लगी। कहने का तात्पर्य यह है कि ज्ञान के क्षयोपशम की कमी के कारण मनुष्य को महान् ग्रन्थो के स्वाध्याय से विमुख नहीं होना चाहिए, अपितु प्रयत्नशील रहना चाहिए, क्योंकि स्वाध्याय से ज्ञानावरण कर्म की अनुभाग शक्ति क्षीण होती है, जिससे ज्ञानका क्षयोपशम वृद्धिगत होता है 'स्वाध्याय परमः तपः' कहावत भी है- जब तक तुम सफल नहीं होते तब तक बार बार प्रयत्न करना चाहिए। इस सम्बन्ध में एक कथा भी प्रचलित है कि एक बार एक राजा युद्ध में पराजित होकर युद्ध भुमि से भागकर एक मकान मे छिपकर बैठ गया। जिस कमरे में वह बैठा था वहाँ उसने देखा कि एक मकड़ी धागे के सहारे कमरे की छत तक पहुँचना चाहती है। किन्तु

कुछ दूर चढ़ने के बाद पुनः पृथ्वी पर गिर जाती है। एक बार दो बार-तीन बार ही नहीं, किन्तु 99 बार वह अपने उद्देश्य मे असफल रही, फिर भी प्रयत्न जारी रहा और अन्तिम प्रयास में वह सफल होकर छत तक पहुँच गई। यह देख राजा ने अपने मन में सोचाकि एक छोटे से जन्तु ने 99 बार असफल होने पर भी प्रयत्न नहीं छोड़ा और जबकि मैं एक डरपोक हरिण के समान यहाँ छिपा बैठा हुआ हूँ। प्रजा के लिए कुछ नहीं कर रहा हूँ। वह उठा और अपनी सेना को पुनः संगठित करके युद्ध किया तथा विजय प्राप्त की। कहने का तात्पर्य यह है कि जिन वाणी का स्वाध्याय करते समय विषय स्पष्ट न होने से निराश न होकर प्रयत्न शील रहना चाहिए।''

अब अर्थ (धन) का पक्षपाती कहता है कि- करणानुयोग के शास्त्र का अभ्यास करने से क्या है ? सर्वकार्य धन से बनते हैं। धन से ही प्रभावना आदि धर्म होते है, धनवान् के निकट अनेक पंडित आकर रहते हैं, अन्य भी सर्वकार्य की सिद्धि धन से होती है। अतः धन पैदा करने का उद्यम करना। अब उसी को कहते हैं-

रे पापी! धन कुछ अपना उत्पन्न किया तो नहीं होता भाग्य से होता है। ग्रन्थाभ्यास आदि धर्म साधन से जो पुण्य की उत्पत्ति है उसी का नाम भाग्य है। यदि धन होना है तो शस्त्राभ्यास करने से कैसे नहीं होगा ? अगर नहीं होना है तो शास्त्राभ्यास नहीं करने से कैसे होगा ? इसलिए धन का होना, न होना तो उदयाधीन (भाग्यअनुसार) है। शास्त्राभ्यास में क्यों शिथिल होता है ? और सुन। धन है वह तो विनाशीक है, भय संयुक्त हैं, पाप से उत्पन्न होता है, नरकादि का कारण है। और जो यह शास्त्राभ्यास रूपी ज्ञान धन है वह अविनाशी है, भय रहित है, धर्मरूप है, स्वर्ग-मोक्ष का कारण है। अतः महंत पुरुष तो धनादिक को छोड़कर शास्त्राभ्यास में ही लगते हैं, और तू पापी शास्त्राभ्यास को छुड़ा कर धन पैदा करने की बड़ाई करता है तो अनन्त संसारी है। तूने कहा कि प्रभावनादि धर्म भी धन से ही होता है। किन्तु वह प्रभावनादि धर्म तो किंचित सावद्य क्रिया संयुक्त है; इसलिए समस्त सावद्य रहित शास्त्राभ्यास रूपधर्म है वह प्रधान है, यदि ऐसा न हो तो ग्रहस्थ अवस्था में प्रभावनादि धर्म साधन थे, उनको छोड़कर सयमी होकर शास्त्राभ्यास में किसलिए लगते हैं ? तथा शास्त्राभ्यास करने से प्रभावनादि भी विशेष होती है।

तथा तूने कहा कि धन से सर्वकार्य की सिद्धि होती है, किन्तु ऐसा नहीं है उस धन से तो इस लोक सम्बन्धी कुछ विषयादिक कार्य इस प्रकार के सिद होते हैं। जिससे बहुत काल तक नरकादिक दु:ख सहन करने पड़ते हैं। कहा है-

''अर्थानाम अर्जने दु:खं सचितानां चरक्षणे।
नाशे दु:खं व्ययेदु:खं धिगर्थान कलेशश्रयान्॥''

अर्थ- जिस अर्थ के उपार्जन में दु:ख, उपार्जित धन की सुरक्षा में दु:ख संचित करने में दु:ख, नष्ट हो जाने पर दु:ख, अधिक खर्च हो जाने पर दु:ख ऐ अर्थ (धन) से क्या सुख मिलेगा। अत: ऐसे क्लेश से भरे हुए धन को धिक्क हो।

और शास्त्राभ्यास से ऐसे कार्य सिद्ध होते हैं कि जिससे इस लोक अ परलोक में अनेक सुखों की परंम्परा चलती है। इसलिए धन पैदा करने विकल्प को छोड़कर शास्त्राभ्यास करना। और जो ऐसा सर्वथा न बन सके सन्तोष पूर्वक धन पैदा करने का साधन कर शास्त्राभ्यास मे तत्पर रहना।

तथा तूने कहा कि - धनवान के निकट पंडित भी आकर के रहते हैं। र लोभी पंडित हो और अविवेकी धनवान हो, वहाँ ऐसा होता है। अरे। शास्त्राभ्या वालों की तो इन्द्रादिक भी सेवा करते हैं, यहाँ भी बड़े-बड़े मंहत पुरुष दास हो देखे जाते हैं। इसलिए शास्त्राभ्यास वालों से धनवानों को महन्त न जान। इ प्रकार धन पैदा करने के पक्षपाती को शास्त्राभ्यास के सन्मुख किया।

इस प्रकार अन्य भी जो विपरीत विचार से करणानुयोग के अभ्यास अरुचि प्रकट करते हैं उनको यथार्थ विचार से करणानुयोग के शास्त्रों में सन्मु होना योग्य है।

तथा करणानुयोग में जीवों व कर्मो के विशेष तथा त्रिलोकादि की रच निरुपित करके जीवों को धर्म में लगाया है। जो जीव धर्म में उपयोग लगा चाहते हैं वे जीवों के गुणस्थान मार्गणा आदि विशेष तथा कर्मो के कारण अवस्थ फल किस-किस के कैसे कैसे पाये जाते हैं इत्यादि विशेष तथा त्रिलोक में नर स्वर्गादि के ठिकाने पहिचान कर पाप से विमुख होकर धर्म में लगते हैं तथा ऐ विचार में उपयोग रम जाये तब पाप प्रवृति छूटकर स्वयमेव तत्काल धर्म उत्प होता हैं। उस अभ्यास से तत्वज्ञान की भी प्राप्ति शीघ्र होती है। तथा ऐसा सूक्ष

यथार्थ कथन जिन मत में ही है अन्यत्र नहीं, इस प्रकार महिमा जानकर जिन मत का गाढ श्रद्धानी होता है। करणानुयोग के अभ्यास से तत्वज्ञान निर्मल होता है। जैसे कोई यह तो जानता था कि यह रत्न है परन्तु उस रत्न के बहुत से विशेषण जानने पर निर्मल रत्न का पारखी होता है। उसी प्रकार तत्त्वों को जानता था कि यह जीवादिक है परन्तु उन तत्वों के बहुत विशेष जाने तो निर्मल तत्वज्ञान होता है, तत्वज्ञान निर्मल होने पर आप ही विशेष धर्मात्मा होता है तथा अन्य ठिकाने उपयोग को लगाये तो रागादिक की वृद्धि होती है और क्षद्मस्थ का उपयोग निरन्तर एकाग्र नहीं रहता इसलिए ज्ञानी जीव इस करणानुयोग के अभ्यास में उपयोग को लगाते हैं। उससे केवलज्ञान द्वारा देखे गये पदार्थों का जानपना इसके होता है। प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष का ही भेद है। भाषित होने में विरुद्धता नहीं है। इस प्रकार यह करणानुयोग का प्रयोजन जानना।

देखो। शास्त्रभ्यास की महिमा, जिसके होने पर परंपरा आत्मानुभव दशा को प्राप्त होता है, मोक्षमार्गरूप फल को प्राप्त होता है। यह तो दूर ही रहो, तत्काल ही इतने गुण प्रकट होते हैं:-

(1) क्रोधादि कषयों की मंदता होती है।

(2) पंचेन्द्रिय के विषयों में प्रवृत्ति रुकती है।

(3) अतिचंचल मन भी एकाग्र होता है।

(4) हिसादिक पाँच पाप नहीं होते।

(5) अल्पज्ञान होने पर भी त्रिलोक के तीन काल सम्बन्धी चराचर पदार्थों का जानना होता है।

(6) हेय-उपादेय की पहचान होती है।

(7) आत्मज्ञान सन्मुख होता है।

(8) अधिक अधिक ज्ञान होने पर आनन्द उत्पन्न होता है।

(9) लोक में महिमा यश विशेष होता है।

(10) अतिशय पुण्य का बन्ध होता है।

इत्यादिक गुण शास्त्राभ्यास करने से तत्काल ही उत्पन्न होते हैं। इसलिए शास्त्राभ्यास अवश्य करना।

और भी कहा है-

"कामप्पुण्णो पुरिसो तिलोक सारंपि जहदि सुदलाहं।
कुणदि असंजम बहुलं अणंत संसार सजणणं॥"
[तिलोय पण्णति प्र० भाग 630]

अर्थ- काम से परिपूर्ण पुरुष तीन लोक में श्रेष्ठ श्रुत लाभ को (शास्त्राभ्यास) छोड देता है और अनंत संसार को उत्पन्न करने वाले प्रचुर असंमय को करता है।

और भी कहा है-

"जैन श्रुततद्रा धारौ तीर्थ द्वावेन तत्वतः।
संसार स्तीर्थ ते ताम्यांत तत्सेवी तीर्थसेवकः॥"
[अनगार धर्मामृत की टीका]

अर्थ- जिनवाणी और जिनवाणी के ज्ञाता पंडित ये दो ही वास्तव में तीर्थ हैं। क्योंकि ये दोनों ही इस जीव को संसार से तिराने वाले हैं। जो इनकी सेवा करते हैं वे ही सच्चे तीर्थ सेवक कहलाते हैं।

और भी कहा है-

धवला पु- 9 गाथा 281 के अनुसार-

एक, दो, तीन, चार वा पाँच अथवा पक्षोपवास व मासोपवास करने वाले सम्यग्ज्ञानरहित जीव से भोजन करने वाला स्वाध्याय में तत्पर सम्यग्दृष्टि परिणामों की ज्यादा विशुद्धि कर लेता है।

तथा शास्त्राभ्यास से अज्ञान का विनाश, सम्यग्ज्ञान की उत्पत्ति, देवमनुष्यादि के द्वारा निरन्तर पूजा जाना और प्रत्येक समय में असंख्यात गुणित श्रेणी रूप से कर्मों की निर्जरा का होना साक्षात् फल समझना चाहिए। तथा सातवेदनीय आदि प्रशस्त कर्म प्रकृतियों के तीव्र अनुभाग के उदय से उत्पन्न हुआ सुख, इन्द्र, सामानिक, त्रायस्त्रिंश आदि देव सम्बन्धी दिव्यसुख और चक्रवती, बलदेव, नारायण, अर्ध मण्डलीक, मण्डलीक, महामण्डलीक, राजा, अधिराजा, महाराजाधिराज, परमेश्वर आदि मनुष्य सम्बन्धी दिव्य-सुख को प्राप्त करता है। तथा अरहन्त और सिद्धों के अतिन्द्रिय सुख को भी प्राप्त करता है।

(77) शंका- कर्मों की असख्यात गुणित श्रेणी रूप से निर्जरा होती है यह किनके प्रत्यक्ष है ?

समाधान- ऐसी शंका ठीक नहीं है, क्योंकि, सूत्र का अध्ययन करने-वालों के असंख्यात गुणित श्रेणी रूप से प्रतिसमय कर्म निर्जरा होती है। यह बात अवधिज्ञानी और मन:पर्यय ज्ञानियों को प्रत्यक्ष रूप से उपलब्ध होती है।

तथा जिन्होंने सिद्धान्त का उत्तम प्रकार से अभ्यास किया है ऐसे पुरुषों का ज्ञान सूर्य की किरणों के समान निर्मल होता है और जिसने अपने चित्त को स्वाधीन कर लिया है ऐसा चन्द्रमा की किरणों के समान चरित्र होता है।

तथा प्रवचन अर्थात् परमागम के अभ्यास से मेरु के समान निष्कम्प आठ मलरहित, तीन मूढ़ताओं से रहित और अनुपम सम्यग्दर्शन उत्पन्न होता है।

इस प्रवचन के अभ्यास से ही देव, मनुष्य और विद्याधरों के सर्वसुख प्राप्त होते हैं, तथा आठ कर्मों के उन्मूलित हो जाने के बाद प्राप्त होने वाला विशद् सिद्ध सुख भी प्रवचन के अभ्यास से ही प्राप्त होता है।

वह जिनागम जीव के मोह रूपी ईंधन को भष्म करने के लिए अग्नि के समान है।

अज्ञान रूपी गाढ़ अन्धकार को नष्ट करने के लिए सूर्य के समान है।

कर्म मल अर्थात् द्रव्यकर्म और कर्म कलुष अर्थात् भावकर्म को मार्जन करने वाला समुद्र के समान है।

अज्ञानरूपी अन्धकार को हरण करने वाले, भव्य जीवों के हृदय रूपी कमल को विकसित करने वाले और सम्पूर्ण जीवों के लिए पथ अर्थात् मोक्ष मार्ग को प्रकाशित करने वाले सिद्धान्त रूपी दिवाकर को भजो।

अब शास्त्राभ्यास करने के समय की प्राप्ति महादुर्लभ है। कैसे ? सो कहते हैं-

एकेन्द्रियादि असज्ञी पर्यन्त जीवों के तो मन नहीं और नारकी वेदना(दु:खों) से पीडित तिर्यंच विवेक रहित, देव विषयासक्त, इसलिए मनुष्यों को अनेक सामग्री मिलने पर शास्त्राभ्यास होता है। सो मनुष्य पर्याय की प्राप्ति ही द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से महा दुर्लभ है।

वहाँ द्रव्य से लोक में पर्याप्त मनुष्य जीव बहुत थोड़े हैं, तुच्छ संख्यात मात्र ही हैं- और अन्य जीवो में निगोदिया अनंत हैं, दूसरे जीव असंख्यात हैं।

तथा क्षेत्र से मनुष्यों का क्षेत्र बहुत स्तोक (थोडा) अढाईद्वीप मात्र ही है। और अन्य जीवों में एकेन्द्रियों का क्षेत्र सर्वलोक है, दूसरों का कितनेक राजू प्रमाण है।

और काल से मनुष्य पर्याय में उत्कृष्ट रहने का काल स्तोक है। कर्मभूमि अपेक्षा एक कोडी पूर्व है और अन्य पर्यायों में उत्कृष्ट रहने का काल, एकेन्द्रिय में तो असंख्यात पुद्गल परावर्तन मात्र है और अन्यो में संख्यात पल्य मात्र है। पुद्गल परावर्तन का काल ऐसा, जिसके अनन्तवें भाग में भी अनन्त सागर होते हैं और पल्योपम का काल ऐसा जिसके असख्यातवें भाग मे असंख्यात कोड़ी पूर्व होते हैं।

भाव अपेक्षा तीव्र शुभाशुभपने से रहित ऐसे मनुष्य पर्याय के कारणभूत परिणाम होने अति दुर्लभ हैं। अन्य पर्याय के कारण अशुभरूप वा शुभरूप परिणाम होने सुलभ हैं। इसीलिए मनुष्यों से असख्यात गुणे नारकी जीव हैं। नारकियों से असख्यात गुणे देव हैं। और देवों से अनंत गुणे तिर्यंच हैं।

इस प्रकार शास्त्राभ्यास का कारण जो कर्मभूमि एवम् मनुष्य पर्याय का दुर्लभपना जानना। वहाँ भी सुवास, उच्चकुल, पूर्णआयु, इन्द्रियो की सामर्थ्य, निरोगपना, सुसगति, धर्मरूप अभिप्राय, बुद्धि की प्रबलता इत्यादि की प्राप्ति होना उत्तरोत्तर दुर्लभ है। यह प्रत्यक्ष दीख रहा है। और इतनी सामग्री मिले बिना ग्रन्थाभ्यास बनता नहीं, सो तुमने भाग्य से ऐसा अवसर पाया है इसलिए तुमको हठ से भी तुम्हारे हित के लिए प्रेरणा करते हैं। जैसे हो सके वैसे शास्त्रों का अभ्यास करो, अन्य जीवों को जैसे बने वैसे शास्त्रों का अभ्यास कराओ। और जो जीव शास्त्रभ्यास करते हैं उनकी अनुमोदना करो। पुस्तक लिखावना, व पढ़ने पढाने वालो की स्थिरता करनी इत्यादि शास्त्राभ्यास के बाह्यकारण उनका साधन करना, क्योंकि उनके द्वारा भी परपरा से कार्य की सिद्धि होती है व महत् सुख उत्पन्न होता है। इस प्रकार जीवों को करणानुयोग के शास्त्र अभ्यासादि मे रुचिवान किया।

